वेद ज्योति
चारो वेदो के चुने हुए १००-१००
ईश्वर भक्ति के मंत्रों का संग्रह
अर्थ और भावार्थ सहित
जन ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली

जन-ज्ञान प्रकाशन का ८वां पुष्प

प्रकाशक —
पंडिता राकेश रानी
मंत्री दयानन्द संस्थान
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

द्वितीय संस्करण जून १९७५। दूरभाष—५६६६३६
मूल्य ४ रुपये मात्र सजिल्द ६ रुपये

× × ×

मुद्रक भाटिया प्रैस, गांधी नगर, दिल्ली-३१

सम्पादकीय

वेद-ज्ञान सागर के
४०० मोती स्वीकार कीजिए

अन्धेरा भागना चाहिए
प्रकाश आना चाहिए और मनुष्य को मनुष्य बनकर
धरती को स्वर्ग बनाना चाहिये
यह आवश्यक है और अनिवार्य भी
फिर भी अन्धेरा बढ रहा है ।
उजाला कही खोजने पर भी तो नही दीखता ।
लगता है धरती से मनुष्य मर रहा है
और जन्म ले रही है पशुता'
यह पशुता का दानव अज्ञान की उत्पत्ति है
इसलिए "ज्ञान" का प्रसार ही पशुता की समाप्ति का साधन है ।

पूर्व प्रकाशित इस ग्रन्थ की निरन्तर माग के कारण इस ग्रन्थ रत्न को हम इस विश्वास मे भेट कर रहे है कि इसके प्रकाश से मनुज क अन्तर की कालिमा मिट सकेगी ।

और

जन्म लेगी मानवता, धरती पर साकार स्वर्ग लाने के लिए। यज्ञ वेदी पर ज्ञान प्रसार का संकल्प हम ले, प्रभु की अमर वाणी वेद की ऋचाओ की झकृतियो से नया जीवन पाएं ।

यह हमारी इच्छा है और इसी भावना से साधन अर्पित है वेद-ज्ञान सागर के यह ४०० मोती · स्वीकार कीजिए

—राकेश रानी

आशीर्वाद

शांति चाहिए तो "वेद" की बात मानो

जब से वेद-वाद छूटा है। तबसे अनेक वाद-विवाद चल पड़े हैं और इन विवादों के बवंडर में मानव की सुख चैन शांति ऐसे उड़ गयी है, जैसे आंधी में रुई उड़ जाती है।

वेदों के विद्वान् स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती ने मेरी प्रार्थना पर चारों वेदों में से १००-१०० मंत्र चुनकर सर्व-साधारण के लिए उन्हें व्याख्या सहित संग्रह किया था।

आज "जन-ज्ञान-प्रकाशन" चारों वेदों के इन शतकों का जो संग्रह एक साथ प्रकाशित कर रहा है, यह सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा।

इन ४०० वेद मंत्रों का पाठ आपके हृदय में उत्साह उल्लास तथा शांति का स्रोत बहाएगा और बुद्धि में सात्विकता और गंभीरता लाएगा तथा कर्मशील बनकर जीवन सफल बनाने का मार्ग दिखाएगा।

प्रत्येक मनुष्य को शांति और सुख प्राप्ति के लिए वेद के मार्ग पर चलना होगा वेद मार्ग से ही मानव का कल्याण-उत्थान और समस्याओं का समाधान होगा, ऐसा मेरा निश्चित विश्वास है। प्रभु पुत्रो ! शांति चाहिए तो 'वेद' की बात मानो, और 'वेद' प्रचार के लिए जो कुछ भी कर सकते हो, अवश्य करो। प्रभु सभी का कल्याण करें।

आनन्द स्वामी सरस्वती

वेद का संसार को सन्देश

संसार के सभी विद्वान् एक स्वर मे यह स्वीकार करते है कि ससार के पुस्तकालयो मे सबसे पुराना ग्रन्थ 'वेद' है।

जैसे घर मे वृद्ध का सर्वाधिक आदर होता है और उसका आदेश सभी कल्याणकारी समझ शिरोधार्य करते है उसी भाँति सृष्टि के ज्ञान मे बयोवृद्ध होनेके कारण 'वेद' के निर्देश सभी के लिए कल्याण का कारण है। 'वेद' के अतिरिक्त अन्य जितने भी तथाकथित धर्मग्रन्थ कहे जाते है, वे सभी—

१ व्यक्तियो की गाथाओ से भरे हैं।

२ पक्षपात और देश काल के प्रभाव से युक्त है।

३ विज्ञान और सृष्टिक्रम की प्रत्यक्ष बातो का विरोध करते हैं।

४ मानव मात्र के लिए समान रूप से कल्याणकारी मार्ग का निर्देशन नही करते।

५ विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा वर्ग विशेष के लिए बनाए गए है।

किन्तु 'वेद' इन सभी बातो से ऊपर उठकर—

१ मनुष्य मात्र को समान समझकर मार्ग का निर्देश करता है।

२ वह 'सत्य' को सर्वोपरि मानता है।

३ विज्ञान, युक्ति, तर्क और न्याय के विपरीत उसमे कुछ भी नही है।

४ उसमे किसी देश, व्यक्ति, काल का वर्णन न होकर ऐसे शाश्वत मार्ग का निर्देशन है जिससे मस्तिष्क की सारी उलझी गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं।

५ वेद, लौकिक, पारलौकिक उन्नति के लिए समान रूप से प्रेरक है। उनकी शिक्षाएँ सर्वांगीण हैं। इसीलिए आधुनिक युग के महान् द्रष्टा और ऋषि महर्षि दयानन्द ने कहा था कि—

'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है' और यह भी बताया कि प्रत्येक श्रेष्ठ बनने के इच्छुक व्यक्ति को 'वेद' का पढना-पढाना और सुनना-सुनाना परम धर्म समझकर शान्ति और आनन्द के मार्ग पर चलने का यत्न करना चाहिए।

आज के युग के मनीषी अणु और उद्रजन विस्फोटको की अनन्त शक्ति के विकास के लिए यत्नशील हैं। अन्तरिक्ष की खोज उनके प्रयत्नो की सीमा है किन्तु 'मनुष्य' जो इस भूमि का 'भोक्ता' है निरन्तर अशान्ति, चिन्ता और पीडा के गह्वर मे गिरता जा रहा है। धर्म के नाम पर अधर्म के प्रसार ने विचारको के मस्तिष्क मे धर्म के प्रति तीव्र घृणा भर दी है। वस्तुत कुरान, पुराण, बाईबिल आदि पुस्तको ने 'धर्म' को इतने अधिक घृणित रूप मे उपस्थित किया है कि कोई भी बुद्धिजीवी इन्हे देखकर धर्म नाम को ही छोड देता है।

ऐसी विषम स्थिति मे ससार को विनाश और मृत्यु से बचाने के लिए लुप्त होती हुई महान् ज्ञान-राशि 'वेद' का पुनरुद्धार कर महर्षि दयानन्द ने मानवता को अमर सजीवनी प्रदान की। धर्म के जर्जर रूप को त्याज्य बताकर 'धर्म' को जीवन का अनिवार्य अग बताया और स्पष्टतया यह घोषणा की कि जीवन का उत्थान, निर्माण और शान्ति-आनन्द का उदात्त मार्ग, केवल 'वेद' की ऋचाओं मे वर्णित है।

महर्षि महान् क्रातिकारी थे। वे धरती के अज्ञान को जला देना

चाहते थे। मत-वादो के विष-वृक्ष को मिटा देना उनका इष्ट था। यह इसलिए नही कि उनका किसी से द्वेष-विरोध था, अपितु इसलिए कि वे किसी को भी असत्य मार्ग पर चलते नही देख सकते थे।

इसलिए सब के सब विधि कल्याण का मार्ग उन्होंने 'वेद' का आदेश मानकर "जीवन-निर्माण" बताया। अपने पश्चात् अपनी इच्छा को मूर्त रूप देने के लिए "आर्य समाज" सगठन बनाया।

आर्य समाज का लक्ष्य-उद्देश्य भी केवल 'वेद' की भावनाओ का प्रचार है। यह मानव मात्र तक 'वेद' के पावन सन्देश को पहुँचाने के लिए कृतसकल्प और कटिबद्ध है।

आज युग की सबसे बडी आवश्यकता है कि ससार के मस्तिष्क, बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ यह अनुभव करे कि विज्ञान और भौतिकता का यह प्रवाह ससार से सत्य और शान्ति, आनन्द को सर्वथा ही समाप्त कर देगा। अत सभी गम्भीरता से स्थिति को समझें और विचारें कि—

१ यह शरीर ही सब कुछ नही। इसमे जो जीवन तत्व, "आत्मा" है, उसकी भूख, प्यास की चिन्ता किये बिना मनुष्य कभी मनुष्य नही बन सकता।

२ ससार मे एक धर्म है—'सत्य'। वह सत्य सृष्टि क्रम, विज्ञान-सम्मत और मानव मन को आनन्द देने वाला है।

३ मनुष्य की केवल एक जाति है—'मनुष्य। मनुष्य' और मनुष्य के बीच कोई भी जाति-वर्ण-वर्ग-देश की दीवार खडी करना जघन्यतम अपराध है। जो भी इन तथ्यो पर विचार करेंगे वे निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि—

केवल 'वेद' ही ऐसा ज्ञान है जो उक्त मान्यताओ को पुष्ट करता है।

अत धरती को स्वर्ग बनाने के लिए 'वेद' का प्रचार-प्रसार और उन पर आचरण परमावश्यक है।

'वेद' मनुष्य मात्र के लिए ऐसा मार्ग बताता है जिस पर चलकर जन्म से मृत्युपर्यन्त उसे कोई भी कष्ट न आए। आनन्द और शान्ति जो मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाएँ है, उनको प्राप्त कर दुखो से छुट-कारा पाने का सच्चा और सीधा मार्ग, 'वेद' के पवित्र मन्त्रो मे स्पष्ट रूप से वर्णित है।

अत आइए, गम्भीरता से हम जीवन के सच्चे मार्ग को समझें और आनन्द प्राप्त कर कष्टो से मुक्ति पाये।

१०० वर्ष तक जिएं

वेद का प्रथम आदेश है कि प्रत्येक मनुष्य १०० वर्ष सुखी होकर जिए। वेद कहता है —

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमा ।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

—यजु० ४० २

'मनुष्य' को चाहिए कि कर्म करता हुआ १०० वर्ष तक जीने की इच्छा करे। उसके लिए इससे भिन्न जीवन का मार्ग नही है। ऐसा करने से कर्म-बन्धन मनुष्य को जकडता नही।

जीवन की अवधि के अतिरिक्त मन्त्र मे कहा गया है कि जीवन का समय काम मे गुजरना चाहिए, १०० वर्ष साँस लेते रहना ही पर्याप्त नही। काम जीवन की अवधि को बढाने का साधन भी है, परन्तु मन्त्र मे जीवन के मूल्य की ओर सकेत किया गया है। कर्म-शीलता का महत्त्व इतना है कि वेद के शब्दो मे कर्म करते हुए बिताया हुआ जीवन ही वास्तव मे मनुष्य-जीवन कहलाने के योग्य है।

२. जीवन का लक्ष्य

व्यक्ति को कर्म करते हुए १०० वर्ष तक जीते रहने की इच्छा करनी चाहिए। कर्म की अपने-आप मे भी कीमत है, परन्तु मनुष्य रूप मे यह जीवन का साधन है।

किन्तु जीवन मे जिएँ तो कैसे ? वेद कहता है—

ईशावास्यमिदꣳसर्व यत्किच जगत्या जगत् ॥
तेन त्यक्तेन भुजीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम् ॥

—यजु ४० १

इस चलायमान ससार मे जो कुछ चलता हुआ है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है। जो कुछ भोगो, ईश्वर की देन समझकर भोगो। किसी दूसरे के धन का लालच न करो।

वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार ससार का प्रत्येक भाग ईश्वर से आच्छादित है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, और ससार की व्यवस्था उसी की व्यवस्था है।

यदि सृष्टि मे जो कुछ है, ईश्वर की व्यवस्था के अधीन है, तो यह बात स्पष्ट है कि मनुष्यो के भोग के सभी सामान ईश्वर की देन है। मैं जीने के लिए कुछ खाता-पीता हूँ, यह सामग्री मैं बनाता नही। इसे जगत् मे विद्यमान पाता हूँ और इसे प्राप्त करके उसी रूप मे या थोडे परिवर्तन के साथ प्रयोग मे लाता हूँ। यही नही, इस प्रयोग की योग्यता भी तो ईश्वर की देन ही है। अत सबका उपयोग करते हुए ईश्वर का स्मरण करना चाहिए।

धन के अच्छे और बुरे उपयोग के लिए निम्नलिखित मत्रो मे बहुमूल्य शिक्षा दी गई है।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद् दधिषे रदावसो न पापत्वायरꣳसिषम् ॥

—साम० ३ ८ ८

परमात्मा ! जगत् मे जो कुछ है, सब तुम्हारा है । इसमें मैं इतनी सम्पत्ति का स्वामी बनूं कि ईश्वरभक्तो की सहायता कर सकूं, मेरा धन पाप के लिए प्रयुक्त न हो !'

श्रायन्त इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भाग न दीधिम ॥

—साम० ३ ४ ५

'जो कुछ उत्पन्न हो चुका है, जो कुछ उत्पन्न होगा अपने बल सहित सब परमात्मा का ही है, जैसे सूय की किरणे सभी सूर्य से निकलती है। अपने-अपने भाग्य को भोगो, जैसे एक पिता के पुत्र करते है । इतना ही धारण करने के योग्य है ।"

वस्तुत प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह आप अच्छी तरह रहे, बच्चो को अच्छी शिक्षा से सम्पन्न करके अपने पांव पर खडा करके, शेष सब कुछ को समाज की सम्पत्ति समझे ।

३. सफलता के लिए

सफल जीवन के लिए कौन-से कर्म उपयोगी है, यह वेद मे अनेक स्थलो पर बताया गया है । यजुर्वेद के दो निम्नलिखित मन्त्र इस पर कुछ प्रकाश डालेगे —

स्वय वाजिस्तन्व कल्पयस्व स्वय यजस्व स्वय जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ (२३ १५)

'बलवान् आत्मा ! तू आप अपने शरीर को समर्थ बना, आप यज्ञकर, आप सेवा कर, तेरी महिमा किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नही होगी ।

प्रेता जयता नर इन्द्रो व शर्म यच्छतु ।
उग्रा व. सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ॥ (१७ : ४६)

"मनुष्य ! आगे बढो । शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो । भगवान् तुम्हे अपनी शरण प्रदान करे । तुम्हारी भुजाएँ उग्र हो, जिससे कोई तुम्हे हानि न पहुँचा सके ।"

पहला मत्र व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध मे कहता है, दूसरे मत्र मे उस कठोर वातावरण को ध्यान मे रखा गया है जिसमे हम सब को रहना होता है । इन्हे इसी क्रम मे ले ।

पहले मन्त्र के दूसरे भाग मे कहा है कि वास्तव मे व्यक्ति की महिमा या बडाई किसी दूसरे की देन नही हो सकती । उसके अपने श्रम का फल होती है ।

व्यक्ति का प्रथम काम तो अपने शरीर को बनाना है । पहले माता अपने शरीर बच्चे का पालन करती है, पीछे उसे अन्न आदि खिलाती है । आगे चलकर वह आप खाने लगता है और अन्त मे जो कुछ खाता है, उसे कमाता है ।

दूसरे वेद मन्त्र मे स्पष्ट शब्दो मे आदेश है—

आगे बढ़ो । शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो । तुम्हारी भुजाएँ उग्र हो, जिससे कोई तुम्हे हानि न पहुँचा सके । आजकल जिन राष्ट्रो के हाथ मे कुछ करने की शक्ति है वे उस आदेश पर अमल करते हैं । जो अशक्त है, अहिंसा के गुण गाने मे लगे हैं । स्वामी दयानन्द ने अहिंसा का अर्थ 'वैर त्याग" किया है, यही इसका तत्व है । मैं तो किसी का शत्रु नही परन्तु यदि कोई मुझसे शत्रुता करता है, तो तुझे बताना चाहिए कि इस विशाल दुनियाँ मे जीने का मुझे भी अधिकार है ।

इसी आशय की प्रार्थना निम्न मत्र मे की गई है—

दृते दृᳬह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।। यजु० ३६ १८ ।।

दृढ बनाने वाले परमात्मा ! मुझे ऐसा दृढ बना कि सारे प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखे। मैं सब प्राणियो को मित्र की दृष्टि से देखता हूँ। हम सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखे।

मन्त्र के अर्थ पर अन्त की ओर से विचार करे। आवश्यकता व्यापक मित्रता और सद्भावना की है। इसके लिए परमात्मा से याचना करते है। इस व्यापक मित्रता के लिए मै अपने व्यवहार मे इसे लक्ष्य के रूप मे स्वीकार करता हूँ और परमात्मा को साक्षी बनाकर कहता हूँ कि मै सबको मित्र भाव से देखता हूँ। परन्तु यह तो पर्याप्त नही। दूसरो का भी मेरी ओर मित्र भाव होना चाहिए। जीवन मे सफलता का यही मार्ग है। जो अगले ४०० मन्त्रो मे आप स्वय स्वाध्याय कर प्राप्त कर सकेगे।

—भारतेन्द्रनाथ

अध्यक्ष
दयानन्द सस्थान
नई दिल्ली-५

१०-१-७५

ऋग्वेद शतक

ऋग्वेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मन्त्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

वेदोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र-
चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्र-
विणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व०१९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति,-पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

: १ :

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ मं० १ । सू० १ ।

पदार्थ—(अग्निम्) ज्ञानस्वरूप, व्यापक, सब के अग्रणीय नेता और पूज्य परमात्मा की मैं (ईळे) स्तुति करता हूँ । कैसा है वह परमेश्वर ? (पुरोहितम्) जो सब के सामने स्थित, उत्पत्ति से पूर्व परमाणु आदि जगत् का धारण करने वाला (यज्ञस्य देवम्) यज्ञादि उत्तम कर्मों का प्रकाशक, (ऋत्विजम्) वसन्त आदि सब ऋतुओ का उत्पादक और सब ऋतुओ मे पूजनीय, (होतारम्) सब सुखो का दाता तथा प्रलयकाल मे सब पदार्थों का ग्रहण करने वाला (रत्नधातमम्) सूर्य्य, चन्द्रमा आदि रमणीय पदार्थों का धारक और सुन्दर मोती, हीरा, सुवर्ण-रजत आदि पदार्थों का अपने भक्तो को देने वाला है ।

भावार्थ—ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वत्र व्यापक, सब प्रकार के यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का प्रकाशक और उपदेशक, सब ऋतुओ मे पूजनीय और सब ऋतुओ का बनाने वाला, सब सुखो का दाता, और सब ब्रह्माण्डो का कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता है, हम सब को ऐसे प्रभु की ही उपासना, प्रार्थना और स्तुति करनी चाहिये ।

: २ :

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ १।१।२॥

पदार्थ—(अग्नि) परमेश्वर (पूर्वेभि ऋषिभि) प्राचीन ऋषियो से (उत) और (नूतनै) नवीनो से (ईड्य) स्तुति करने योग्य है । (स) वह (देवान्) देवताओ को (इह) इस ससार मे (आ वक्षति) प्राप्त करता है ।

भावार्थ—पूर्व कल्पों में जो वेदार्थ को जानने वाले महर्षि

हो गये हैं और जो ब्रह्मचर्यादि साधनों से युक्त नवीन महापुरुष हैं, इन सब से वह पूज्य परमात्मा ही स्तुति करने योग्य है । उस दयालु प्रभु ने ही इस ससार मे दिव्य-शक्ति वाले, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और बिजली आदि देव और हमारे शरीरो मे भी विद्या आदि सद्गुण, मन, नेत्र, श्रोत्र, प्राणादि देव प्राप्त किये हैं। जिन देवो की सहायता से हम अपना लोक और परलोक सुधारते हुए, अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकते हैं ।

: ३ :

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ १।१।३॥

पदार्थ—(अग्निना एव) परमात्मा की कृपा से ही पुरुष (रयिम्) धन को (अश्नवत्) प्राप्त होता है । जो धन (दिवे दिवे पोषम्) दिन दिन मे बढने वाला है (यशसम्) कीर्ति दाता और (वीरवत्तमम्) जिस धन मे अत्यन्त विद्वान् और शूरवीर पुरुष विद्यमान हैं ।

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना करने से और उसकी वैदिक आज्ञा मे रहने से ही मनुष्य, ऐसे उत्तम धन को प्राप्त होता है कि, जो धन प्रतिदिन बढने वाला, मनुष्य की पुष्टि करने वाला और यश देने वाला हो । जिस धन से पुरुष, महाविद्वान् शूरवीरो से युक्त होकर, सदा अनेक प्रकार के सुखो से युक्त होता है, ऐसे धन की प्राप्ति के लिये ही उस भगवान् की भक्ति करनी चाहिये ।

: ४ :

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ १।१।४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (यम् अध्वरम् यज्ञम्) आप जिस हिंसारहित यज्ञ के (विश्वत) सर्वत्र व्याप्त होकर

(परिभू) सब प्रकार से पालन करने वाले (असि) हैं, (स इत्) वही यज्ञ (देवेषु) विद्वानो के बीच में (गच्छति) फैल जाता है।

भावार्थ—धर्म रक्षक परमात्मा, जिस हिंसादि दोषरहित स्वाध्याय और अन्न, वस्त्र, पुस्तक विद्यादानादि यज्ञ की रक्षा करते है। वही यज्ञ ससार मे फैल कर सबको सुखी करता है। इस वैदिक उपदेश से निश्चय हुआ कि जो हिंसक लोग, गौ, घोडा, बकरी आदि उपकारक और अहिंसक पशुओ कों मारकर, उनकी चर्बी और मास से यज्ञ का नाम लेकर होम करते व खाते हैं, यह सब उन हत्यारे याज्ञिक लोगो की स्व कपोल कल्पित लीला है, वेदो से इसका कुछ भी सम्बन्ध नही है।

: ५ :

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तम ।
देवो देवेभिरागमत् । ५।१।१।५॥

पदार्थ—(अग्नि) परमेश्वर (होता) दाता (कवि) सर्वज्ञ (क्रतु) सब जगत् का कर्त्ता (सत्य) अविनाशी और सदाचारी विद्वान् जनो का हितकारी (चित्रश्रवस्तम) जिसका अति आश्चर्य रूपी श्रवण है, वही प्रभुः (देव) उत्तम गुणो का प्रकाश करने वाला (देवेभि) महात्मा विद्वानो का सत्सग करने से (आगमत) जाना जाता तथा प्राप्त होता है।

भावार्थ—सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सब जगत् का कर्त्ता, भक्तो को सुख का दाता और हितकर्त्ता है। जिस का श्रवण बिना पूर्व पुण्यो के नही मिल सकता, उस प्रभु का ज्ञान और प्राप्ति महात्मा विद्वान् सन्त जनो के सत्सग से ही होती है। ससार मे जितने महापुरुष हुए हैं वे सब, अपने महात्मा गुरुओ की सेवा और उनके सत्सग से भक्त और ज्ञानी व पूजनीय बन गए। सत्सग की महिमा अपार है, लिखी और कही नही जा सकती।

: ६ :

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्यमङ्गिर । ॥१।१।६॥

पदार्थ—(अङ्ग अग्ने) हे सबके प्रिय मित्र अग्ने ! (यत् दाशुषे) जिस हेतु से उत्तम-उत्तम पदार्थों के दाता पुरुष के लिये (भद्र करिष्यसि) आप कल्याण करते हैं। (अगिरः) हे अन्तर्यामी रूप से अगो की रक्षा करने वाले परमात्मन् ! (तव इत्) यह आपका ही (तत् सत्यम्) सत्य व्रत शील स्वभाव है ।

भावार्थ—हे सब की रक्षा करने वाले, सब के सच्चे प्यारे मित्र परमात्मन् ! जो धार्मिक उदार पुरुष, अन्न, वस्त्र, भूमि, स्वर्ण, रजतादि उत्तम पदार्थों के सच्चे पात्र विद्वान् महापुरुषो को प्रेम से दान करते हैं, उन धर्मात्माओ की आप सदा रक्षा करते हैं। ऐसा आपका अटल नियम और स्वभाव ही है ।

: ७ :

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि । ॥१।१।७॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (दिवे दिवे) सब दिनों मे (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों से (वयम्) हम उपासक जन (नम·) नम्रतापूर्वक आपको नमस्कार आदि (भरन्त) धारण करते हुए (त्वा) आपके (उप) समीप (आ-इमसि) प्राप्त होते हैं (दोषा) रात्रि मे और (वस्त) दिन के समय मे ।

भावार्थ—हे सब के उपासनीय प्रभो ! हम सब 'ओ३म्' नाम जो आपका मुख्य नाम है इससे और गायत्री आदि वेदो के पवित्र मन्त्रो से आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना सदा करें। यदि सदा न हो सके तो, सायकाल और प्रात काल मे आप जगत् पिता के गुण सकीर्तन रूपी स्तुनि, वाछित मोक्षादि वर की याचना रूप

प्रार्थना, और आपके ध्यान रूप उपासना मे अवश्य मन को लगायें जिससे हम सब का कल्याण हो ।

: ८ :

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिवम् ।
वर्धमान स्वे दमे ।। १।१।८।।

पदार्थ— (राजन्तम्) प्रकाशमान (अध्वराणाम्) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का वा धार्मिक पुरुषो का और पृथ्वी आदि लोकों का (गोपाम्) रक्षक (ऋतस्य) सत्य का (दीदिवम्) प्रकाशक (वर्धमानस) सबसे बडा (स्वे दमे) अपने उस परमानन्द पद मे जिसमे कि सब दु खो से छूटकर मोक्ष सुख को प्राप्त हुए पुरुष रमण करते हैं, उसमे सदा विराजमान हैं ऐसे प्रभु को हम प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा प्रकाशस्वरूप, यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने वाले, धर्मात्मा ज्ञानी पुरुषो की, तथा पृथ्वी आदि लोक लोकान्तरो की रक्षा करने वाले हैं, और अपने दिव्य धाम जो सब दु खो से रहित है उसी मे वर्त्तमान हैं । ऐसे सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्मा की ही बडे प्रेम से हम सबको भक्ति प्रार्थना व उपासना करनी चाहिये ।

: ९ :

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ।। १।१।९।।

पदार्थ— (अग्ने) ज्ञानस्वरूप, ज्ञानप्रद पिता (स) लोक और वेदो मे प्रसिद्ध आप (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता जैसा हितकारक होता है वैसे ही (न.) हमारे लिये (सु-उपायन) सुखदायक पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले ज्ञान के दाता (भव) होओ और (न) हम लोगो के (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सचस्व) प्राप्त होओ ।

भावार्थ—जैसे पुत्र के लिये पिता हितकारी होता है और सदा यही चाहता है कि, मेरा पुत्र धर्मात्मा चिरजीवी, धनी, प्रतापी, यशस्वी, सुखी, और बडा ज्ञानी हो। वैसे ही आप परम पिता परमात्मा चाहते हैं कि, हम भी जो आपके पुत्र हैं धर्मात्मा चिरजीव, धनी, प्रतापी और महाविद्वान् होकर लोक परलोक मे सदा सुखी होवे।

सारांश—ऋग्वेद के इस प्रथम अग्निसूक्त मे परमेश्वर के गुणो का वर्णन किया गया है, और परमेश्वर ने मनुष्यो को उपदेश दिया है कि, उनको अपने कल्याणार्थ किस प्रकार उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये। जो व्यक्ति या व्यक्ति-समूह, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करेगा उसका अवश्यमेव कल्याण होगा ऐसा स्पष्ट सिद्ध है।

: १० :

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषा पाहि श्रुधी हवम् ॥ १।२।१॥

पदार्थ— (वायो) हे अनन्त बल युक्त सबके प्राणरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर! (आयाहि) आप हमारे हृदय मे प्रकाशित होवें (दर्शत) हे ज्ञान से देखने योग्य! (इमे सोमा) यह ससार के सब पदार्थ जो आपने (अरकृता) सुशोभित किये हैं (तेषाम् पाहि) इनकी रक्षा करें (हवम्) हमारी स्तुति को (श्रुधी) सुनिये।

भावार्थ—हे अनन्त बल-युक्त सबके जीवन दाता दर्शनीय परमात्मन्! आप अपनी कृपा से हमारे हृदय मे प्रकाशित होवें और जो उत्तम-उत्तम पदार्थ आपने रचे और हमको दिये हैं, उनकी रक्षा भी आप करें। हमारी इस नम्रतायुक्त प्रार्थना को कृपा करके सुनें और स्वीकार करें।

: ११ :

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १।५।८॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) सृष्टि-निर्माण, पालन पोषणादि असंख्यात कर्म-कर्ता और अनन्त ज्ञानस्वरूप प्रभो! जैसे (स्तोमाः) सामवेद के स्तोत्र तथा (उक्था) पठन करने योग्य ऋग् वेदस्थ प्रशंसनीय सब मन्त्र (त्वाम्) आपको (अवीवृधन्) अत्यन्त प्रसिद्ध करते हैं, वैसे ही (नः) हमारी (गिरः) विद्या और सत्य-भाषण युक्त वाणियें भी (त्वाम्) आपको (वर्धन्तु) प्रकाशित करें।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् जगदीश्वर पिता जी! सर्व वेद साक्षात् और परम्परा से आपकी महिमा को कथन कर रहे हैं। हम पर कृपा करो कि हम सब आपके पुत्रो की वाणियां भी, आपके निर्मल यश को गाया करें, जिससे हम सबका कल्याण हो।

: १२ :

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ ५।८२।५॥

पदार्थ—हे (सवित) सकल जगत् के उत्पादक (देव, ज्ञान स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! (न) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख और पापो को (परासुव) दूर करें (यद्) (भद्रम्) कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त करावें।

भावार्थ—हे सकल जगत् के कर्त्ता परमात्मन्! कृपा करके आप हमारे सब दुःख और दुःखो के कारण सब पापो को दूर कर दें। भगवन्! कल्याण कारक जो अच्छे गुण कर्म ज्ञान उपासनादि उत्तम-उत्तम पदार्थ हैं, उन सबको प्राप्त करा दें, जिससे हम सच्चे धार्मिक तेरे ज्ञानी और उपासक बनकर अपने मनुष्य जन्म को सफल करें।

: १३ :

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ १।२२।७॥

पदार्थ—(वसो) सुखो के निवास हेतु (चित्रस्य) आश्चर्य-स्वरूप (राधस) धन को (विभक्तारम्) बांटने हारे (सवितारम्) सबके उत्पादक (नृचक्षसम्) मनुष्यो के सब कर्मों को देखने हारे परमेश्वर की हम सब लोग (हवामहे) प्रशसा करें।

भावार्थ—सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर सब मनुष्यो को उनके कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार का धन देता है जिस धन से मनुष्य अपने लोक और परलोक को सुधार सकते हैं, ऐसे धन को मद्य मास सेवन और व्यभिचारादि पाप कर्मो मे कभी नही लगाना चाहिये, किन्तु धार्मिक कामो मे ही खर्च करना चाहिये, जिससे मनुष्य का यह लोक और परलोक सुधर सके।

: १४ :

सखाय आनिषीदत सविताःस्तोम्यो नु न. ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ १।२२।८॥

पदार्थ—(सखाय) हे मित्रो ! (आ निषीदत) चारो ओर से आकर इकट्ठे बैठो (सविता) सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत्कर्ता जगदीश्वर (स्तोम्य) स्तुति करने योग्य है (नु) शीघ्र (न) हमारे लिए (दाता) दानशील है (राधांसि) धनो का (शुम्भति) शोभा देने वाला और शोभायुक्त है।

भावार्थ—मनुष्यो को परस्पर मित्रता के बिना कभी कोई सुख नही प्राप्त हो सकता, इसलिए सब मनुष्यो को योग्य है कि, एक दूसरे के मित्र होकर इकट्ठे बैठें और उस जगत्पिता के गुण गावें क्योकि वही जगदीश्वर, सबको अनेक प्रकार के उत्तम से उत्तम धनो का दाता और शोभा का भी देने वाला है। इससे हमे

उस दयामय पिता की सदा प्रेम से भक्ति करनी चाहिये, जिससे हमारा लोक परलोक सुधरे ।

: १५ :

आ विश्वदेव सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम् ।। ५।८२।७।।

पदार्थ—(अद्य) आज (विश्वदेवम्) सबके उपास्यदेव (सत्य-सवम्) सत्य के पक्षपाती (सवितारम्) जगत् के उत्पादक प्रभु को (सूक्तै) सुन्दर स्तुति वचनो से (आ वृणीमहे) भजते हैं ।

भावार्थ—जगत् का उपास्य देव जो श्रेष्ठ सत जनो का रक्षक वा पालक, सच्चाई का पक्षपाती, जिसकी आज्ञा सच्ची है, और जो सारे जगतो का उत्पन्न करने वाला है, आज हम अनेक वेद के पवित्र मन्त्रो से उस जगत्पिता की स्तुति करते है, वह जगत्पिता परमात्मा, हम पर प्रसन्न होकर हमे सच्चा भक्त बनाये ।

: १६ :

सविता पश्चात्तात् सविता पुरस्तात् ।
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात् ।
सविता नःसुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां
दीर्घमायुः ।। १०।३६।१४।।

पदार्थ—(सविता) सब जगत् का उत्पादक देव (पश्चात्तात्) पीछे (सविता पुरस्तात्) सविता सम्मुख (सविताउत्तरात्तात्) सविता उत्तर दिशा (सविता अधरात्तात्) नीचे व दक्षिण दिशा मे भी हमारी रक्षा करे । (सविता) सविता (न) हमे (सर्वतातिम्) सब इष्ट पदार्थ (सुवतु, देवे (सविता) वही (सविता) जगत्पिता (न) हमे (दीर्घम् आयु) लम्बी आयु (रासताम्) प्रदान करे ।

भावार्थ—जगत् पिता परमात्मा, पूर्वादि सब दिशाओ मे

मे हमारी रक्षा करे और हमे मनोवाछित पदार्थ देता हुआ दीर्घ आयु वाला बनावे। जिससे हम धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त होकर सदा सुखी हों।

: १७ :

सुवीरं रयिमाभर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षासि सुक्रतो॥ ६।१६।२९॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) वेद प्रकट करने वाले प्रभो अथवा अनेक प्रकार का धन उत्पन्न कर्ता ईश्वर! (सुवीरम्) उत्तम वीरो से युक्त (रयिम्) धन को (आभर) दो (वचर्षणे) हे सर्वज्ञ सर्व द्रष्टा परमात्मन्! (सुक्रतो) हे जगत् उत्पादन पालनादि उत्तम और दिव्य कर्म करने वाले प्रभो! (रक्षासि) दुष्ट राक्षसो का (जहि) नाश कर।

भावार्थ—हे परमात्मन्! दानवीर कर्मवीरादि पुरुषो से युक्त धन हमे प्रदान करो। हम दीन मलीन पराधीन दरिद्री कभी न हो। हे महासमर्थ प्रभो! दुष्ट राक्षसो का दुष्ट स्वभाव छुडा कर, उनको धर्मात्मा श्रेष्ठ बनाओ, जिससे वे लोग भी किसी की कभी हानि न कर सकें।

: १८ :

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥ ८।६।२८

पदार्थ—(गिरिणाम्) पर्वतो की (उपह्वरे) गुफाओ मे (नदीनां) (सगमे च) और नदियो के सगम पर (धिया) ध्यान करने से (विप्र अजायत) मेधावी व ब्राह्मण हो जाता है।

भावार्थ—मोक्षार्थी पुरुष को चाहिये कि वह एकान्त देश मे जैसे पर्वतों की गुफा में व नदियों के सगम पर बैठ कर परमात्मा का ध्यान करे और एकान्त देश में ही वेदो के पवित्र मन्त्रो का

विचार करे। तब ही वह विप्र और ब्राह्मण कहलाने के योग्य है। ब्राह्मण शब्द का भी यही अर्थ है कि ब्रह्म जो शब्द ब्रह्म वेद है, इसके पठन और विचार आदि से ब्राह्मण होता है, और ब्रह्म अविनाशी सर्वत्र व्यापक परमात्मा का जो ज्ञानी भक्त है वही ब्राह्मण कहलाने योग्य है। इसी ज्ञानी को विप्र भी कहते हैं, ऐसे वेदवेत्ता प्रभु के अनन्य भक्त ही ब्राह्मण होने चाहिये, न कि रसोई बनाने वाले बनियो की व्यापार वृत्ति व नौकरी करने वाले।

: १९ :

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्र भूर्याभर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि॥ ४।३२।२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त प्रभो! आप (भूरिदा) बहुत देने वाले हो (न) हमे (भूरि देहि) बहुत दो (मा दभ्रम्) थोडा नही, (भूरि आभर) बहुत लाओ। (इत्) निश्चित (भूरिघा) सदा बहुत (दित्ससि) देने की इच्छा करते हो।

भावार्थ—हे सर्व ऐश्वर्य के स्वामी परमात्मन्! आप अपने सेवको को बहुत ही धनादि पदार्थ देते हो, हमे भी बहुत दो, थोडा नही, क्योकि आपका स्वभाव ही बहुत देने का है, सदा बहुत देने की इच्छा करते हो। भगवन्! धनादि पदार्थों को प्राप्त होकर, उनको अच्छे कामो मे हम लगावें, बुरे कामो मे नही ऐसी ही आपकी प्रेरणा हो। हम धर्मात्मा और धनी ज्ञानी बन कर आपके ज्ञान और धर्म के फैलाने वाले बनें, जिससे कि हम सब का कल्याण हो।

: २० :

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्
आ नो भजस्व राधसि॥ ४।३२।२१॥

पदार्थ—हे (शूर) महाबलवान् प्रभो! हे (वृत्रहन्) अज्ञान

नाशक परमेश्वर ! (हि) निश्चय आप (पुरुत्रा भूरिदा. सर्वत्र बहुत देने वाले (श्रुत असि) सुने गये हैं। (न) हमें (राधसि) धन का (आ भजस्व) सब ओर से भागी बनाओ।

भावार्थ—हे अज्ञान नाशक महा पराक्रमी प्रभो ! वेदादि सच्छास्त्र और इनके ज्ञाता महानुभाव महात्मा लोग, आपको सदा बहुत देने वाला बता रहे हैं। यह निश्चित है कि जो २ पदार्थ आपने हमे दिये हैं और दे रहे हैं वे अनन्त है। हम याचक हैं आप महादानी हैं अतएव हम आपसे वारम्वार मांगने है। भगवन् ! आप हमे धन दो, बल दो, ज्ञान दो, आयु दो, सुबुद्धि दो, शान्ति दो, सुख दो, मुक्ति दो।

: २१ :

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्व मार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ।। ९।६३।५।।

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर की (वर्धन्त) बडाई करते हुए (अप्तुर) श्रेष्ठ कर्म करते हुए (विश्वम) सबको (आर्यम्) वेदानुकूल कर्म करने वाला आर्य (कृण्वन्त) बनाते हुए (अराव्ण) कृपण पापियो को (अपघ्नन्त) परे हटाते हुए चले चलो।

भावार्थ—परम प्यारे पिता परमात्मा, हम सब पुत्रो को उपदेश देते है, कि मेरे प्यारे पुत्रो ! तुम आलसी न बनो, वैदिक कर्मों के करने कराने वाले बनो, कजूस मक्खीचूस स्वार्थी पापियो को परे हटाते हुए, सारे ससार को वेदानुकूल चलने वाला आर्य, परमेश्वर का भक्त और परमेश्वर का अनन्य प्रेमी बनाओ।

. २२ .

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्व राजा जनानाम् ।। ८।३४।३।।

पदार्थ—हे (इन्द्र) सकल ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर ! (त्वम्)

आप (सुतानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों के (ईशिषे) शासक हैं। (त्वम् असुतानाम्) उत्पन्न न होने वाले जीव प्रकृति आकाशादि पदार्थों के भी आप शासक हैं, (त्व राजा जनानाम्) आप ही सब लोक लोकान्तरो के व प्राणीमात्र के राजा स्वामी हैं।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! आप उत्पन्न होने वाले पदार्थों के और अनादि जीव प्रकृति और सब ब्रह्माण्डो के राजा हैं। जड चेतन सब पदार्थों पर शासन कर रहे हैं। आपकी आज्ञा बिना एक पत्ता भी नही हिल सकता, ऐसे समर्थ आप प्रभु की शरण मे हम आये है, कृपया आप ही हमारी रक्षा करें।

: २३ :

इन्द्रोदिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्
पर्वतानाम्। इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः
क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः॥ १०।८९।१०॥

पदार्थ—(इन्द्र दिव ईशे) परमेश्वर द्युलोक पर शासन कर रहा है (इन्द्र पृथिव्या) वही इन्द्र पृथ्वी का शासक है (इन्द्र अपाम्) परमेश्वर जलो का (इन्द्र इत् पर्वतानाम्) इन्द्र ही मेघो का (इन्द्र वृधाम्) इन्द्र वृद्धि वालो का (इन्द्र इत् मेधिराणाम्) और इन्द्र ही मेधावियो का स्वामी है (क्षेमे) प्राप्त पदार्थों की रक्षा के लिये (योगे) अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति के लिये (हव्य इन्द्र) वह परमेश्वर ही प्रार्थना करने योग्य है।

भावार्थ—वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा द्युलोक पृथिवी लोक समुद्रादि जल और सम्पूर्ण मेघो पर शासन कर रहा है। सब उन्नति और उन्नति चाहने वाले मेधावियो पर भी उसी इन्द्र का शासन है। अपनी सब प्रकार की उन्नति और योग क्षेम के लिये हम सब को उसी दयालु पिता की प्रार्थना उपासना करनी चाहिये।

: २४ :

यो अर्यो मर्तभोजनं परादवाति दाशुष ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु विभजा भूरि ते वसु भक्षीय
तव राधस ॥ १।८१।६ ॥

पदार्थ—(य) जो (अर्य) सब का स्वामी ईश्वर (मर्त-भोजनम्) मनुष्यो के लिये भोजन (परा ददाति) ला कर देता है (दाशुषे) दान शील को विशेष कर देता है (इन्द्र) वह परमेश्वर (अस्मभ्यम्) हमें दे (शिक्षतु) शिक्षा भी करे। (विभजा) हे इन्द्र ! बाट कर दे। (भूरि ते वसु) तेरे पास बहुत धन है (भक्षीय तव राधस) आपके धन को हम भोगें।

भावार्थ—यदि परमेश्वर इस जगत् को रच और धारण कर अपने जीवो को अनेक पदार्थ न देता, तो किसी का कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त न हो सकती। जो यह परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यो को शिक्षा भी न करता, तो किसी को विद्या का लेश भी न प्राप्त होता। इसलिये सब ससार के पदार्थ और विद्या, बुद्धि आदि सब गुण प्रभु के ही दिए हुए हैं।

: २५ :

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमा हुरथो दिव्य स सुपर्णो
गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम
मातरिश्वानमाहु ॥ १।१६४।४६॥

पदार्थ—(विप्राः) मेधावी विद्वान् (एकम् सत्) एक सद्रूप परमात्मा को (बहुधा) अनेक प्रकार से (वदन्ति) वर्णन करते हैं, उसी एक को, इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि. (अथ उ) और (स) वह (दिव्यः) अलौकिक (सुपर्णः) उत्तम ज्ञान और उत्तम कर्म वाला (गरुत्मान्) गौरवयुक्त है, उसी को ही (यमम् मातरि-श्वानम्) यम और मातरिश्वा वायु (आहु) कहते हैं।

भावार्थ—एक परमात्मा के अनेक सार्थक नाम हैं जैसे इन्द्र, मित्र, वरूण अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम्, मातरिश्वा, इस मन्त्र मे कहे गए हैं, और अन्य अनेक मन्त्रो मे भी प्रभु के अनेक नाम वर्णित हैं। इन नामो से एक परमात्मा का ही उपदेश है। अनेक देवी देवताओ की उपासना का उपदेश वेदों मे नहीं है। स्वार्थी लोगो ने ही अनेक देवताओ की उपासना को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कहा है। वेदो मे तो इसका नाम निशान नहीं, वेदो मे एक परमात्मा की उपासना का ही विधान है ॥

: २६ :

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥
७।३२।२३॥

पदार्थ—हे (मघवन् इन्द्र) परम ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर! (त्वावान) आप जैसा (अन्य) आप से भिन्न (न दिव्यः) न द्यु लोक मे और (न पार्थिव) न ही पृथिवी पर (न जात.) न हुआ, और (न जनिष्यते न होगा। (अश्वायन्त) घोड़े आदि सवारियो की इच्छा करते हुए (गव्यन्त) दुग्धादिको के लिये गौवो की इच्छा करते हुए (वाजिन) ज्ञान और अन्न बलादि से युक्त हो कर (त्वा हवामहे) आपकी प्रार्थना उपासना करते हैं।

भावार्थ—परमेश्वर के तुल्य न कोई हुआ है और न होगा। सारे ब्रह्माण्ड उसी के बनाए हुए हैं और वही सबका पालनपोषण कर रहा है। अतएव हम सब नर नारी, उसी से गौ आदि अश्वादि उपकारक पशु और अन्न, जल, बल, धन ज्ञानादि मागते हैं। क्योंकि बडे राजा महाराजादि भी उसी से भिक्षा मांगने वाले हैं, हम भी उसी सब के दाता परमात्मा से इष्ट पदार्थ मांगते हैं।

: २७ :

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।

७।३२।२६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सर्वज्ञ प्रभो! (यथा पिता पुत्रेभ्य) जैसे पिता अपने पुत्रो को अच्छे ज्ञान और शुभ कर्मों को सिखलाता है, ऐसे ही आप (न) हमे (क्रतुम्) ज्ञान और शुभ कर्मों की ओर (आभर) ले चलो। (पुरुहूत) बहु पूज्य (न शिक्षा) हमे शिक्षा दो (अस्मिन् यामनि) इस जीवन यात्रा मे (जीवा) हम जीते हुए (ज्योति अशीमहि) आपकी दिव्य ज्योति को प्राप्त होवें।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् इन्द्र! हमे ज्ञानी और उद्यमी बनाओ, जैसे पिता पुत्रो को ज्ञानी और उद्योगी बनाता है। ऐसे हम भी आपके पुत्र ब्रह्मज्ञानी और सत्कर्मी बनें ऐसी प्रेरणा करो। हे भगवन्! *हम अपने जीवन काल मे ही, आपके कल्याण* कारक ज्योतिस्वरूप को प्राप्त होकर, अपने दुर्लभ मनुष्य-जन्म को सफल करें। दयामय परमात्मन्! आपकी कृपा के बिना न हम ज्ञानी बन सकते हैं, न ही सुकर्मी, अतएव हम पर आप कृपा करें कि हम आपके पुत्र ज्ञानी और सत्कर्मी बने।

: २८ :

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।
अग्निमीळे स उ श्रवत्। ८।४३।२४॥

पदार्थ—(विशाम्) सब राजाओ के (अद्भुतम् राजानम्) आश्चर्यकारक राजा (धर्मणाम्) धर्म कार्यों के (अध्यक्षम्) अधिष्ठाता अर्थात् फलप्रदाता (इमम् अग्निम्) इस अग्निदेव की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ, (स) वह देव (उ श्रवत्) अवश्य सुने।

भावार्थ—परमात्मदेव राजा और धार्मिक कामों के फल-प्रदाता हैं, अपने पुत्रों की प्रेमपूर्वक की हुई स्तुति प्रार्थना को बड़े प्रेम से सुनते है। हे जगत्पिता परमात्मन्! मेरी टूटे-फूटे शब्दों से की हुई प्रार्थना को आप अवश्य सुनें। जैसे तोतली वाणी से की हुई बालक पुत्र की प्रार्थना को सुनकर पिता प्रसन्न होता है, वैसे आप भी हम पर प्रसन्न होवें।

: २९ :

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या।
२।१।३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सर्वव्यापक ज्ञान स्वरूप ज्ञानप्रदाता परमात्मन्! (त्वम् इन्द्र) आप सारे ऐश्वर्य के स्वामी और (सताम् वृषभ) श्रेष्ठ पुरुषों पर सुख की वर्षा करने वाले (उरु-गाय) बहुत स्तुति के योग्य (नमस्य) नमस्कार करने योग्य (विषणु) सर्वत्र व्यापक हो। हे (ब्रह्मण पते) सारे ब्रह्माण्ड के और वेदों के रक्षक (त्व विधर्त) आप ही जगत् के धारण करने वाले है। (पुरन्ध्या सचसे) अपनी बड़ी बुद्धि से मिलते और प्यार करते हैं, (त्व रयिविद् ब्रह्मा) आप ही धन वाले ब्रह्मा है।

भावार्थ—परमात्मन्! आपके अनेक शुभ नाम हैं। जैसे अग्नि, इन्द्र, वृषभ, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति आदि, यह सब नाम सार्थक हैं, निरर्थक एक भी नहीं। प्रभु अपने प्रेमी भक्तों पर सुख की वृष्टि कर्त्ता और सब के वन्दनीय और स्तुत्य आप ही हो। जितने महानुभाव ऋषि मुनि हुए हैं, वे सब आप के भक्त गुण गाते गाते कल्याण को प्राप्त हुए। आप अपनी उदार बुद्धि से अपने भक्तों को सदा मिलते और प्यार करते है।

: ३० :

त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देव सविता रत्नधा असि। त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे, त्वं पायुर्दमे तेस्यऽविधत् ।
२।१।७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पूजनीय नेता (अरकृते) श्रेष्ठ आचरणो से अलकृत उद्यमी पुरुष के लिये (त्व द्रविणोदा) आप धन के दाता देव सब जगत् के जनक और (रत्नधा) रमणीय पदार्थों के धारण करने वाले (असि) हैं, हे (नृपते) मनुष्यमात्र के स्वामी (त्व भग) आप ही भजनीय सेवनीय हैं (वस्व) धन के (ईशिषे) नियन्ता हैं (दमे) सब इन्द्रियो का दमन कर (य ते अविधत्) जो आपकी भक्ति प्रार्थना उपासना करता है (त्व पायु) आप ही उसके रक्षक हो।

भावार्थ—हे पूजनीय सबके नेता परमात्मन् ! जो भद्र पुरुष श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले है, उनको आप धन देते हो, उन प्रेमी भक्तो के लिये ही आपने रमणीय सकल ब्रह्माण्ड धारण किए हुए हैं, जो श्रेष्ठ पुरुष अपनी इन्द्रियो का दमन करके आपकी उपासना करते है, उनकी रक्षा करते हुए, उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पुरुषार्थ प्रदान करते हो।

: ३१ :

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् । सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीर यन्ति व्रतपामदाभ्य ।
१।३१।१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सबके नेता प्रभो (त्व प्रमति) आप श्रेष्ठ ज्ञान वाले और (नः पिता असि) हमारे पालन पोषण करने वाले पिता (वय कृत्) जीवनदाता है। (वय तव जामय) हम सब आपके बान्धव हैं। हे (अदाभ्य) किसी से न दबने वाले परमात्मन्

(सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त और (व्रतपाम्) नियमो के रक्षक (त्वा शतिन) आपको सैकडो (सहस्रिण) हजारो (राय) धन ऐश्वर्य (सयन्ति) प्राप्त हैं।

भावार्थ—हे परमपिता जगदीश! आप ही सबको सुबुद्धि प्रदान करते हैं, जीवन दाता और सबके पिता भी आप ही हैं। हम सब आपके बन्धु हैं, आप किसी से दबते नही, महासमर्थ होकर भी अपने अटल नियमो के पालन करने वाले हैं। सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों के आप ही स्वामी है। हम आपकी शरण मे आए हैं, हमे सुबुद्धि और अनेक प्रकार का ऐश्वर्य देकर सदा सुखी बनावें, हम सुखी होकर भी आपकी सदा भक्ति करते रहे।

: ३२ ·

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्त्ताः। शतं नो रास्व शरदो विचक्षे अश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा॥ २।२७।१०॥

पदार्थ—हे (वरुण) सर्वोत्तम! हे (असुर) प्राणदात (त्व विश्वेषाम् राजा) आप उन सबके राजा (असि) हो (ये च देवा) जो देवता है (ये च) और जो (मर्ता) मनुष्य हैं (न) हमे (शत शरद) सौ बरस आयु (विचक्षे) देखने के लिए (रास्व) दो, (सुधितानि) अच्छी स्थापन की हुई (पूर्वा) मुख्य (आयूषि) आयुओ को (अश्याम) प्राप्त होवे।

भावार्थ—हे जीवनदाता सर्वोत्तम परमात्मन्! ससार मे जितने दिव्य शक्ति वाले अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रादि जड देव है, और चेतन विद्वान् मनुष्य भी जो देव कहलाने के योग्य है, इन सबके आप ही राजा, स्वामी हो, इसलिए आपसे ही मागते हैं कि हमे आपके ज्ञान और भक्ति के लिए सौ बरस पर्यन्त जीता रक्खो, जिससे हम मुख्य पवित्र आयु को प्राप्त होकर अपना और जगत् का कुछ कल्याण कर सके।

: ३३ :

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्व मित्रो भवसि दस्म ईड्यः। त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुज त्वमशो विदथे देव भाजयु ॥ २।१।४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सबके पूज्य देव (त्व राजा वरुण) तू ही सबका राजा वरुण (धृतव्रत) नियमो को धारण करने वाला (दस्म) दर्शनीय (मित्र) सबका मित्र और (ईड्य) स्तुति करने योग्य (भवसि) है। (त्वम् अर्यमा) तू ही न्यायकारी (त्वम् सत्पति) तू ही सज्जनो का पालक (यस्य) जिसका (सभुजम्) दान सर्वत्र फैला हुआ है (त्व अश) तू यथा योग्य विभाजक (विदथे) यज्ञादिको म (भाजयु) सेवनीय होता है।

भावार्थ—परमात्मा के अग्नि, देव, वरुण, मित्र, अर्यमा, अशादि अनक नाम है। इसी की यज्ञादि उत्तम कर्मों मे स्तुति करनी चाहिये। वही सबको उनके कर्म अनुसार फल देने वाला है, और वही सेवनीय है।

: ३४ :

यो मृडयाति चक्रुषे चिदागो वय स्याम वरुणे अनागा। अनुव्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न ॥ ७।८७।७॥

पदार्थ—(य) जो प्रभु (आग चक्रुषे) अपराध करने वाले पर (चित्) भी (मृडयाति) दया रखता है (वरुणे) उस श्रेष्ठ जगदीश्वर के समीप (वयम् अनागा स्याम) हम अपराध हीन होवे (अदिते) उस अखण्ड अविनाशी परमेश्वर के (व्रतानि अनु) *नियमो के अनुसार (ऋधन्त) आचरण करे। हे महात्मा पुरुषो!* (यूयम्) आप लोग (न) हमे (स्वस्तिभि) कल्याणो से (पात) रक्षित करो।

भावार्थ—हम जीव अनेक अपराध करते हैं, तो भी वह दयालु पिता, हमे अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थ देता ही रहता है। वही प्रभु हमे उत्तम वेदानुयायी विद्वान् भक्त महापुरुषो का सहवास भी देता है। उन महात्माओ के उपदेशो से हम भी प्रभु के अनन्य भक्त बनकर कल्याण के भागी बन जाते है ॥३४॥

: ३५ :

तमध्वरेष्वीडते देव मर्ता अमर्त्यम् ।
यजिष्ठ मानुषे जने ॥ ५।१४।२॥

पदार्थ—(मर्ता) मनुष्य (मानुषे जने) मनुष्य मात्र के अन्दर वर्त्तमान (त यजिष्ठम्) उस पूजनीय (अमर्त्यम्) अमर देव की (अध्वरेषु) यज्ञादि उत्तम कर्मों मे (ईलते) स्तुति करते हैं।

भावार्थ—जगत्पिता परमात्मा अन्तर्यामी रूप से मनुष्यमात्र के अन्दर विराजमान है, वही अमर और सबका पूजनीय है, उसी की यज्ञादि उत्तम कर्मों मे बडे प्रेम से उपासना करनी चाहिए। जिन यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों मे, उस अमर और पूजनीय प्रभु की उपासना, प्रार्थना प्रेम से की गई हो, वह यज्ञादि कर्म निर्विघ्न समाप्त होते और अत्यन्त कल्याणके साधक बनते है।

: ३६ :

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि संजयामि शश्वत । मां हवन्ते पितर न जन्तवोऽह दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥ १०।४८।१॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (वसुन) धन का (पूर्व्य पति) मुख्य स्वामी (भुवम्) होता हू, (अहम् शश्वत धनानि) मैं सनातन धनो को (सजयामि) उत्तम रीति से प्राप्त करता हू। (जन्तव) सब मनुष्य (पितर न) पिता की नाई (मा हवन्ते) मुझे धन प्राप्ति

के लिये पुकारते हैं (अह दाषे) मैं दानशील के लिये (भोजनम् विभजामि) अनेक प्रकार के धन और भोजनादि सुन्दर २ पदार्थ देता हूँ ।

भावार्थ—परमदयालु परमात्मा, मनुष्यो को वेद द्वारा उपदेश देते हैं—हे मेरे पुत्रो ! मैं सब धनो का स्वामी हू, मेरे अधीन ही सब पदार्थ हैं । जैसे बालक अपने पिता से मागते है, वैसे ही सब मनुष्य मुझसे मागते है, सब का दाता मैं ही हू । परन्तु दानशील मनुष्य को मैं विशेष रूप से धनादि पदार्थदेता हूँ, क्योकि वह दाता सदा उत्तम कर्मों मे ही धन को खर्च करता है ।

: ३७ :

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः । यं कामये त तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माण तमृषिं तं सुमेधाम् ।। १०।१२५।५।।

पदार्थ—(अहम् एव स्वयम्) मैं आप ही (इदम् वदामि) यह कहता हूँ, (जुष्टम् देवेभि) जो मेरा वचन विद्वानो ने प्रेम से सुना (उत मानुषेभि) और सब मनुष्यो ने भी प्रीतिपूर्वक सेवन किया । (य कामये त त उग्र कृणोमि) जिस-जिसको मैं चाहता हूँ उस उसको तेजस्वी क्षत्रिय बनाता हूँ,(त ब्रह्माणम्) उसको ब्रह्मा, चारो वेदो का वक्ता (त ऋषिम्) उसको ऋषि (त सुमेधाम) उसको धारण करने वाली श्रेष्ठ बुद्धिवाला बनाता हूँ ।

भावार्थ—परमदयालु पिता वेद द्वारा हम सब को कहते है कि हे मेरे प्यारे पुत्रो ! मेरे वचनो को सब विद्वानो ने और साधारण बुद्धिवाले मनुष्यो ने बडे प्रेम से सुना और सेवन किया । मै ही तेजस्वी क्षत्रिय को, चार वेद का वक्ता ब्रह्मा, ऋषि को और उज्ज्वल बुद्धि वाले सज्जन को बनाता हूँ । आप लोग वेदानुकूल कर्म करने वाले मेरे प्रेमी भक्त बनो, ताकि मैं आप लोगो को भी उत्तम बनाऊँ ।

: ३८ :

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय । अहमपो अनयं ववाशाना मम देवासोअ नुकेतमायन् ॥४।२६।२॥

पदार्थ—(आर्याय अह भूमिम् अददाम्) मैं अपने पुत्र आर्य पुरुष को पृथ्वी देता हूँ, (अहम्) मैं (दादुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के लिये धन की (वृष्टिम्) वर्षा करता हू (अहम्) मैं ही (वावशाना अप) बडे शब्द करने वाले जलो को (अनयम्) पृथिवी पर लाया हूँ (देवास) विद्वान् लोग (मम केतम्) मेरे ज्ञान के (अनुआयन्) अनुसार चलते हैं ।

भावार्थ—दयामय परमात्मा का उपदेश है कि बुद्धिमान् आर्य पुरुषो । मैं अपने पुत्र आर्य पुरुषो आप लोगो को पृथिवी देता हूँ, धनादि उत्तम पदार्थों की आपके लिये वर्षा करता हू, नदियो का उत्तम जल भी मैं आप लोगो के लिये लाता और बरसाता हूँ, तुम अपनी अयोग्यता से खो देते हो । धार्मिक विद्वान् बनो, क्योकि सब विद्वान् मेरे ज्ञान और मेरी आज्ञा के अनुसार चल कर ही सुखी होते है ।

: ३९ :

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति । ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ७।२७।३॥

पदार्थ—(इन्द्र) परमेश्वर (जगत) सारे जगत् का और (चर्षणीनाम्) मनुष्यो का (क्षमि अधि) पृथिवी मे (यत्) जो (वि-सुरूपम्) अनेक प्रकार का सुन्दर पदार्थ समुदाय (अस्ति) है उसका (राजा), प्रकाशक और स्वामी है (तत) उस पदार्थ समूह से (दाशुषे) दाता मनुष्य को (वसूनि) अनेक प्रकार के घनो को (ददाति) देता है, (चित्) यदि (अर्वाक्) प्रथम वह (राध) धन का

(चोदत्) प्रेरक (उपस्तुत) स्तुति किया गया हो ।

भावार्थ—जो यह सब स्थावर जगम ससार है, इस सब का प्रकाशक और स्वामी परमेश्वर है, वह सब को उनके कर्मानुसार अनेक प्रकार के धनादि सुन्दर पदार्थ प्रदान करता है । सब मनुष्यो को चाहिये कि उस प्रभु की वेदानुकूल स्तुति प्रार्थना उपासनादि करें, इस लिये अनेक सुन्दर पदार्थों की प्राप्ति के लिये भी, हमे उस जगत्पति की प्रार्थनादि करनी चाहिये ।

: ४० :

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आगहि ॥ १।४।३॥

पदार्थ—हे इन्द्र (ते अन्तमानाम्) आप के समीपवर्ती-आपकी आज्ञा मे स्थित (सुमतीनाम्) श्रेष्ठबुद्धि वाले महात्माओ के समागम से (विद्याम) आपके यथार्थ स्वरूप को हम जान लेवें और आप के (न) हम को (मा अतिख्य) हमारे हृदय मे स्थित हुये महात्माओ के उपदेश का उलघन करने वाला मत बनाओ किन्तु (आगहि) प्राप्त होओ ।

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप हमे सदाचारी, परोपकारी, विद्वान् अपने भक्त, महात्मा सन्तजनो का सत्सङ्ग दो क्योकि सत्सङ्ग के प्रभाव से अनेक नीच उत्तम बन गये, मूर्ख विद्वान् बन गये, जिनको प्रथम कोई नही जानता था, वे माननीय कीर्ति वाले बन गये दुराचारी दुर्व्यसनी पतित भी आप के अनन्य भक्त, सदाचारी और पतितपावन बन गए, सत्सङ्ग की महिमा अपार है । सत्सङ्ग से जो २ लाभ होते हैं, वे लिखे वा कहे नही जा सकते । इस लिये पिता जी! आप ने हम को वेद द्वारा कहा है कि तुम मेरे से सत्सग की प्रार्थना करो, जिससे तुम्हारा यह मनुष्य जन्म सफल हो । बिना सत्सग के श्रद्धाहीन महामलीन पराधीन निश-

दिन विषयो मे लवलीन, व्यर्थ बकबक करने वालो को कुछ भी लाभ नही होता।

: ४१ :

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।
१०।१२१।१॥

पदार्थ—(हिरण्यगर्भ) सूर्यचन्द्रादि तेजस्वी पदार्थों को उत्पन्न करके धारण करने वाला (अग्रे) सब जगत् की उत्पत्ति से प्रथम समवर्त्तत ठीक वर्त्तमान था, (भूतस्य) वही उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जात) प्रसिद्ध (पति) स्वामी (आसीत्) है, (स) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है। हम सब लोग (कस्मै) उस सुखस्वरूप प्रजापति (देवाय) सब सुख प्रदाता परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य प्रेम भक्ति से (विधेम) सेवा किया करें।

भावार्थ—जो परमात्मा इस ससार की रचना से प्रथम एक ही जाग रहा था, जीव गाढ निद्रा मे लीन थे और जगत् का कारण भी सूक्ष्मावस्था मे था, उसी परमात्मा ने पृथिवी सूर्य चन्द्रादि लोको को उत्पन्न करके धारण किया हुआ है, वही सुख, स्वरूप सब का स्वामी है, उसी सुखदाता जगत्पति की श्रद्धा और प्रेम से सदा भक्ति करनी चाहिये अन्य की नही।

: ४२ :

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवा। यस्यछायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
१०।१२।१।२।

पदार्थ—(य) जो (आत्मदा) आत्म ज्ञान का दाता (बलदा) और जो शरीर, आत्मा और समाज के बल का दाता है (यस्य)

जिसकी (विश्वे) सब (देवा) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते है और (यस्य) जिसकी (प्रशिषम्) उत्तम शासन पद्धति को मानते है (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है और (यस्य) जिसका न मानना, भक्ति न करना ही (मृत्यु) मरण है (कस्मै देवाय) उस सुखस्वरूप सकल ज्ञानप्रद परमात्मा की प्राप्ति के लिय (हविषा) श्रद्धा भक्ति से हम (विधेम) वैदिक आज्ञा पालन करने मे तत्पर रहे।

भावार्थ—वह पूर्ण परमात्मा अपने भक्तो को अपना ज्ञान और सब प्रकार का बल प्रदान करता है। सब विद्वान् लोग जिसकी सदा उपासना करते है और जिस की ही वैदिक आज्ञा को शिरोधार्य मानते है, जिसकी उपासना करना मुक्तिदायक है, जिसकी भक्ति न करना बारबार ससार मे, अनेक जन्ममरणादि कष्टो का देने वाला है। इसलिये ऐसे प्रभु मे हमे कभी विमुख न होना चाहिये।

४३ :

य प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०।१२।३॥

पदार्थ—(य) जो (प्राणत) श्वास लेने वाले (निमिषत) और अप्राणिरूप (जगत) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) हुआ है (य) जो (अस्य द्विपद) इस दो पाव वाले शरीर और (चतुष्पद) गौ आदि चार पाव वाले शरीर की (ईशे) रचना करके उन पर शासन करता है (कस्मै) सुख स्वरूप, सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परमब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप तो सब जगत् के महाराजाधिराज, समस्त जगत के उत्पन्न करने हारे, सकल ऐश्वर्य युक्त महात्मा न्यायाधीश हैं। आप जगत्पति की उपासना से ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह चारो पुरुषार्थ प्राप्त हो सकते है, अन्य की उपासना से कभी नही।

: ४४ :

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभित येन नाक । यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०।२१।५॥

पदार्थ—(येन) जिस परमेश्वर से (उग्रा) तेजस्वी (द्यौ) प्रकाशमान सूर्यादि लोक और (दृढा) बडी दृढ (पृथिवी) पृथिवी (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्व) सामान्य सुख (स्तभितम्) धारण किया और (येन) जिस प्रभु ने (नाक) दुखरहित मुक्ति को भी धारण किया है। (य) जो (अन्तरिक्षे) आकाश मे (रजस) लोक लोकान्तरो को (विमान) निर्माण करता और भ्रमण कराता है। जैसे आकाश मे पक्षी उडते है ऐसे ही सब लोक जिसकी प्रेरणा से घूम रहे है (कस्मै) उस सुखदायक (देवाय) दिव्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा विधेम) प्रेम से भक्ति करे।

भावार्थ - हे जगत्पते ! आपने ही बडे तेजस्वी सूर्यचन्द्रादि लोक और बिस्तीर्ण पृथिवी आदि लोक और सामान्य सुख और सब दुखो से रहित मुक्ति सुख को भी धारण किया हुआ है, अर्थात् सब प्रकार का सुख आपके अधीन है, ऐसे समर्थ, आकाश की न्याई व्यापक, आप की भक्ति से ही लोक परलोक का सुख प्राप्त हो सकना है अन्यथा नही।

: ४५ :

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १०।१२१।१०।

पदार्थ—हे (प्रजापते) प्रजापालक, प्रजा के स्वामी परमात्मन्! (त्वत्) आप से (अन्य) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए, जड़ चेतनादिकों को (न) नही (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि है (यत्कामा) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुम) आश्रय लेवे और वाछा करे (तत्) वह पदार्थ (न) हमारे लिये (अस्तु) वर्त्तमान हो (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) सब प्रकार के धनो के (पतय स्याम) स्वामी होवें।

भावार्थ—हे जगत्पते अन्तर्यामिन्! आप सारे जगतो पर अखण्ड राज्य कर रहे हो। आपके बिना दूसरे किसकी शक्ति है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष लोक लोकान्तरो पर शासन करे? आप की कृपा से ही आपके उपासकों को इस लोक और परलोक का ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है।

: ४६ :

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ २।१२।९।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (यस्मात् ऋते) जिस आपकी कृपा के बिना (जनास) मनुष्य (न विजयन्ते) विजय को नही प्राप्त होते (युध्यमाना) युद्ध करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (यम् हवन्ते) जिस आपकी प्रार्थना करते हैं (य) जो भगवान्

(विश्वस्य) सब जगत् का (प्रतिमानम् बभूव) प्रत्यक्ष मापने वाला है (यो अच्युत च्युत्) जो प्रभु आप न गिरता हुआ दूसरो को गिराने वाला है (जनास) हे मनुष्यो ! (स इन्द्र) वह इन्द्र है ।

भावार्थ--जिस प्रभु की कृपा के विना मनुष्य कभी विजय को नही प्राप्त हा सकत । काम क्रोधादि आभ्यन्तर शत्रुओ के साथ और बाहिर के शत्रुओ के साथ भी युद्ध करते हुए, अपनी रक्षा के लिये जिसकी प्रार्थना सब मनुष्य करते है । जो प्रभु आप अटल हुआ भी दूसरे सबो को गिरा देता है । हे मनुष्यो ! वह सर्व-शक्तिमान् जगदीश्वर ही इन्द्र है, ऐसा आप सब लोग जानो ।

: ४७ ·

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्ष महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वा-वान् ॥ १।५२।१३॥

पदार्थ—(त्वम्) भगवन् ! आप (भुव) अन्तरिक्ष और (पृथिव्या) विस्तृत भूमि के (प्रतिमानम्) प्रत्यक्ष मापने वाले (बृहत) बडे द्युलोक के (पति भू) स्वामी है (विश्वम्) सब (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को आपने (महित्वा) अपने महत्त्व से (आप्रा) परिपूर्ण किया है (सत्यम) यह सत्य (अद्धा) और निश्चित है कि (त्वावान्) आप जैसा (अन्य न कि) दूसरा कोई नही ।

भावार्थ—परमेश्वर आकाश और सारी पृथिवी को प्रत्यक्ष मापने और जानने वाला है, बडे-बडे दर्शनीय वीर और नक्षत्रो वाले महान् द्युलोक का भी स्वामी है । सारे मध्यलोक को जिस प्रभु ने व्याप्त कर रक्खा है । यह निश्चित सत्य है, कि उस जैसा दूसरा कोई तीनो लोको मे न हुआ, न है और न ही होगा ।

: ४८ :

त्व विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः। तवायं विश्व पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ ७।३२।१७॥

पदार्थ—हे दयामय जगदीश (त्वम् विश्वस्य धनदा असि) आप सबको धन देने वाले है (ये आजय) जो युद्ध (ईं भवन्ति) यहा होते है उनमे भी (श्रुत) आपका यश होता है (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गये ! (तव अयम्) आपका यह (पार्थिव) पृथिवी पर रहने वाला (अवस्यु) अपनी रक्षा चाहने वाला मनुष्य (नाम) प्रसिद्ध (भिक्षते) आपसे ही सब कुछ मागता है।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! सारे जगत् मे जितने मनुष्य है ये सब, आपसे ही अपनी रक्षा चाहते हैं और आपसे ही अनेक प्रकार का धन ऐश्वर्य मागते है। आप उनके कर्मानुसार उनकी रक्षा करते और धन भी देते है। जिस धन के लिए ससार मे अनेक युद्ध हुए और होते रहते हैं, उस धन के प्रदाता भी आप ही हैं, बडे-बडे राजा महाराजा भी आपके आगे सब भिखारी हैं। आप अपने प्यारे भक्तो से प्रसन्न होकर सब धनादि पदार्थ देकर इस लोक मे सुखी करते, और परलोक मे भी मुक्ति सुख देकर सदा सुखी बनाते हैं।

: ४९ :

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडत्सु न.। बल तोकाय तनयाय जीवसे त्व हि बलदा असि। ३।५३।१८॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (न तनूषु) हमारे शरीर मे (बल धेहि) बल दो (न अनरुडत्सु) हमारे बैलादि पशुओ को बल दो, (बल तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र-पौत्रो को बल दो। (जीवसे) सुखपूर्वक जीने के लिये (त्वम् हि बलदा असि) आप ही बलदाता हो।

भावार्थ—हे महा समर्थ परमेश्वर ! कृपा करके हमारे शरीरो मे बल प्रदान करे, जिससे हम आपकी भक्ति और वेद विचार, प्रचारादि कर सके, ऐसे ही हमारे पुत्र, पौत्रादि सन्तानो मे भी बल और जीवन प्रदान करे जिससे उनमे भी, आपकी भक्ति, और वेद विचारादि उत्तम साधनो का सद्भाव बना रहे, और जिससे सब लोग आस्तिक और आपके प्रेमी भक्त बनकर सदा सुख के भागी बनें। भगवन् ! आप ही सबके बलप्रदाता हो, इसलिए आपसे ही बल की हम लोग प्रार्थना करते है।

: ५० :

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काम-मापृण। अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इय च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ १।५७।५॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (भूरि ते वीर्यम्) आपका बल बडा है (तव स्मसि) हम आपके है, (मघवन्) हे धनवान् प्रभो ! (अस्य स्तोतु.) अपने इस स्तोता की (कामम् आपृण) कामना को पूर्ण करो (बृहती द्यौ) यह बडा द्युलोक (ते वीर्यम्) आपके बल का (अनुममे) अनुमान कर रहा है (इयम् च पृथिवी) और यह पृथिवी (ते ओजसे नेमे) आपके बल के सामने नम्र हो रही है।

भावार्थ—हे समर्थ प्रभो ! आप महाबली हो, यह समग्र पृथिवी और यह बडा द्युलोक आपने ही बनाया है। यह पृथिवी आदि लोक लोकान्तर, हमे अनुमान द्वारा बता रहे हैं, कि हमारा कर्ताधर्ता सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर है, क्योकि हम देखते है कि जड़ से अपने आप ही कोई पदार्थ उत्पन्न नही होता, चेतन जीव की इतनी शक्ति नही, कि इस सारी पृथिवी और द्युलोक, सूर्य, चन्द्र, मगल, बुध, बृहस्पति आदि लोक लोकान्तरो को उत्पन्न कर सके। इसलिए हम स्तोता, आपकी ही स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं, आप हमारी कामनाओ को पूर्ण करें।

: ५१ :

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे । दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमा जजान सूर्यमुषसं सुदंसा ॥ ३।३२।८॥

पदार्थ—(य) जो (पृथिवीम् दाधार) पृथिवी को उत्पन्न करके धारण कर रहा है । (उत इमाम् द्याम्) और इस द्यौलोक को उत्पन्न करके धारण कर रहा है और जिस (सुदसा श्रेष्ठ कर्मों वाले ने (सूर्य्यम्) सूर्य और (उषसम्) प्रभात को (जजान) उत्पन्न किया है उस (इन्द्रस्य कर्म) इन्द्र के कर्मों को जो (सुकृता) अच्छी तरह से किये हुए (पुरूणि) बहुत अनन्त और (व्रतानि) नियम बद्ध हैं, (विश्वे देवा) सब विद्वान् (न मिनन्ति) नही जानते ।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् इन्द्र के नियम बद्ध, अनन्त, श्रेष्ट कर्म हैं, जिनको बडे-बडे विद्वान् भी नही जान सकते । जिस प्रभु ने, इस सारी पृथिवी को और ऊपर के द्युलोक को उत्पन्न करके धारण किया है, और उसी उत्तम कर्मों वाले जगत्पति परमात्मा ने, इस तेजोराशी सूर्य को तथा प्रभात को उत्पन्न किया है । मनुष्यो के कैसे भी नियम बद्ध कर्म क्यो न हो, इनका उलट-पुलट होना हम देख रहे हैं, परन्तु उस जगदीश के अटल नियमो को कोई तोड नही सकता है ।

: ५२ .

मृत्यो॰ पद योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधाना । आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ १०।१८।२॥

पदार्थ—(मृत्यो पदम्) मृत्यु के पाव को (योपयन्त) परे हटाते हुए (द्राघीय आयु) लम्बी आयु को (प्रतरम्) अधिक दीर्घ बनाकर (दधाना.) धारण करते हुए (यदा एत) जब तुम चलो तब

(प्रजया धनेन) प्रजा में और धन में (आप्यायमाना) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (शुद्धा) बाहर से शुद्ध (पूता) मन से पवित्र (यज्ञियास) पूजनीय (भवत) होवो।

भावार्थ—परम दयालु जगदीश का उपदेश है, कि मेरे प्यारे पुत्रो! आप लोग मृत्यु के भाव, दुराचार और मन की अपवित्रता को परे हटाते हुए, सत्संग सदाचार ब्रह्मचर्य और वेदों के स्वाध्यायादि साधनों से, अपनी आयु को बढाते हुए मेरे मार्ग पर आओ। मेरी अनन्य भक्ति, आप लोगों को अन्दर बाहर से शुद्ध करती हुई, प्रजा धनादिकों से सन्तुष्ट करके पूजनीय बनावेगी।

· ५३ ·

सहस्र साकमर्चत परिष्टोभत विंशति। शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥ १।८०।९॥

पदार्थ—(सहस्रम्) हजार (साकम्) साथ मिलकर (अर्चत) स्तुति करो (परि स्तोभत) स्तोत्र उच्चारण करो (विंशति) बीस (शता) सैंकडो ने (एनम्) इसकी (अनु अनोनवु) बारम्बार स्तुति की है। (इन्द्राय) इन्द्र के लिए (ब्रह्म) मन्त्र रूप स्तुति (उत) ऊपर (अयतम) उठाई गई, वह (अनुस्वराज्यम्) अपने राज्य को (अर्चत) प्रकाशित करता हुआ विराजमान है।

भावार्थ—हे मुमुक्षु पुरुषो! आप हजार इकट्ठे होकर इन्द्र भगवान् की स्तुति करो, बीस इकट्ठे होकर स्तोत्र उच्चारण करो, इसकी सैंकडो ने बारम्बार स्तुति की है। ऋषि महात्माओं ने मन्त्र रूप स्तुति की ध्वनि को ऊपर उठाया है। वह इन्द्र भगवान् अपने राज्य को प्रकाशित करता हुआ विराजमान है। जो विदेशी लोग कहा करते है कि, भारतवासी, मिलकर बैठना और मिलकर प्रभु की प्रार्थना करना जानते ही नही उनको चाहिये कि, इस मन्त्र को देखे, हमारे महर्षि लोग, जो वेदो का अभ्यास करते थे,

वे सब इस बात को जानते थे। एकान्त वनो मे बैठकर उपासना करते, सभा समाजो मे भी आते, इकठ्ठे बैठकर प्रभु प्रार्थना करते कराते थे।

: ५४ :

तमित्सखित्व ईमहे त राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत न. शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ १।१०।६॥

पदार्थ—हम सब लोग (तम् इत्) उस इन्द्र को ही (सखित्ये) मित्रता के लिए (तम् राये) उसको धन के लिए (ईमहे) मागते है (स शक्र) वह शक्तिमान् है, (इन्द्र) उस इन्द्र ने (न) हमको (वसु दयमान) धन देते हुए (शकत्) शक्तिमान् किया है।

भावार्थ—हम सब लोग, उस इन्द्र परमेश्वर की, मित्रता के लिए, धन के लिए और उत्तम सामर्थ्य के लिए प्रार्थना करते हैं। उस शक्तिमान् इन्द्र प्रभु ने ही, हमे धन देते हुए, शक्तिमान् बनाया है। यदि वह परमात्मा, हमे शरीरबल, बुद्धिबल और सामाजिक बल न देता तो हम लोग कैसे जीवित रह सकते? सृष्टि रचना के आदि मे ही उस प्रभु ने मनुष्य जाति को उत्पन्न किया, बुद्धिबल आदि इस जाति को दिए तब ही तो यह मनुष्य जाति जीवित है, नही तो यह जाति कब की नष्ट भ्रष्ट हो जाती। इस जाति का नाश उस परमात्मा को अभीष्ट नही है।

: ५५ .

त्व न पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वत ।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवी ।८।६१।१६।

पदार्थ—हे इन्द्र प्रभो! (न पश्चात्) हमारी पीछे से (अधरात्) नीचे से (उत्तरात्) ऊपर से (पुर) आगे से और (विश्वत) सब ओर से (निपाहि) सदा रक्षा करें। (दैव्यम् भयम्) आधिदैविक भयको और (अदेवी) मनुष्य और राक्षसो से होने वाले (हेती)

भय को भी (अस्मत्) हम से (आरे कृणुहि) दूर करे ।

भावार्थ—हे कृपासिन्धो परमात्मन् ! पीछे से, नीचे से, ऊपर से, आगे से और सब दिशाओं से हमारी सब प्रकार सदा रक्षा करें । अग्नि, बिजली आदि से होने वाला आधिदैविक भय, और चिन्ता ज्वरादि से होने वाला आध्यात्मिक भय, सिंह, सर्प, चोर, डाकू, राक्षस, पिशाचादिकों से होने वाला, अनेक प्रकार का आधिभौतिक भय, हम से दूर हटावें, जिससे हम निर्भय होकर आप जगत्पिता की भक्ति में और आपकी वैदिक ज्ञान के प्रचार की आज्ञा पालन में सदा तत्पर रहें ॥

: ५६ :

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १।३०।७॥

पदार्थ—(सखाय) हे मित्रो ! (योगे योगे) प्रत्येक कार्य के आरम्भ में और (वाजे वाजे) प्रत्येक युद्ध में (तवस्तरम्) अति बल वाले (इन्द्रम्) इन्द्र को (ऊतये) रक्षा के लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ।

भावार्थ—हे मित्रो ! सब कार्यों के और सब युद्धों के आरम्भ में, अति बलवान् इन्द्र की, अपनी रक्षा के लिये हम सब लोग प्रेम से प्रार्थना करते हैं, जिससे हमारे सब कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हों । हमारे मन में ही जो सदा देवासुर संग्राम बना रहता है, सात्विक दैवी गुण, अपनी विजय चाहते हैं और तामसी राक्षसी गुण, अपनी विजय चाहते हैं । उनमें तामसी गुणों की पराजय हो कर, हमारे दैवी गुणों की विजय हो, जिससे हम इस आभ्यन्तर युद्ध में विजयी होकर इस लोक और परलोक में सदा सुखी रहें ।

: ५७ :

ऋर्षिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ॥८।६।४१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! आप (हि) निश्चित (ऋषि) सर्वज्ञ (पूर्वजा) सब से पूर्व विद्यमान (ओजसा) अपने बल से (एक ईशान असि) अकेले सब पर शासन करने वाले हैं और (वसु) सब धन को (चोष्कूयसे) अपने अधीन रखते हैं ।

भावार्थ—हे सब ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्र ! इस ससार मे सब से पूर्व विद्यमान आप ऋषि हैं । सब का द्रष्टा होने से आप को वेद ने ऋषि कहा है । ससार-भर का सारा धन आपके अधीन है । जिस पर आप प्रसन्न होते हैं, उसको अनेक प्रकार का धन आप ही देते हैं । और आप अकेले ही अपने अनन्त बल से सब पर शासन कर रहे हैं ।

५८ .

उतो घा ते पुरुष्याइदासन्येषा पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अघाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्व न इन्द्रासि प्रमति पितेव ॥
॥७।२९।४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमात्मन् ! (येषाम् पूर्वेषाम् ऋषीणाम्) जिन पूर्व कल्पो के ऋषियो की प्रार्थनाओ को (अशृणो) आप ने सुना (ते घा उत) वे भी तो (पुरुषा इत् आसन्) मनुष्य ही थे । हे (मघवन्) धनवान् ! (अघ अहम्) अब मैं (त्वा जोहवीमि) आप को बारम्बार पुकारता हूँ (त्वम् न) आप हमारे (पिता इव) पिता की नाईं (प्रमति असि) श्रेष्ठ मति देने वाले हैं ।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप पूर्व कल्पो के ऋषि महात्माओ की प्रार्थनाओ को बडे प्रेम से सुनते आये है । भगवन् ! वे भी तो मनुष्य ही थे । आप की कृपा से ही तो वे ऋषि महात्मा बन गए।

अब भी जिस पर आप की कृपा हो, वह ऋषि महात्मा बन सकता है। इसलिये हम आपकी बड़े प्रेम से बारम्बार प्रार्थना उपासना और स्तुति करते हैं, आप ही पिता की नाईं दयालु हो कर हमें श्रेष्ठ मति प्रदान करें, जिससे हम लोक और परलोक मे सदा सुखी हों।

: ५९ :

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ २।२१।६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन्! (अस्मे) हमको (श्रेष्ठानि) श्रेष्ठ (द्रविणानि) धन, (दक्षस्य) बल सम्बन्धी (चित्तिम्) ज्ञान (सुभगत्वम्) सब प्रकार का उत्तम ऐश्वर्य, (रयीणाम्) धनो की (पोषम्) बढ़ती (तनूनाम्) शरीरो की (अरिष्टिम्) अरोग्यता (वाच) वाणी की (स्वाद्मानम्) मधुरता और (अह्लाम्) दिनो का (सुदिनत्वम्) सुख पूर्वक बीतना (धेहि) दो।

भावार्थ—हे दयामय जगत्पिता परमात्मन्! हमको कृपा करके श्रेष्ठ धन दो। जिस ज्ञान से हमे सब प्रकार का बल प्राप्त हो सके, वैसा ज्ञान हमको दो। सब प्रकार का उत्तम से उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो। भगवन्! आपके पुत्र हम लोगो को धनों की वृद्धि, शरीर की आरोग्यता, वाणी की मधुरता, दिनों का सुख से बीतना दो। यह सब पदार्थ प्रसन्न होकर, आप अपने प्रेमी भक्तो को प्रदान करते हैं। इसलिए अपने प्रेम और भक्ति का भी हमे दान दो।

: ६० :

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन। सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन। १०।४८।५॥

पदार्थ—(अहम् इन्द्र.) मैं सब धन का स्वामी हूँ मेरे (धनम्) धन का (इत्) निश्चय से (न परा जिग्ये) पराजय नही होता। (कदाचन) मैं कभी (मृत्यवे) मृत्यु के लिये (न अवतस्थे) नही ठहरता अर्थात् मैं अमर हूँ। हे (पूरव) मनुष्यो! (मा) मेरे लिये (सोमम्) यज्ञ को (इत्) निश्चय से (सुन्वन्त) करते हुए (वसु याचत) धन की याचना करो (मे सख्ये) मेरी मित्रता मे (न रिषाथन) तुम नष्ट-भ्रष्ट नही होवोगे।

भावार्थ—परम दयालु जगदीश पिता हम को उपदेश करते हैं। हे मेरे प्यारे पुत्र मनुष्यो! मैं सब धन का स्वामी हूँ, मेरे धन को कोई छीन नही सकता, और मैं अमर हूं, मृत्यु मुझे नही मार सकता। आप लोग मेरी प्रसन्नता के लिये, यज्ञादि वेदविहित उत्तम कर्मों को करते हुए, धन की प्रार्थना करो, मैं आपकी कामना को पूर्ण करूंगा। आप यह बात निश्चित जान लो, कि जो मेरा भक्त मेरी प्रसन्नता के लिए, यज्ञ, तप, दान वेदादि सच्छास्त्रो का स्वाध्यायादि करता हुआ, मेरे साथ मित्रता करता है, उसका कभी नाश नही होता, किन्तु वह उत्तम गति को ही प्राप्त होता है।

६१ :

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमि परिता बभूव ॥
१।३२।१५॥

पदार्थ—(वज्रबाहु इन्द्र) प्रबल भुजाओ वाला इन्द्र (यात) जङ्गम (अवसितस्य) स्थावर (शमस्य) शान्त (च) और (शृङ्गिण) सींग वाले लडाके प्राणियो का भी (राजा) राजा है। (स इत् उ) निश्चित् वही (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यो पर (क्षयति) शासन करता है (न) जैसे (नेमि) पहिये की धार (अरान्) पहिये के आरो को (परि बभूव) घेरे हुए है ऐसे ही (ता) उन सब चर

अचर को वही राजा (परि बभूव) घेरे हुए है।

भावार्थ—वह प्रबल राजा इन्द्र, स्थावर, जगम, शान्त और लड़ाके प्राणियो पर भी शासन कर रहा है। जैसे रथचक्र की धार, सब अरो को घेरे हुए है ऐसे ही वह इन्द्र जगत् के जड़ चेतन प्राणी अप्राणी सब को घेरे हुए हैं। उस इन्द्र के शासन मे ही सब मनुष्य पशु पक्षी आदि वर्त्तमान हैं उसके शासन का कोई उल्लघन नहीं कर सकता।

: ६२ :

न किरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
न किर्वक्ता न दादिति॥ ८।३२।१५॥

पदार्थ—(अस्य) इस इन्द्र की (शचीनाम्) शक्तियो का (सूनृतानाम्) सच्ची और मीठी वाणियो का (नियन्ता) नियन्ता (न कि) नहीं है (न दात् इति) इन्द्र ने मुझे नही दिया ऐसा (वक्ता) कहने वाला (न कि) कोई नही है।

भावार्थ—उस भगवान् इन्द्र की शक्तियो का और उसकी सत्य और मीठी वाणियो का नियम बाधने वाला कोई नही है। और कोई नही कह सकता कि इन्द्र ने मुझे कुछ नही दिया, क्योकि सब को सब कुछ देने वाला वह इन्द्र ही है।

: ६३ :

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः। २।४१।११॥

पदार्थ—(इन्द्र च) परमात्मा ही (न) हम पर (मृडयाति) दया करे (न पश्चात्) हमारे पीछे से (अघम्) पाप (न नशत्) प्राप्त न हो किन्तु (न पुर) हमारे सन्मुख (भद्रम् भवाति) अच्छा कर्म और उसका फल भद्र हो।

भावार्थ—पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर, अपनी अपार दया से

हमे सुखी करे। हमारे आगे, पीछे कही दु ख का नाम न हो, जिधर भी देखें सुख-ही-सुख हो, कल्याण की वर्षा होती हुई दिखाई देवे

: ६४ :

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ २।४१।१२॥

पदार्थ—(इन्द्र) परमेश्वर (शत्रून् जेता) जो प्रजा पीडको का जीतने वाला और (विचर्षणि) सब को पृथक्-पृथक् देखने वाला है (सर्वाभ्य आशाभ्य) हमे सब दिशाओ से और (परि) सब ओर से (अभयम् करत्) निर्भय करे ।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ! जिस २ दिशा से और जिस २ कारण से हमे भय प्राप्त होने लगे, उस २ दिशा से और उस २ कारण से हमे निर्भय करें। भगवन् ! आपके प्रेमी भक्तो के जो शत्रु हैं उन सब को आप भली प्रकार जानते हैं, आप से कोई भी छिपा नही । उन हमारी जाति और धर्म के विरोधी बाहिर के शत्रुओ से, और विशेष कर अन्दर के काम, क्रोध, लोभादि हमारे घातक शत्रुओ से हमारी रक्षा कीजिए ।

: ६५ :

इन्द्र परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥
४।२५।८

पदार्थ—(परे) उच्च श्रेणी के मनुष्य (अवरे) नीच श्रेणी के मनुष्य (मध्यमास) मध्यम श्रेणी के मनुष्य (इन्द्रम्) इन्द्र को (हवन्ते) बुलाते हैं (यान्त) मार्ग मे चलने वाले और (अवसितास) कर्म करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र को बुलाते हैं (क्षियन्त) घरों मे

निवास करने वाले (उत) और (युध्यमाना) युद्ध करने वाले मनुष्य (वाजयन्त) धन, अन्न, बल की इच्छा वाले (नर) सब नर नारी उसी इन्द्र को बुलाते हैं।

भावार्थ—संसार में उच्च कोटि के, नीच कोटि के और मध्यम कोटि के सब मनुष्य, उस सर्वशक्तिमान् जगदीश की प्रार्थना करते है। तथा मार्ग मे चलने वाले और अपने अपने कर्त्तव्य कर्मों मे लगे हुए, अपने घरो मे निवास करते हुए उस जगत्पति को बुलाते है। युद्ध करने वाले वीर पुरुष भी, अपनी विजय चाहते हुए, उस प्रभु को स्मरण करते और बुलाते है। किंबहुना संसार मे धान्य बलादि की इच्छा करने वाले सब नर नारी, उस परम पिता के आगे प्रार्थना करते है। परमात्मा सब की पुकार सुनते और उनकी यथायोग्य कामनाओं को पूरा भी करते हैं।

· ६६ ·

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १।९१।५॥

पदार्थ—हे (सोम) सकल जगत् उत्पादक और सत्कर्मों मे प्रेरक शान्तस्वरूप शान्तिदायक परमात्मन्! (त्वम् सत्पति असि) आप सत्पुरुषो के पालन करने वाले हो आप ही सब के (राजा) स्वामी (उत) और (वृत्रहा) मेघो के रचक, धारक और मारक हो (त्वम् भद्र असि) आप कल्याणस्वरूप, कल्याणकारक और (क्रतु) सब के कर्ता हो।

भावार्थ—हे सकल ब्रह्माण्डो के उत्पन्न करने वाले, सत्कर्मों मे प्रेरक और शान्ति देने वाले सोम परमात्मन्! आप श्रेष्ठ पुरुषो के पालन करने वाले, सब चर और अचर जगत् के राजा और मेघो के उत्पादक धारक और मारक हो। आप कल्याण स्वरूप, अपने भक्तो का कल्याण करने वाले और सारे जगत् के उत्पन्न करने वाले हो।

: ६७ :

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे ।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ १।९१।६॥

पदार्थ—हे (सोम) सत्कर्मों मे प्रेरक प्रभो ! आप (न) हमारे (जीवातुम्) जीवन की (वश) कामना करने वाले (प्रियस्तोत्र) और जिन के गुणो का कथन प्रेम उत्पन्न करने वाला है ऐसे (वनस्पति) आप अपने भक्तो की और सेवनीय पदार्थों की पालना करने वाले हैं। आपको जान कर (न मरामहे) हम मृत्यु को प्राप्त नहीं होते किन्तु मोक्षरूप अमर अवस्था को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की भक्ति करते और उसकी वैदिक आज्ञा के अनुसार अपना जीवन बनाते हुए उसके नियमानुकूलचलते हैं, वे पूरी आयु पाते हैं और इस भौतिक देह को त्याग कर मुक्ति धाम को प्राप्त होते हैं।

: ६८ :

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे ।
ताभिर्नोऽविता भव ॥ १।९१।९॥

पदार्थ—हे (सोम) परमेश्वर (ते) आपकी (या) जो (मयोभुव) सुख की उत्पन्न करने वाली (ऊतय) रक्षणादि क्रियाए (दाशुषे सन्ति) दानी धर्मात्मा मनुष्य के लिये हैं (ताभि) उनसे (न) हमारे (अविता भव) रक्षा आदि के करने वाले अपने हूजिये।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप का नियम है, कि जो यज्ञ दानादि उत्तम वैदिक कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष हैं, उनकी आप सदा रक्षा करते हैं। उन रक्षा आदि क्रियाओ से आप हम भक्तो की रक्षा कीजिये।

: ६९ :

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः ।
सुमृडीको न आ विश ॥ १।९१।११॥

पदार्थ—हे सोम ! (वचोविद) वेद शास्त्रादिको के वचनो के ज्ञाता (वयम्) हम लोग (गीर्भि) अनेक स्तुति समूहो से (त्वा) आपको (वर्द्धयाम) बढाते अर्थात् सर्वोपरि विराजमान मानते हैं (सुमृडीक) उत्तम सुख के दाता आप (न) हम लोगो को (आविश) प्राप्त होओ ।

भावार्थ—हे वेदवेद्य परमात्मन् ! वेदादि श्रेष्ठ विद्या के ज्ञाता हम लोग, आपकी अनेक पवित्र वेद मन्त्रो से महिमा को गाते हुए, आप सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकर्त्ता, अन्तर्यामी के ध्यान मे निमग्न होते हैं । दयामय प्रभो ! हम आपकी कृपा से अपने हृदय मे आपको अनुभव करें, जिससे हम लोग सदा सुखी होवें । क्योकि आपकी वाणी रूपी वेद मे लिखा है 'तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्या पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् उस प्रभु को जान कर ही मनुष्य मृत्यु से पार हो जाता है । मुक्ति के लिये और कोई दूसरा मार्ग नही है ।

: ७० :

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते ।
दक्षं दधासि जीवसे । १।९१।७॥

पदार्थ—हे सोम ! (त्वम्) आप (ऋतायते) विशेष ज्ञान की इच्छा करने हारे (महे) महापूज्यगुणयुक्त (यूने) ब्रह्मचर्य्य और विद्या से तरुण अवस्था को प्राप्त हुए ब्रह्मचारी के लिये (भगम्) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को तथा (त्वम्) आप (जीवसे) जीने के लिये (दक्षम्) बल को (दधासि) धारण कराते हैं ।

भावार्थ— शान्तिप्रद सोम ! आप, श्रेष्ठगुणयुक्त और ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न जिज्ञासु अपने भक्त को, अनेक प्रकार का ऐश्वर्य और बहुत काल तक जीने के लिए बल प्रदान करते हो। आपकी भक्ति और ब्रह्मचर्य्यादि साधनो के बिना कोई चिरजीवी नही हो सकता, न ही लोक परलोक मे सुखी हो सकता है।

: ७१ :

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायत ।
न रिष्येत् त्वावत सखा ॥ १।६१।८॥

पदार्थ—हे सोम ! (त्वम्) आप (न) हमारी (विश्वत) समस्त (अघायत) पापी पुरुषो से (रक्ष) रक्षा कीजिये। हे (राजन्) सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाले ! (त्वावत) आपका (सखा) मित्र (न रिष्येत्) कभी नष्ट नही होता।

भावार्थ—पुरुषो को इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करना चाहिए कि जिससे धर्म को छोडने और अधर्म के ग्रहण करने की इच्छा भी न उठे। धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति मे मन की इच्छा ही कारण है। मन को सत्सग, स्वाध्याय और प्रभु भक्ति मे लगाने से, धर्म के त्याग और अधर्म के ग्रहण मे इच्छा ही न होगी।

: ७२ :

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धन ।
सुमित्र सोम नो भव ॥ १।६१।१२॥

पदार्थ—हे सोम ! आप (गयस्फान) धन, जनपद, प्रजा, सुराज्य के बढाने वाले (अमीवहा) सब रोगो के विनाश करने वाले (वसुवित्) पृथिवी आदि वसुओ के जानने वाले अर्थात् सर्वज्ञ और विद्या, सुवर्णादि धन के दाता (पुष्टिवर्धन) शरीर, मन, इन्द्रिय और आत्मा की पुष्टि को बढाने वाले हैं (न) हमारे (सुमित्र)

उत्तम मित्र (भव) कृपा करके हूजिये ।

भावार्थ—हे सोम ! आपकी कृपा के बिना पुरुषो को धन, विद्या आदि प्राप्त नही हो सकते, न ही अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो सकते हैं, न ही शरीर, मन, इन्द्रिय और आत्मा की पुष्टि हो सकती है । इसलिए हम सबको योग्य है कि हम आप परम पूज्य परमात्मा को ही अपना परम प्यारा सच्चा मित्र बनावें, जिससे हम सबका भला हो ।

: ७३ :

सोम ररन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य्य इव स्व ओक्ये ॥ १।६१।१३॥

पदार्थ—हे (सोम) सुखप्रद ईश्वर ! (न) जैसे (गाव) गौए (यवसेषु) घासादि मे रमती हैं और (मर्य्य इव) जैसे मनुष्य (स्व ओक्ये) अपने गृह मे रमण करता है वैसे (आ) अच्छे प्रकार (न हृदि) हमारे हृदय मे (ररन्धि) रमण करिये ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! जैसे गौ आदि पशु अपने खाने योग्य घासादि पदार्थों मे उत्साहपूर्वक रमण करते हैं मनुष्य अपने घरो मे आनन्द से रहते है । ऐसे ही भगवन् ! आप मेरे हृदय मे रमण करे, अर्थात् मेरे आत्मा मे प्रकाशित हूजिये, जिससे मैं आपको यथार्थ रूप से जानता हुआ अपने जन्म को सफल बनाऊ ।

: ७४ :

अस्माँ अवन्तु तेशतमस्मान्त्सहस्रमूतय ।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥ ४।३१।१०॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (ते) आपकी (शतम् ऊतय) सैकडो रक्षायें (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें और (सहस्रम्) हजारो (ऊतय) रक्षायें (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें (विश्वा) सब (अभिष्टय) वाञ्छित पदार्थ (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! आपकी सैकडो और हजारो रक्षायें हमारी रक्षा करें। भगवन् ! आपके दिए हुए अनेक मनोवाछित पदार्थ, हमारी रक्षा करे। ऐसा न हो कि, हम अनेक पदार्थों को प्राप्त होकर, आपसे विमुख हुए, उन पदार्थों से अनेक उपद्रव करके पाप के भागी बन जाए, किन्तु उन पदार्थों को ससार के उपकार मे लगाते हुए, आपकी कृपा के पात्र बनें।

: ७५ :

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत ।
स हि न प्रमतिर्मही ॥ ६।४५।४॥

पदार्थ—हे (सखाय) मित्रो ! (ब्रह्मवाहसे) वेद और वैदिक ज्ञान को धारण करने वाले तथा उन वेदो को हमारे कानो तक पहुचाने वाले परमात्मा की (अर्चत) स्तुति प्रार्थना रूप पूजा करो (च) और (प्रगायत) उसी प्रभु का गायन करो (हि) क्योकि (स) वह जगदीश हमारा (प्रमति.) सच्चा बन्धु है अथवा वह परमात्मा ही हमारी (मही प्रमति) बडी बुद्धि है।

भावार्थ—हे ज्ञानी मित्रो ! जिस जगत्पति परमात्मा ने, हमारे कल्याण के लिए वेदो को रचा, उस ज्ञान को धारण किया, सृष्टि के आरम्भ मे चार महर्षियो के अन्त करणो मे, उन चार वेदो का प्रकाश किया। वही चारो वेद, गुरु परम्परा से हमारे कानो तक पहुचाये गये, इसलिए हमारा सबका कर्तव्य है, कि हम सब उस प्रभु की पूजा करें, क्योकि वही हमारा सच्चा बन्धु है। परमेश्वर परायण होना यही हमारी बडी बुद्धि है। प्रभु भक्ति के बिना बुद्धिमान् पण्डित भी महामूर्ख है।

: ७६ :

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ १।२२।२०

पदार्थ—(तत् विष्णो) उस सर्वव्यापक परमेश्वर के (परमम् पदम्) श्रेष्ठ स्वरूप को (सूरय) विद्वान् लोग (सदा पश्यन्ति) सदा देखते हैं (दिवि इव) जैसे सब लोग द्युलोक मे (आततम्) सर्वत्र व्याप्त (चक्षु) सूर्य को देखते हैं ।

भावार्थ—उस सर्वव्यापक परमात्मा के सर्वोत्तम स्वरूप को, ज्ञानी महात्मा लोग सदा प्रत्यक्ष रूप से देखते है, जैसे आकाश मे सर्वत्र विस्तार पाये हुए, सूर्य को सब लोग प्रत्यक्ष देखते हैं । वैसे ही महानुभाव महात्मा लोग अपने हृदय मे उस परमात्मा को प्रत्यक्ष देखते हैं ।

: ७७ :

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ १।२२।२१॥

पदार्थ—(विष्णो) व्यापक प्रभु का (यत् परमम् पदम्) जो सर्वोत्तम पद है (तत्) उसको (विप्रास) जो बुद्धिमान्, ज्ञानी (विपन्यव) ससार के व्यवहारी पुरुषो से भिन्न है और (जागृवास) और जागे हुए है (समिन्धते) वे ही अच्छी तरह से प्रकाशित करते अर्थात् साक्षात् जानते है ।

भावार्थ—उस सर्वव्यापक विष्णु भगवान् के सर्वोत्तम स्वरूप को, ऐसे विद्वान् ज्ञानी महात्मा सन्तजन ही जानकर, प्राप्त हो सकते हैं, जो ससारी पुरुषो से भिन्न है और जागरणशील है, अर्थात् अज्ञान, सशय भ्रम आलस्यादि नीद से रहित हैं । सदा उद्यमी, वेदादि सद्विद्याओ के अभ्यासी, ज्ञान ध्यान मे तत्पर, ससार के विषय भोगो से उपरत, काम, क्रोधादि दोषो से रहित, और शान्त हृदय हैं, जिनके सत्सग और सहवास से ज्ञान, ध्यान, प्रभु-भक्ति और शान्ति आदि प्राप्त हो सकें, ऐसे महात्माओ का ही मुमुक्षु जनो को सत्सग और सेवा करनी चाहिए, जिससे पुरुष का लोक और परलोक सुधरे ।

: ७८ :

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १।२२।१९॥

पदार्थ—(विष्णो) सर्वव्यापक जगत्पति परमात्मा के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (यत) जिसमे (व्रतानि) नियमो को (पस्पशे) मनुष्य प्राप्त होता है (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (युज्य) वही योग्य (सखा) मित्र है।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग उस सर्वव्यापक जगत्पिता के, जगन्निर्माणादि आश्चर्य कर्मों को देखो और विचारो, जो उसने अपने प्रिय पुत्रो के लिए अवश्य कर्तव्य रूप से नियम निश्चित किए हैं उनको देखो, क्योंकि इन्द्रियो के स्वामी जीव का एक वही योग्य मित्र है। वह दयामय प्रभु जीवात्मा के हित के लिए अनेक अद्भुत कर्म कर रहा है। उसकी अपार कृपा है।

: ७९ :

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।

अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १।९०।१॥

पदार्थ—(वरुण) सर्वोत्तम (मित्र) सबसे प्रेम करने वाला (विद्वान्) सर्वज्ञ (अर्यमा) न्यायकारी (देवैं सजोषा) विद्वानो के साथ प्रेम करने वाला परमात्मा (न) हमको (ऋजुनीती) सरल नीति से (नयतु) चलावे।

भावार्थ—हे महाराजाधिराज परमात्मन् ! आप हमको सरल शुद्ध नीति प्राप्त कराये। आप सर्वोत्कृष्ट हैं, हमे श्रेष्ठ विद्या और श्रेष्ठ धनादि प्रदान करके उत्तम बनावें। आप सबके मित्र हैं हमे भी सब का शुभचिन्तक बनावें। आप महाविद्वान् हैं, हमे भी विद्वान् बनायें आप न्यायकारी हैं, हमे भी धर्मानुसार न्याय करने वाला बनायें, जिससे हम विद्वानो और दिव्य गुणो के साथ प्रीति

करने वाले होकर आपकी आज्ञा का पालन कर सकें। भगवन्! आप हमारी सदा सहायता करते रहे, जिससे हम सुनीतियुक्त होकर सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सकें

: ८० :

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥
५।२४।४॥

पदार्थ—हे (शोचिष्ठ) ज्योति स्वरूप वा पवित्र स्वरूप पवित्र करने वाले परमात्मन्! (दीदिव) प्रकाशमान (तम् त्वा) उस सर्वत्र प्रसिद्ध आपसे (सुम्नाय) अपने सुख के लिये (सखिभ्य) मित्रो के लिये (नूनम्) अवश्य (ईमहे) याचना करते हैं।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप प्रकाश देने वाले पतितपावन जगदीश! आपसे अपने और अपने मित्रों और बान्धवो के सुख के लिये प्रार्थना करते हैं। हम सब आपके प्यारे पुत्र, आपकी भक्ति मे तत्पर होते हुए इस लोक और परलोक मे सदा सुखी रहें। हम पर ऐसी कृपा करो।

: ८१ :

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदघम्॥ १।९७।६॥

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) परमात्मन्! आपका मुख सब दिशाओं मे है आप सब ओर देख रहे हैं। आप (विश्वत) सर्वत्र (परिभू असि) व्याप्त हैं, (न) हमारे (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) सर्वथा विनष्ट हों।

भावार्थ—हे विश्वतोमुख सर्वद्रष्टा परमात्मन्! आप सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त हैं, अतएव आपका नाम विश्वतोमुख है। आप अपनी सर्वज्ञता से, सब जीवों के हृदय के भावो को और उनके

कर्मों को जानते है, कोई बात आपसे छिपी नही। इसलिये हमारी ऐसी प्रार्थना है कि, हमारे सब पाप और पापो के कारण दुष्ट सकल्पो को नष्ट करें। जिससे हम आपके सच्चे ज्ञानी और भक्त बन सकें।

: ८२ :

पाहि नो अग्ने रक्षस· पाहि धूर्तेरराव्ण·।
पाहि रीषत उत वा जिघासतो बृहद्भानो यविष्ठय।

१।३६।१५

पदार्थ—हे (बृहद्भानो) सब से बडे तेजस्विन् (यविष्ठय) महा बलिन् (अग्ने) ज्ञान स्वरूप प्रभो! (न) हमे (रक्षस) राक्षसो से (पाहि) बचाओ (धूर्त अराव्ण) धूर्त, ठग, कृपण, स्वार्थियो से (पाहि) बचाओ (रीषत) पीडा देने वाले (उत) और अथवा (जिघासत) हनन करने की इच्छा करने वाले से (पाहि) रक्षा करो।

भावार्थ—हे महाबली, तेजस्वी सब के नेता परमात्मन्! राक्षस, धूर्त, कृपण, कजूस, मक्खीचूस, स्वार्थान्ध पुरुषो से हमारी रक्षा कीजिए, और जो दुष्ट, हमे पीडा देने तथा जो दुष्ट शत्रु, हमारे नाश की इच्छा करने वाले है ऐसे पापी लोगो से हमे सदा बचाओ। हम आपकी कृपा से सुरक्षित होकर अपना और जगत् का कुछ भला कर सकें।

: ८३ :

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य।

१०।७।३॥

पदार्थ—(अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को (पितरम् मन्ये) मैं पिता मानता हूँ (अग्निम् आपिम्) अग्नि को बन्धु (अग्निम्

भ्रातरम्) अग्नि को भ्राता और (सदम् इत् सखायम्) सदा का ही मित्र मानता हूँ (बृहत अग्ने) इस बड़े अग्नि के (अनीकम्) बल को (सपर्यम्) मैं पूजन करता हूँ। इस अग्नि के प्रभाव से (दिवि) द्युलोक मे (सूर्यस्य) सूर्य का (यजतम्) बड़ा पवित्र करने वाला (शुक्रम्) तेज चमक रहा है।

भावार्थ—परमात्मा ही हमारा सब का सच्चा पिता माता बन्धु भ्राता सदा का मित्रादि सब कुछ है। ससार के पिता मातादि सम्बन्धी, इस शरीर के रहने तक सम्बन्धी हैं। इस शरीर के नष्ट होने पर इस जीव का न कोई सासारिक पिता है, न कोई माता भ्राता आदि है। सच्चा पिता आदि तो इसका परमात्मा ही है, इसी के ज्योतिरूप बल से द्यु आदि लोको मे सूर्यचन्द्रादि प्रकाश कर रहे हैं। इसलिए ही सत्-शास्त्रो मे, परमात्मा को ज्योतियो का ज्योति वर्णन किया गया है। परमात्मा की ज्योति के बिना सूर्यादि कुछ भी प्रकाश नही कर सकते, इसलिए आओ ! भ्रातृ-गण ! हम सब उस ज्योतियो के ज्योति, जगत्पिता परमात्मा की प्रेम से स्तुति प्रार्थना उपासना करें, जिससे हमारा कल्याण हो।

: ८४ :

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥

१।५९।३।

पदार्थ—(सूर्ये) सूर्य मे (न) जैसे (रश्मय) किरणें (ध्रुवास) स्थिर हैं ऐसे (वैश्वानरे) सब के नेता (अग्नौ) अग्नि मे (वसूनि) सब धन (आ दधिरे) सब ओर से अटल रहते हैं (या पर्वतेषु) जो धन पर्वतो मे (अप्सु) जलो मे (ओषधीषु) ओषधियो मे (या मानुषेषु) और जो मनुष्यो मे है (तस्य राजा असि) उस सब के आप राजा हैं।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! जो धन महातेजस्वी अग्नि मे, पर्वतो में, ओषधीवर्ग में, समुद्रादि जलो मे और मनुष्यो के खजाने आदिक में स्थित है, उस सब धन के आप ही स्वामी हैं। जैसे सूर्य मे किरणें अटल होकर रहती हैं ऐसे ससार से सब धन, आप मे स्थिर होकर रहते हैं। भगवन् ! आप कगाल को एक क्षण मे धनी और धनी को कगाल बना सकते हैं।

: ८५ :

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वय तव।
१।९४।१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (देवानाम् देव) आप विद्वानो के भी परम विद्वान् हो (अद्भुत मित्र असि) और उन विद्वानो के आश्चर्य रूप आनन्द देने वाले मित्र हो। (वसूनाम् वसु असि) वसुओ के वसु हो (अध्वरे) यज्ञ में (चारु) अत्यन्त शोभायमान हो (तव) आपकी (सप्रथस्तमे) अति विस्तीर्ण (शर्मन्) सुखदायक (सख्ये) मित्रता मे (वयम्) हम (स्याम) स्थिर रहें और (मा रिषामा) पीडित न होवें।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी प्रभो ! आप विद्वान् पुरुषो के महाविद्वान् और आश्चर्यकारक सुखदायक सच्चे मित्र हो। लाखो प्राणियो के आधाररूप जो पृथिवी आदि वसु हैं, उन वसुओ के अधिष्ठानरूप आप वसु हो। भगवन् ! आप ज्ञान यज्ञादि उत्तम कर्मों मे शोभायमान, धार्मिक और ज्ञानी पुरुषो को शोभा देने वाले हो। आपकी मित्रता सदा आनन्ददायक है। आपकी मित्रता में स्थिर रहते हुए, हम कभी दु खी नही हो सकते। कृपानिधे ! हम यही चाहते हैं कि, हम आपको ही सच्चा सुखदायक मित्र जानकर आपकी प्रेम भक्ति मे लगे रहे।

: ८६ :

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ १।१३।९॥

पदार्थ—(इडा) वाणी (सरस्वती) विद्या (मही) मातृभूमि (मयोभुव) कल्याण करने वाली और (अस्रिध) कभी हानि न पहुचाने वाली (तिस्र. देवी) तीन देवियें (बर्हि) हमारे अन्त करण मे (सीदन्तु) विराजमान हो ।

भावार्थ—प्रभु से प्रार्थना है कि, दयामय परमात्मन् ! हमारे देशवासियो मे इन तीन देवियो की भक्ति हो । १ इडा अपनी मातृभाषा भाषियो के साथ मातृभाषा मे बातचीत करना । २ लोक, परलोक, जड, चेतन, पुण्य, पाप, हित, अहित, कर्तव्य, अकर्तव्य को बताने वाली सच्ची विद्या सरस्वती । ३. मही अपनी जन्मभूमि के वासी अपने बान्धवो से प्रेम । यह तीन देविया मनुष्य को सदा सुख देने वाली है, कभी हानि करने वाली नही हैं । हर एक मनुष्य के अन्त करण मे, इन तीनो देवियो के प्रति भक्ति होनी चाहिए । जिस देश के वासियो की इन तीन देवियो में प्रीति होगी, वह देश उन्नत होगा । जिस देश मे इन तीन देवियों मे भक्ति नहीं है, जिनका अपनी भाषा और विद्या से प्रेम नही, अपनी मातृभूमि और मातृभूमि मे बसने वालो से प्रेम नही, वह देश अवनति के गढे मैं पडा रहेगा ।

. ८७ :

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ।
५।४२।८॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) सूर्य चन्द्रादि सब लोक लोकान्तरो के स्वामिन् ! (ये तव ऊतिभि) जो आपकी रक्षाओ के साथ

(सचमाना) सम्बन्ध रखने वाले है वे (अरिष्टा) दुखो से रहित (मघवान) धनवान् और (सुवीरा) अच्छे पुत्रादि सन्तान वाले होते हैं (ये अश्वदा) जो घोड़ो का दान करने वाले हैं (उत वा) और (सन्ति गोदा) गौओ के दाता और (ये वस्त्रदा) जो वस्त्रो का दान करते हैं वे (सुभगा) सौभाग्य वाले है (तेषु राय) उनके ही घरो में अनेक प्रकार के धन और सब ऐश्वर्य रहते हैं।

भावार्थ—हे सर्व ब्रह्माण्डो के स्वामिन्! परमात्मन्! जो धर्मात्मा आपके सच्चे प्रेमी भक्त है, उनकी आप सब प्रकार से रक्षा करते हैं। वे सब प्रकार के दुख और कष्टो से रहित हो जाते है, धनवान् और सुपुत्रादि सन्तान वाले होते है, और धनवान् होकर भी, सब पापो से रहित होते है। उस धन को उत्तम महात्माओ का अन्नवस्त्रादिको से सत्कार करने मे खर्च करते हैं, और धार्मिक सस्थाओ मे, वेदवेत्ता महानुभावो के वास करने के लिए, अनेक सुन्दर स्थान बनवा देते है, जिनमे रहकर महात्मा लोग प्रभु की भक्ति करते और वेदविद्या का प्रचार कर सबको प्रभु का भक्त और वेदानुकूल आचरण करने वाला बनाते है। ऐसे धार्मिक पुरुष ही सौभाग्यवान् हैं, ऐसे आचार-व्यवहार करने वाले उत्तम पुरुष के पास ही, बहुत धन धान्य होना चाहिए।

: ८८ :

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम्।
न मिनन्ति स्वराज्यम्॥ ५।८२।२॥

पदार्थ—(अस्य सवितु) इस जगत् उत्पादक परमेश्वर के (स्वयशस्तरम्) अपने यश से फैले हुए (प्रियम्) प्रेम करने योग्य (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (कच्चन) कोई भी (न मिनन्ति) नाश नही कर सकता।

भावार्थ—सृष्टि रचना कर्ता परमेश्वर का स्वराज्य सारे ससार

में फैला हुआ है और वह स्वराज्य प्रभु के बल और यश से फैला है। उसके नियम अटल हैं, और सबके प्रीति करने योग्य हैं। उस जगत् कर्ता के सृष्टि नियमो को और स्वराज्य को कोई नाश नही कर सकता। वास्तव मे अविनाशी परमात्मा का स्वराज्य भी अविनश्वर है। मनुष्य तो मर्त्य अर्थात् मरण धर्मा हैं इस मनुष्य का राज्य भी नाशवान् है, कदापि अविनाशी नही हो सकता।

: ८९ :

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ १।९०।६॥

पदार्थ—(ऋतायते) सत्याचरण वाले पुरुष के लिए (वाता) वायुगण (मधुक्षरन्ति) मधु वर्षण करती हैं (सिन्धव) सब नदिया (मधु क्षरन्ति) मधु बरसाती हैं, (न) हम उपासको के लिए (ओषधी) गेहू, चावल, चना आदि सब अन्न (माध्वी सन्तु) मधु-रता युक्त होवें।

भावार्थ—हे परमात्मन्! जैसे सदाचारी पुरुष के लिए सब प्रकार के वायु और सब नदिया सुखदायिनी होती हैं, ऐसे ही आपके उपासक जो हम लोग हैं, उनके लिए भी सब प्रकार के वायु सब अन्न सुखप्रद हो, जिससे हम सब लोग, आपकी भक्ति और आपकी आज्ञारूप वैदिक धर्म का सर्वत्र प्रचार कर सकें।

: ९० :

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ १।९०।७॥

पदार्थ—(नक्तम् मधु) हमारे लिए रात्रि मधु हो (उत) और (उषस) प्रात काल मधु हो (पार्थिवम् रज) पृथिवी के ग्राम नगरादि (मधुमत्) माधुर्य युक्त हो (न) हमारे लिये (पिता) बरसात करने से हमारा सब का पालन करने वाला

(द्यौ) द्युलोक (मधु अस्तु) मधुवत् सुखप्रद हो।

भावार्थ—हे जगत्पिता परमात्मन् ! हमारे लिए, सब रात्रि और प्रात काल मधुवत् सुखदायक हो। सब नगर ग्राम गृहादि भी सुखजनक हो। यह ऊपर का द्युलोक, जो बरसात द्वारा हम सब का पालक होने से पिता रूप है वह भी सुख देने वाला हो।

: ६१ :

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पति सर्वगण स्वस्तेय स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु न.॥ ५।५१।१२॥

पदार्थ—(वायुम्) अनन्त बलवान् परमेश्वर का (स्वस्तये) कल्याण के लिए (उपब्रवामहे) हम विशेष रूप से कथन करे (सोमम्) सकल-जगत् के उत्पादक और सत्कर्मों मे प्रेरक प्रभु का (स्वस्ति) आनन्द के लिए कथन कर (य) जो (भुवनस्य पति) जगत् का पालक है (बृहस्पतिम्) बडे २ सूर्यादि लोको का वा वेदवाणी का रक्षक (सर्वगणम्) सब की गणना करने वाले जगदीश्वर का (स्वस्तये) कल्याण की प्राप्ति के लिये कथन करे (आदित्यास) अविनाशी परमेश्वर के भक्त (न स्वस्तये) हमारे आनन्द के लिए (भवन्तु) सदा वर्तमान रहे।

भावार्थ—हे अनन्त बलवान् परमैश्वर्ययुक्त, सत्कर्मों मे प्रेरक ब्रह्माण्डो के और वेद वाणी के रक्षक, सब की गिनती करने वाले सर्वशक्तिमान् जगत्पिता परमात्मान्! आपकी हम जिज्ञासु लोग, बारबार स्तुति और प्रार्थना करते हैं, कृपा करके हमारा इस लोक और परलोक मे सदा कल्याण करें। भगवन्! आपके भक्त जो वेदविद्या के ज्ञाता और सब का कल्याण चाहने वाले शान्तात्मा महात्मा है, वे भी हमे ब्रह्मविद्या का उपदेश दे कर, हमारा कल्याण करने वाले हो।

: ९२ :

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ५।५१।१५

पदार्थ—(स्वस्ति पन्थाम्) कल्याणप्रद मार्ग पर (अनुचरेम) हम चलते रहे (सूर्याचन्द्रमसौ इव) जैसे सूर्य और चन्द्रमा चल रहे हैं (पुन) बारम्बार (ददता) दान कर्ता (अघ्नता) किसी की हिंसा न करने वाले तथा (जानता) सब को सब प्रकार जानने वाले परमात्मा के (सगमेमहि) सग को हम प्राप्त हो, अर्थात् प्रभु के सच्चे ज्ञानी भक्त बनें ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! हम पर कृपा करके प्रेरणा करो कि हम लोग कल्याणप्रद मार्ग पर चलें । जैसे सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश और सब का पालन पोषण करते हुए, जगत् का उपकार कर रहे है, ऐसे हम भी अज्ञानान्धकार का नाश करते हुए, जगत् के उपकार करने मे लग जाये । भगवन् ! आप महादानी सब के रक्षक महाज्ञानी हो, ऐसे आपसे हमारा पूर्ण प्रेम हो । और आपके प्यारे जो महापुरुष, सन्तजन है जो परम उदार, किसी प्राणी की भी हिंसा न करने वाले, वेद शास्त्र उपनिषदो के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मज्ञानी और आपके सच्चे प्रेमी हैं उन महानुभाव महात्माओ का हमे सत्सग दो, जिससे हम, आपके ज्ञानी और सच्चे प्रेमी भक्त बन कर, अपने जन्म को सफल करें ।

: ९३ :

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।
१।८९।५॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (तम्) उस (ईशानम्) ईश्वर की जो (जगत तस्थुष पतिम्) जगम

और स्थावर का स्वामी (धियम् जिन्वम्) बुद्धि का प्रेरक है उसकी (हूमहे) प्रार्थना करते हैं वह (पूषा) पोषक ईश्वर (न) हमारे (वेदसाम् वृधे) धनो की वृद्धि के लिये (असत्) होवे तथा (अदब्ध) किसी से न दबने वाला (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (रक्षिता) रक्षक और (पायु) पालक (असत्) होवे।

भावार्थ—सब चर और अचर के स्वामी परमेश्वर की, हम प्रार्थना उपासना करते हैं, कि वह हमारी बुद्धियो को शुभमार्ग मे लगावे, और हमारे तन, धन की रक्षा करे, हमारे कल्याण का रक्षक तथा पालक हो, क्योकि उस प्रभु की कृपा दृष्टि के बिना न हमारा तन और धन सुरक्षित हो सकता है, और न ही हमे कल्याण प्राप्त हो सकता है। इस लिये इस लोक और परलोक मे कल्याण प्राप्ति के लिये, उस जगत् पति परमात्मा की हम लोग प्रार्थना उपासना करते है।

: ६४ .

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्नि. स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभव स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वहस'।

५।५१।१३॥

पदार्थ—(अद्य) आज (विश्वे देवा) सब दिव्य शक्ति वाले पदार्थ (न) हमारे (स्वस्तये) सुख के लिए हो (वैश्वानर) सब मनुष्यो का हितकारी (वसु) सब का अधिष्ठान (अग्नि) सर्व-व्यापक ज्ञानस्वरूप परमात्मा (न स्वस्तये) हमारे सुख से लिये हो (देवा) विजयी (ऋभव) बुद्धिमान् लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (अवन्तु) रक्षा करें (रुद्र) पापिया को दण्ड देकर रुलाने वाला ईश्वर (न स्वस्तये) हमारे सुख के लिये (अहस पातु) पाप कर्म से बचा कर हमारी रक्षा करे।

भावार्थ—हे सब मनुष्यो के हितकर्ता ज्ञानस्वरूप सर्वव्यापक

प्रभो ! जितने दिव्यशक्ति वाले पदार्थ हैं, वे सब आपकी कृपा से हमे अब सुखदायक हो । सब ज्ञानी लोग हमारे कल्याणकारक हो। जिन ज्ञानी और आपके भक्त महात्माओ के सत्सङ्ग से, हमारा जन्म सफल हो सके, और जिनकी प्राप्ति, आपकी कृपादृष्टि के बिना नही हो सकती, ऐसे महानुभाव हमारा कल्याण करें भगवन् ! पापी लोगो को उनके सुधार के लिये उनके पापो का फल आप दण्ड देते हैं। हम पर कृपा करके उन पापो से हमे बचावें और हमारा कल्याण करें ।

: ९५ :

श्रद्धा देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धा हृदय्ययाकूत्या विन्दते वसु ॥ १०।१५१।४॥

पदार्थ—(यजमाना देवा) यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने वाले विद्वान् जिनका (वायुगोपा) अनन्त बल वाला परमात्मा रक्षक है, (श्रद्धाम्) वेदोक्त धर्म मे और वेदो के ज्ञाता महात्माओ के वचनो मे विश्वास का (उपासते) सेवन करते है । (हृदय्य आकूत्य) मनुष्य अपने हृदय के शुद्ध सकल्प से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को और (श्रद्धया) श्रद्धा से (वसु विन्दते) धन को प्राप्त होता है ।

भावार्थ—श्रेष्ठ कर्म करने वाले जिनकी सदा प्रभु रक्षा करता है, ऐसे विद्वान् पुरुष वेदों मे और वेदोक्त धर्म मे तथा वेदज्ञ महात्माओ के वचनो मे दृढ विश्वास करते है । पुरुष अपने पवित्र हृदय के भाव से श्रद्धा को और श्रद्धा से धन को प्राप्त होता है । श्रद्धा के बिना कोई भी श्रेष्ठ कर्म नही हो सकता । जिनकी वेदो मे और अपने माननीय आचार्यो मे श्रद्धा नही, ऐसे नास्तिक कोई अच्छा धर्म कर्म नहीं कर सकते । श्रेष्ठ धर्म कर्म और ब्रह्मज्ञान के बिना यह दुर्लभ मनुष्य देह व्यर्थ हो जाता है । इसलिये ऐसे नास्तिक भाव को अपने मन मे कभी नही आने देना चाहिये ।

: ९६ :

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥७।५९।१२॥

पदार्थ—(त्र्यम्बकम्) तीनो काल मे एकरस ज्ञानयुक्त, अथवा तीनो लोको का जनक अथवा जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय इन तीनो के कर्त्ता परमात्मा (सुगन्धिम्) बडे यशवाले (पुष्टिवर्धनम्) शरीर आत्मा और समाज के बल को बढाने वाले जगदीश की (यजामहे) स्तुति करते है । हे प्रभो ! (उर्वारुकम् इव) जैसे पका हुआ खरबूजा (बन्धनात्) लता बन्धन से छूट जाता है वैसे ही (मृत्यो) मृत्यु से (मुक्षीय) हम छूट जावे । (अमृतात् मा) मोक्षरूप सुख से न छूटे ।

भावार्थ—हे जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्ता परमात्मन् ! आपका यश सब जगत् मे व्याप रहा है, आप ही अपने भक्तो के शरीर आत्मा और समाज के बल को बढाने वाले हैं । भगवन् ! जैसे पका हुआ खरबूजा अपने लता बन्धन से छूट जाता है, ऐसे ही मैं भी मृत्यु के बन्धन दु ख से छूट जाऊं, किन्तु मुक्ति से कभी अलग न होऊ । आपकी कृपा से मुक्ति सुख को अनुभव करता हुआ सदा आनन्द मे मग्न रहूँ ।

: ९७ :

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ १।२५।२०॥

पदार्थ—हे (मेधिर) मेधाविन वरुण ! (त्वम् विश्वस्य) आप सब जगत् के (राजसि) प्रकाशक और राजा स्वामी हैं (दिव च) द्युलोक के (ग्म च) और भूलोक के भी स्वामी हैं (स) वह आप (यामनि) बुलाने पर (प्रतिश्रुधि) हमारी प्रार्थना को सुने ।

भावार्थ—हे बुद्धिमान् सर्वोत्तम प्रभो ! आप सारे जगत् के

द्यु लोक के प्रकाश करने वाले और सारी पृथिवी के स्वामी हैं। दयामय जब हम आपकी प्रेमपूर्वक प्रार्थना करें, तब आप सुनकर हमें प्रेमी भक्त बनावें, जिससे हमारा कल्याण हो।

: ९८ :

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।
इषं स्वश्च धीमहि॥ ७।६६।९॥

पदार्थ—हे (वरुण देव) अति श्रेष्ठ स्वीकरणीय देव! (ते स्याम) हम आपके ही होवें (मित्र) हे सबसे प्रेम करने वाले मित्र! (सूरिभि सह) विद्वानो के साथ आपके उपासक होवें (इषम्) अभिलषित धन धान्य (स्व च) प्रकाश और नित्य सुख को (धीमहि) प्राप्त होवें।

भावार्थ—हे परमात्म देव! हम पर कृपा करें कि हम आपके ही प्रेमी भक्त स्तुतिगायक और मानने वाले होवें। केवल हम ही नहीं किन्तु, विद्वानो और बान्धव मित्रो के साथ, हम आपके प्रेमी भक्त होवें। भगवन्! आपकी कृपा से हम, धन धान्य और ज्ञान को प्राप्त होकर नित्य सुख को भी प्राप्त करें।

: ९९ :

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा॥
७।३५।१३॥

पदार्थ—(अज) अजन्मा (एकपात्) एक पगवाला अर्थात् एकरस व्यापक (देव) प्रकाशस्वरूप सुखप्रद (न शम्) हमे शान्ति दायक (अस्तु) हो (अहि) जिसकी कोई हिंसा न कर सके, निर्विकार (बुध्न्य) आदि कारण (शम् समुद्र) सबका सीचने वाला परमेश्वर हमे शान्तिदायक हो (अपाम्) प्रजाओ का (नपात्) न गिराने वाला, (पेरु) पार लगाने वाला जगत्पति (न शम्) हमे

शान्तिदायक (अस्तु) हो (पृश्नि) सबका स्पर्श करने वाला (देव-गोपा) विद्वान् महात्माओं का रक्षक (न शम् भवतु) हमें शान्ति-दायक हो।

भावार्थ—कभी भी जन्म न लेने वाला सदा एकरस व्यापक देव प्रभु हमें शान्ति प्रदान करे। जिस भगवान् की कभी कोई हिंसा नहीं कर सकता, ऐसा वह निर्विकार, सब का आदि मूल कारण और सबको हरा भरा रखने वाला हमें सुखदायक हो। सब प्रजाओं का रक्षक सब का उद्धार करने वाला सर्वव्यापक विद्वान् महात्माओं का सदा रक्षक, हमें शान्ति प्रदान करे।

: १०० :

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा।
शं नः इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥ १।९०।९॥

पदार्थ—(मित्र) सबसे स्नेह करने वाला परमात्मा (न) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक हो (वरुण) सर्व उत्तम प्रभु (शम्) शान्तिदायक हो (अर्यमा) यम, न्यायकारी जगत्पति (न) हमारे लिये (शम्) सुखदायक हो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला महा-बली जगदीश (न शम्) हमारे लिये कल्याणदाता हो (बृहस्पति) बड़े-बड़े सूर्य चन्द्रादिकों का और वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर, हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रम) महाबली (विष्णु) सर्व-व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा (न. शम्) हमें बल देकर सदा सुखी बनावें।

भावार्थ—मित्र, वरुण, अर्य्यमा, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु आदि परमात्मा के अनन्त नाम हैं, ये सब सार्थक हैं निरर्थक एक भी नहीं। अनन्त शक्ति, अनन्त गुण और अनन्त ही ज्ञान वाले जगत्पिता में सर्व जगत् का उत्पन्न करना, अपने सब भक्तों को ज्ञान और शान्ति देकर, उनका लोक परलोक सुधारना इत्यादि सब घट सकते हैं।

●

यजुर्वेद शतक

यजुर्वेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

"वेद प्रभु की पवित्र वाणी है, जो आदिसृष्टि मे जीवों के कल्याणार्थ, ससार के अन्य भोग्य पदार्थों की भाति कर्मों की यथार्थ व्यवस्था के ज्ञानार्थ, तद्नुसार आचरण करने के लिए परम पवित्र ऋषियो द्वारा प्रदान की गई है। भावी कल्प-कल्पान्तरो मे भी यह वाणी इसी प्रकार सदा प्रादुर्भूत होगी। यह किसी व्यक्ति या व्यक्ति-विशेषो की कृति नही, अपितु सम्पूर्ण विश्व के रचयिता परम पिता परमात्मा की ही रचना है। इसमे किसी प्रकार न्यूनाधिकता नहीं हो सकती।'

:—ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

: १ :

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवः स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण, आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भाग प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वः स्तेन ईशत माऽघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वह्वीर्यजमा-नस्य पशून्पाहि ।   यजु० अ०१। म० १।।

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिये (त्वा) आपको (ऊर्जे) बलादिको की प्राप्ति के लिये आश्रयण करते हैं। हे जीवो ! (त्वा वायव) तुम वायुरूप (स्थ) हो। (सविता देव) जगत् उत्पादक देव (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) उत्तम कर्म के लिये (व) तुम सब को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे, उस उत्तम कर्म द्वारा (इन्द्राय भागम्) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त ऐसे उत्तम पुरुष के भाग को (आप्यायध्वम्) बढाओ, यज्ञादि कर्मों के सम्पादन के लिये (अघ्न्या) न मारने योग्य (प्रजापति) बछडो वाली (अन-मीवा) साधारण रोगो से रहित, (अयक्ष्मा) तपेदिक आदि बडे रोगो से रहित गौएँ सम्पादन करो (व) आप लोगो के बीच जो (स्तेन) चोर हो, वह उन गौओ का (मा ईशत) स्वामी न बने, और (अघशस) पाप चिन्तक भी (मा) उनका स्वामी न बने। ऐसा प्रयत्न करो जिससे (वह्वीध्रुवा) बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएँ (अस्मिन् गोपतौ) इस दोष रहित गौ रक्षक के पास (स्यात्) बनी रहे। प्रभु से प्रार्थना है कि (यजमानस्य) यज्ञादि उत्तम कर्म करने वाले के (पशून् पाहि) पशुओ की हे ईश्वर ! रक्षा कर।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अन्न और बलादिको की प्राप्ति के लिये आपकी प्राथना उपासना करते हुये आपका ही हम आश्रय लेते है। परम दयालु प्रभु, जीव को कहते हैं, कि, हे जीव ! तुम

वायुरूप हो। प्राणरूपी वायु से ही तुम्हारा जीवन बन रहा है। तुमको मैं जगत्कर्ता देव, शुभ कर्मों के करने के लिये प्रेरणा करता हूँ, यज्ञादि उत्तम कर्मकर्ताओ के लिये श्रेष्ठ गौओ का सग्रह करना आवश्यक है। प्रभु से प्रार्थना है कि, हे ईश्वर! यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वाले यजमान के गौ आदि पशुओ की रक्षा करें।

: २ :

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतय:, पावको अस्मभ्यꣳशिवो भव॥
३६।२०॥

पदार्थ—(हरसे) पापो को हरने वाले (शोचिषे) पवित्र करने वाले और (अर्चिषे) अर्चा, पूजा सत्कार करने योग्य आप परमात्मा को (नम ते नम ते) बारम्बार हमारी नमस्कार (अस्तु) हो। (ते हेतय) आप के वज्र (अस्मत् अन्यान्) हमारे से भिन्न हमारे शत्रुओ (दूसरो) को (तपन्तु) तपाते रहे। (पावक) पावन करने वाले आप जगदीश्वर (असमभ्यम्) हम सबके लिये (शिव भव) कल्याणकारी होवें।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! आप अपने भक्तो के पापो और कष्टो को दूर करने वाले, अर्थात् पापो से बचाते हुये उनके अन्त करण को पवित्र और तेजस्वी बनाने वाले हैं, आप भक्तवत्सल भगवान् को हमारा प्रणाम हो। हे दयामय जगदीश! ऐसा समय कभी न आवे कि हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलकर आपके दण्ड के भागी बनें। किन्तु हम सदा आपकी आज्ञा के अनुकूल चलकर, आपकी कृपा के पात्र बनते हुए, सुख और कल्याण के भागी बनें।

: ३ :

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नेव।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥ ३६।२१॥

पदार्थ—(विद्युते) विशेष प्रकाश तेज स्वरूप (ते) आपके लिये (नम अस्तु) नमस्कार हो। (स्तनयित्नवे) शब्द करने वाले (ते नम) आपको नमस्कार हो। हे (भगवन्) ऐश्वर्य-सम्पन्न जगन्नियन्त! (ते नम अस्तु) आपको प्रणाम हो, (यत) जिससे (स्व) सबको आनन्द करने के लिये (समीहसे) आप सम्यक् चेष्टा करते है।

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्ययुक्त समर्थ प्रभो! आप विशेष प्रकाशस्वरूप और किसी से भी न दबने वाले महातेजस्वी हो, आपको हमारा नमस्कार हो। आप शब्द करने वाले अर्थात् वेदवाणी के दाता हो, आप सदा आनन्द मे रहते हो अपने प्रेमी भक्तो को सदा आनन्द मे रखते हो। आपकी जो-जो चेष्टाए है, वे सबको आनन्द देने के लिये ही हैं, अतएव हम आपको बारम्बार नमस्कार करते है।

: ४ :

यतो यतः समीहसे ततो नो अभय कुरु।
शं न· कुरु प्रजाभ्योऽभय नः पशुभ्य ॥ ३६।२२॥

पदार्थ—(यत यत) जिस-जिस स्थान से वा कारण से (सम् ईहसे) आप सम्यक् चेष्टा करते हो (तत) उस-उससे (अभयम्) अभय दान (कुरु) करो। (न प्रजाभ्य) हमारी प्रजाओ के लिये (शम् कुरु) शान्ति स्थापन करो। (न पशुभ्य) हमारे पशुओ के लिए (अभयम् कुरु) अभय प्रदान करो।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! जिस-जिस स्थान से वा कारण से आप कुछ चेष्टा करो, उस-उससे हमे निर्भय करो। हमारी सब प्रजाओ को और हमे शान्ति प्रदान करो। ससार भर की सब प्रजाए आपस मे प्रीतिपूर्वक बर्ताव करती हुई सुख-पूर्वक रहे और अपने जन्म को सफल करे। आपका उपदेश है कि

आपस मे लड़ना-झगड़ना कोई बुद्धिमत्ता नहीं, एक दूसरे से प्रेम-पूर्वक रहना, मिलना-जुलना यही सुखदायक है। अतएव आप प्रभु से प्रार्थना है कि, हे दयामय ! हम सबको शान्ति प्रदान करो और हमारे गौ अश्वादि उपकारक पशुओ को भी अभय प्रदान करो।

: ५ :

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातार तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
११।८३॥

पदार्थ—हे (अन्नपते) अन्न के स्वामिन् ! (नः) हमे (अन्नस्य) अन्न को (प्रदेहि) प्रकर्ष से दो, (अनमीवस्य) जो अन्न रोग करने वाला न हो (शुष्मिण) बलकारक हो। (प्रदातारम्) अन्नदाता को (प्रतारिष) तृप्त कर (न द्विपदे) हमारे दो पग वाले [मनुष्य] तथा (चतुष्पदे) चार पग वाले गौ अश्वादि पशुओ के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कराओ।

भावार्थ—हे अन्नादि उत्तम पदार्थों के स्वामिन् ! आप कृपा करके रोगनानाशक और बल-वर्धक अन्न हम को दो और अन्नदाता पुरुष का उद्धार करो। हमारे दो पग वाले गौ अश्वादि पशु, जो सदा हम पर उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही परोपकार के लिए है, इन मे भी पराक्रम धारण कराओ।

: ६ :

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ **३।१७॥**

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (तनूपा असि) हमारे शरीरो की रक्षा करने हारे हैं, (मे तन्वम्) मेरे

शरीर की (पाहि) रक्षा करो। हे (अग्ने) परमेश्वर! (आयुर्दा असि) आप आयु-जीवन के दाता हो, (मे आयु, देहि) मुझे जीवन प्रदान करो। हे (अग्ने) पूज्य प्रभो! (वर्चोदा असि) आप तेजदाता हैं (मे) मुझे (वर्चं देहि) तेज प्रदान करें। हे (अग्ने) परमेश्वर (यत् मे तन्वा) जो मेरे शरीर मे (ऊनम्) न्यूनता हो (मे) मेरी, (तत्) उस न्यूनता को (आपृण) पूर्ण कर दो।

भावार्थ—हे सर्वरक्षक जगदीश! आप सब के शरीरो की रक्षा करने वाले और आयु प्रदान करने वाले हैं अत आपके पुत्र जो हम हैं, इन की रक्षा करते हुए लम्बी आयु वाला बनाओ। हम पाप और दुराचारो मे फस कर कभी नष्ट भ्रष्ट न हो। दयामय भगवान्! अविद्या आदि दोषो को दूर करने वाला वर्चस जो ब्रह्मतेज है, उसके दाता भी आप ही हो, हमे भी वह तेज प्रदान करो, जिस से हम अपना और अपने स्नेहियो का कल्याण कर सकें। भगवन्! आप सर्वगुण सम्पन्न हो, हमारी न्यूनता दूर कर के हमे अनेक शुभगुण सम्पन्न करो, ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करें।

: ७ :

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्ण बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। श नो भवतु भुवनस्य यस्पति ३६।२॥

पदार्थ—(मे) मेरे (चक्षुष) नेत्र (हृदयस्य) हृदय (मनस) और मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र वा त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियो का छिद्र (अति तृण्णम्) अति पीडित वा व्याकुलता है (तत्) उस (मे) मेरे दोष को (बृहस्पति) सब बडे-बडे लोक लोकान्तरों का स्वामी परमेश्वर (दधातु) ठीक करे। (य) जो (भुवनस्य) सारे जगत् का (पति) स्वामी है वह (न) हम सब का (शम्) कल्याणकारक (भवतु) होवे।

भावार्थ—हे सब बडे-बडे ब्रह्माण्डो के कर्ता, हर्ता और नियन्ता परमात्मन् ! जो मेरे नेत्र, हृदय, मन, वाणी, श्रोत्रादिको का छिद्र, अर्थात् तुच्छता, निर्बलता और मन्दत्वादि दोष हैं, इन को निवारण करके, मेरे सब बाह्य इन्द्रिय और अन्त करण को सत्य धर्मादिको मे स्थापन करें जिससे हम सब आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए, सदा कल्याण के भागी बनें । हे सारे भुवनो के स्वामिन् ! हम आपके पुत्र हैं, अपने पुत्रो पर कृपा करते हुए हम सबका कल्याण करे ।

: ८ :

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।
सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २।२६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (स्वयभू असि) अजन्मा अनादि हैं । (श्रेष्ठ) अत्यन्त प्रशसनीय, (रश्मि) प्रकाशमान (वर्चोदा) विद्या वा प्रकाश देने वाले (असि) हैं, (वर्चो मे देहि) मुझे विद्या वा प्रकाश दो । (सूर्यस्य) चराचर जगत् के आत्मा जो आप भगवान् वा इस भौतिक सूर्य के (आवृतम्) आचरण को मैं (अनु आवर्त्ते) स्वीकार करता हू ।

भावार्थ—हे अजन्मा सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप विज्ञानप्रद परमात्मन् ! आप बड २ ऋषि महर्षियो को भी वैदिक ज्ञान और आत्मज्ञान के देने वाले हैं, कृपया हमे भी ब्रह्मज्ञानरूप वर्चस देकर श्रेष्ठ बनावें । चराचर जगत् के आत्मा सूर्य जो आप, उस आपकी आज्ञा का पालन करते हुए हम, सबको उपदेश देकर आप का सच्चा ज्ञानी और प्रेमी-भक्त बनावें । यह भौतिक सूर्य जैसे अन्धकार का नाशक और सबका उपकार कर रहा है, ऐसे हम भी अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करते हुए सब के उपकार करने मे प्रवृत्त होवे ।

: ९ :

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तꣳसंप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ १७।२७॥

पदार्थ—(य) जो परमेश्वर (न पिता) हम सब का पालन करने वाला (जनिता) जनक (य विधाता) जो सब सुख और मुक्ति सुख का भी सिद्ध करने वाला है, (विश्वा भुवनानि) सब लोक लोकान्तरो तथा (धामानि) स्थिति के स्थानो को (वेद) जानता है। (य देवानाम्) जो भगवान् दिव्य शक्ति वाले सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवो के (नामधा) नामो को धारण कर रहा है वह (एक एव) एक ही अद्वितीय परमात्मा है। (तम् सप्रश्नम्) उसी जानने योग्य परमेश्वर को आश्रय करके (अन्या भुवना यन्ति) अन्य सब लोक लोकान्तर गति कर रहे हैं।

भावार्थ—जो परमेश्वर, हम सब का रक्षक, जनक और हमारे सब कर्मों का फल प्रदाता है, वही भगवान्, सब लोक लोकान्तरो का ज्ञाता और अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, वरुण, मित्र, वसु, यम, विष्णु, बृहस्पति, प्रजापति आदि दिव्य [illegible] के नामो को धारण करने वाला एक ही अद्वितीय अनुपम परमात्मा है, उसी परमात्मा के आश्रित होकर, अन्य सब लोक गतिशील हो रहे हैं। दुर्लभ मानवदेह को प्राप्त हो कर, इसी परमात्मा की जिज्ञासा करनी चाहिए। इसी के ज्ञान से मनुष्य देह सफल होगी अन्यथा नही।

: १० :

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते सदृशि ।
जीव्यासं ज्योक्ते सदृशि जीव्यासम् ॥३६।१९॥

पदार्थ—हे (दृते) अविद्या रूपी अन्धकार के विनाशक परमात्मन्! (मा) मुझको (दृ ह) दृढ कीजिए, जिससे मैं (ते)

आपके (सदृशि) यथार्थ ज्ञान मे (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवन धारण करू, (ते) आपके (सदृशि) साक्षात्कार मे प्रवृत्त हुआ बहुत समय तक मैं जीता रहूँ।

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि, ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न होकर युक्त आहार विहार पूर्वक औषध आदि का यथार्थ ज्ञान अवश्य सम्पादन करे, क्योंकि परमात्म-ज्ञान के बिना बहुत काल तक जीना भी व्यर्थ ही है। अतएव इस मन्त्र मे प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आप कृपा करें कि मैं दीर्घकाल तक जीता हुआ आप के ज्ञान और सच्ची भक्ति को प्राप्त होकर, अपने मनुष्य जन्म को सफल करू।

: ११ :

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत॥

३२।२॥

पदार्थ—(विद्युत) विशेष प्रकाशमान (पुरुषात्) सर्वत्र पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषा) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि क्रियाए (अधिजज्ञिरे) उत्पन्न होती है। कोई भी (एनम्) इस को (न ऊर्ध्वम्) न ऊपर से (न तिर्य्यञ्चम्) न तिरछे (न मध्ये) न बीच मे से (परिजग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है।

भावार्थ—जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान प्रकाशमान पूर्ण परमात्मा से, क्षण, घटिका दिन, रात्रि आदि काल के सब अवयव उत्पन्न हुए है, और जिससे सारे जगतो की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, नियमनादि होते हैं, उस जगत्पिता परमात्मा को, कोई भी नीचे, ऊपर, बीच मे से वा तिरछे ग्रहण नही कर सकता। ऐसे पूर्ण जगदीश परमात्मा को योगाभ्यास, ध्यान, उपासनादि साधनो से ही, जिज्ञासु पुरुष जान सकता है, अन्यथा नही।

: १२ :

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥३२।१॥

पदार्थ—(तत्) वह ब्रह्म (एव) ही (अग्नि) अग्नि है। (तत्) वह (आदित्य) आदित्य, (तत् वायु) वह वायु, (तत् उ चन्द्रमा) वह निश्चय चन्द्रमा है। (तत् एव शुक्रम्) वह ही शुक्र (तत् ब्रह्म) वह ब्रह्म है। (ता आप) वह आप (स प्रजापति) वह ही प्रजापति है।

भावार्थ—उस परब्रह्म के यह अग्नि आदि सार्थक नाम हैं, निरर्थक एक भी नही। अग्नि नाम परमात्मा का इसलिए है कि वह सर्वव्यापक, स्वप्रकाशज्ञानस्वरूप, सबका अग्रणी नेता और परम पूजनीय है। अविनाशी होने से और सारे जगत् का प्रलयकर्ता होने से उसका नाम आदित्य है। अनन्त बलवान् होने से उसको वायु कहते हैं। सब प्रेमी भक्तो को आनन्द देता है, इसलिए उस जगत्पति का नाम चन्द्रमा है। शुद्ध पवित्र ज्ञानस्वरूप होने से शुक्र, और सबसे बडा होने से ब्रह्म, सर्वत्र व्यापक होने से आप सब प्रजाओ का स्वामी, पालक और रक्षक होने से उस जगत्पिता को प्रजापति कहते है। ऐसे ही सब वेदो मे, परमात्मा के सार्थक अनन्त नाम निरूपण किये हैं जिनको स्मरण करता हुआ पुरुष कल्याण को प्राप्त हो जाता है।

: १३ :

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३४।४१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमात्मन्! (तव) आपके (व्रते) नियम मे रहते हुए (वयम्) हम लोग (कदाचन) कभी भी (न रिष्येम) पीडित वा दुखी न हो। (इह) इस जगत् मे (ते)

आपके (स्तोतार) स्तुति करते हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं।

भावार्थ—हे सबके पालन पोषण करने वाले परमात्मन्! आपके अटल सृष्टि नियमो के अनुसार अपना जीवन बनाने वाले हम आपके सेवक, इस लोक वा परलोक मे कभी दुःखी नहीं हो सकते, इसलिए आपकी प्रेमपूर्वक स्तुति करने वाले हम सदा सुखी होते हैं। आप परम पिता हम पर कृपा करे कि हम आपकी श्रद्धा भक्तिपूर्व उपासना, प्रार्थना और स्तुति नित्य किया करें।

: १४ :

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ३२।१०॥

पदार्थ—(स) वह परमेश्वर (न) हम सबका (बन्धु) भाई के समान मान्य और सहायक है। (जनिता) जनयिता अर्थात् हमारे सबके शरीरो का उत्पन्न करने हारा है। (स विधाता) वही जगदीश सब पदार्थों का और सबके कर्मों का फलदाता है। (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरो और (धामानि) सबके जन्मस्थान और नामो को (वेद) जानता है। (यत्र) जिस परमेश्वर मे (देवा) विद्वान् लोग (अमृतम्) मोक्ष सुख को (आनशाना) प्राप्त होते हुए (तृतीये) जीव प्रकृति से विलक्षण तीसरे (धामन्) आधाररूप जगदीश्वर मे रमण करते हुए (अध्यैरयन्त) अपनी इच्छापूर्वक सर्वत्र विचरते हैं।

भावार्थ—जो जगत्पति, हम सबका बन्धु और सबका जनक, सबके कर्मो का फलप्रदाता, सब लोक लोकान्तरो को और सबके जन्मस्थान और नामो को जानता है, वह जीव और प्रकृति से विलक्षण है। उसी परमात्मा में विद्वान् लोग, मुक्ति सुख को अनुभव करते हुए, अपनी इच्छापूर्वक सर्वत्र विचरते हैं।

: १५ :

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदꣳसं च विचैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च
विभूः प्रजासु ॥ ३२।८॥

पदार्थ—(वेन) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (तत्) उस ब्रह्म को जो (गुहानिहितम्) बुद्धिरूपी गुफा में स्थित तथा (सत्) तीन कालो मे वर्तमान नित्य है, उसको (पश्यत्) अनुभव करता है, (यत्र) जिस ब्रह्म मे (विश्वम्) सारा ससार (एक नीडम्) एक आश्रय को (भवति) प्राप्त होता है, (तस्मिन्) उसी ब्रह्म मे (इदम् सर्वम्) यह सब जगत् (सम् एति च) प्रलयकाल मे सगत होता अर्थात् लीन होता है। और उत्पत्ति काल मे (वि एति च) पृथक् स्थूल रूप को भी प्राप्त होता है। (स) वह जगदीश (विभू) विविध प्रकार से व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओ मे (ओत प्रोत च) ओत और प्रोत है।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पुरुष, उस ब्रह्म को अपनी बुद्धिरूपी गुफा मे स्थित देखता है, जो ब्रह्म सत्य, होने से नित्य त्रिकालो मे अबाध्य और सारे ससार का आश्रय है, यह सब जगत् प्रलय काल मे जिसमे लीन होता और उत्पत्ति काल मे जिससे निकलकर स्थूलरूप को प्राप्त होता है, और बने हुए सब जगत् मे व्यापक, वस्त्र मे ताने-पेटे के समान सर्वत्र भरा हुआ है। ऐसे ब्रह्म को ब्रह्मज्ञानी जानता और अनुभव करता हुआ कृतार्थ होता है।

: १६ :

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
३४।५८॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मण पते) ब्रह्माण्ड के स्वामिन्, वा वेद रक्षक प्रभो! (देवा) वेदवेत्ता विद्वान् (यत्) जिसकी (विदथे) पठन

पाठनादि व्यवहार मे (अवन्ति) रक्षा करते हैं। और (यत्) जिस (बृहत) बडे श्रेष्ठ का (वयम् सुवीरा) हम उत्तम वीर पुरुष (वदेम) कहे (अस्य सूक्तस्य) अच्छे प्रकार कहे इस वेद के (त्वम्) आप (यन्ता) नियमपूर्वक दाता हैं, (च) और (तनयम्) अपने पुत्र तुल्य मनुष्य मात्र को (बोधि) करावें, (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणमय वेदामृत से (विश्वम्) सब ससार को (जिन्व) तृप्त कीजिए।

भावार्थ—हे सकल ससार के और वेद के रक्षक परमात्मन्! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम न करने वाले होवें। सारे ससार के मनुष्य जो आपके ही पुत्र हैं, उनके हृदय मे वेदो मे प्रेम और दृढ़ विश्वास उत्पन्न करें, जिससे वेदो को पढ़-सुनकर उनके कल्याणमय वैदिक ज्ञान से तृप्त हुए सारे ससार को तृप्त करे।

: १७ :

प्रनून ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्र वदत्युक्थ्यम्। यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकाꣳसि चक्रिरे॥ ३४।५७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस परमेश्वर मे (इन्द्र) बिजुली वा सूर्य (वरुण) जल वा चन्द्रमा (मित्र) प्राण अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु (देवा·) ये सब उत्तम गुण वाले (ओकासि) निवासो को (चक्रिरे) किये हुए है, वही (ब्रह्मण पति) सारे ब्रह्माण्ड का और वेद का रक्षक जगदीश (उक्थ्यम्) प्रशसनीय पदार्थो मे श्रेष्ठ (मन्त्रम्) वेद रूप मन्त्र भाग को (नूनम्) निश्चय कर (प्रवदति) अच्छे प्रकार कहता है।

भावार्थ—जिस परमात्मा मे, कार्य कारण रूप सब जगत् और जीव निवास कर रहे है, उन जीवो के कल्याण के लिए, जिस दयामय परमात्मा ने मन्त्र भाग रूपी वेद बनाये, उन वेदो को पढते-पढाते सुनते-सुनाते हुए, हम लोग उस जगत्पिता परमात्मा को जानकर और उसी की भक्ति करते हुए, कल्याण के भागी बन सकते हैं अन्यथा कदापि नही।

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३३।२४॥

पदार्थ—(येषाम्) जिन उत्तम पुरुषो का (इध्मः) महा-तेजस्वी (पृथु) विस्तार युक्त (स्वरु) सूर्य के समान प्रतापी (युवा) नित्य युवा एकरस (बृहत्) सबसे बडा (इन्द्र) परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर (सखा) मित्र है, (एषाम्) उन (इत्) ही का (भूरि) बहुत (शस्तम्) स्तुति योग्य कर्म होता है ।

भावार्थ—जिन महानुभाव भद्र पुरुषो ने, विषय भोगो मे न फंसकर, महातेजस्वी, सर्वव्यापक सूर्यवत् प्रतापी, एकरस, महाबली, सबसे बडे परमेश्वर को, अपना मित्र बना लिया है, उन्ही का जीवन सफल है । सासारिक भोगो से विरक्त, परमेश्वर के ध्यान मे और उसके ज्ञान मे आसक्त, महापुरुषो के सत्सग से ही, मुमुक्षु पुरुषो का कल्याण हो सकता है, न कि विषय-लम्पट ईश्वर विमुखो के कुसग से ।

: १९ :

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् ।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सँसूर्य्येण रोचते ॥ ३७।१४॥

पदार्थ—जो परमेश्वर (देवानाम्) विद्वानो और पृथ्वी आदि तेतीस देवो के (गर्भ) गर्भ की नाई उत्पत्ति स्थान (मतीनाम्) मननशील बुद्धिमान मनुष्यो के (पिता) पालक (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पति) रक्षक स्वामी, (देव) स्वप्रकाश-स्वरूप परमात्मा (सवित्रा) सब ससार के प्रेरक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (स रोचते) सम्यक् प्रकाश कर रहा है, उसको हे मनुष्यो ! (सम् गत) आप लोग सम्यक् प्राप्त होवो ।

भावार्थ—जो जगत्पिता परमात्मा सबका उत्पादक, पिता के

तुल्य सबका और विशेषकर विद्वानो का पालक सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक जगदीश्वर है, उसी पूर्ण परमात्मा की हम सब लोग, सदैव प्रेम से उपासना किया करें, जिससे हमारा सबका कल्याण हो।

: २० :

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स॒ᳫशिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥
२।२४॥

पदार्थ—(वर्चसा) वेदो के स्वाध्याय और योगाभ्यास करने से प्राप्त जो ब्रह्मतेज (पयसा) पुष्टिकारक दुग्ध घृतादि (तनूभि) नीरोग शरीर और (शिवेन मनसा) कल्याणकारी पवित्र मन से (सम् अगन्महि) सम्यक् सयुक्त रहे (सुदत्र) श्रेष्ठ पदार्थों का दाता, (त्वष्टा) जगत् उत्पादक प्रभु हमे (राय) अनेक प्रकार का धन (विदधातु) प्रदान करे। (तन्व) हमारे शरीर मे (यत्) जो विलिष्टम् विपरीत अनिष्ट, उपघातक पदार्थ हो उसको (अनुमार्ष्टु) शुद्ध करें वा दूर करे।

भावार्थ—हे जगत् पिता अनेक उत्तम पदार्थों के प्रदाता परमेश्वर! अपनी अपार कृपा से, हमे वेदो के स्वाध्यायशील, शरीर की पुष्टि करने वाले अनेक खाद्य पदार्थों के स्वामी, नीरोग ऐश्वर्य शरीर वाले और कल्याणकारी शुद्ध मन से युक्त बनावें। हे सकल के स्वामी इन्द्र! हम कभी दरिद्री, दीन, मलीन, पराधीन, रोगी न हो, किन्तु सुखी रहते हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों के स्वामी हो।

: २१ :

पयः पृथिव्यां पय ओषधिषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ १८।३६॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप कृपा करके (पृथिव्याम्)

पृथिवी मे (पय) पुष्टिकारक रस को (धा) स्थापित करें। ऐसे ही (ओषधीषु) ओषधियोमे (दिवि) द्युलोक मे, और (अन्तरिक्षे) मध्य लोक मे (पय धा) पौष्टिक रस स्थापित करें (प्रदिशः) समस्त दिशाए (मह्यम्) मेरे लिए (पयस्वती) पौष्टिक रस से पूर्ण (सन्तु) होवे।

भावार्थ—हे सबके पालन पोषण कर्ता जगदीश्वर! आप, अपने पुत्र हम सब पर कृपा करें कि आपकी नियम व्यवस्था के अनुसार जहा-जहा हमारा निवास हो, वहा-वहा हम अन्नादिको के पौष्टिक रस से पुष्ट हुए, आपके स्मरण और उपासना मे तत्पर रहे। पृथिवी मे, द्युलोक वा मध्य लोक मे और पूर्व पश्चिमादि सब दिशाओ मे रहते, आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति, प्रार्थना, उपासना करते हुए सदा आनन्द मे रहे।

: २२ :

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ३६।८॥

पदार्थ—(इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्य) सब चर और अचर जगत् को (राजति) प्रकाश करने वाला और सब का राजा, स्वामी है। (न) हमारे (द्विपदे) दो पाव वालो के लिये और (चतुष्पदे) चार पाव वालो के लिये भी (शम् अस्तु) कल्याण कर्ता होवे।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आप सब चर और अचर जगतो के राजा और स्वामी है। आपकी दिव्य ज्योति से ही सूर्य, चन्द्र, बिजली आदि प्रकाशित हो रहे हैं। आप सब जगतो के प्रकाशक है। भगवन्! हमारे सब मनुष्यादि दो पाव वाले और गौ अश्वादि पशु चार पाव वाले जो हम पर सदा उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही पर-उपकार के लिये है, इनके लिये भी आप सदा सुख और कल्याणकर्ता होवें।

: २३ :

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु न. ॥ ३६।१२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (देवी आप) दिव्य गुण युक्त जल, महात्मा, आप ईश्वर, विद्वान् आप्त पुरुष, श्रेष्ठ कर्म और ज्ञान (न अभिष्टये) हमारे अभिलषित कार्यों के सिद्ध करने के लिये (शम् न) हमे शान्तिदायक हो और वे (पीतये भवन्तु) पान और पालन रक्षण के लिये भी हो । वे ही (न) हम पर (शयो अभि-स्रवन्तु) शान्ति सुख का सब ओर से वर्षण करने और बहाने वाले हो ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा करे कि, दिव्य गुण वाले जल आदि पदार्थ, आप्त वक्ता विद्वान् महात्मा लोग, श्रेष्ठ कर्म, ज्ञान और आप ईश्वर हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करते हुए, हमे शान्तिदायक हो । ये ही हमारा पालन-पोषण करके हम पर सब ओर से शान्ति सुख की वर्षा करने वाले हो ।

. २४

श वात श१ँहि ते घृणि॰ श ते भवन्त्विष्टका ।
श ते भवन्त्वग्नय पार्थिवासो मा त्वाभिशूशुचन् ॥ ३५।८॥

पदार्थ—हे जीव ! (वात) वायु (शम्) सुखकारी हो । (ते) तेरे लिये (घृणि) सूर्य (हि) भी (शम्) सुखकर हो । (ते) तेरे लिये (इष्टका) वेदी मे चयन की हुई ईटे अथवा ईटो से बने हुए स्थान (शम्) सुखप्रद (भवन्तु) हो (ते) तेरे लिये (पार्थिवास अग्नय) इस पृथिवी की अग्नि और बिजली आदि (शम् भवन्तु) सुखकारक हो । ये सब अग्नि, वायु, सूर्य; बिजली आदि पदार्थ (त्वा) तुमको (मा अभिशूशुचन) न दग्ध करें, न सतावें, दु ख और शोक के कारण न हो ।

भावार्थ—दयामय परमपिता परमात्मा, हम सबको वेद द्वारा उपदेश करते है कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप सबको चाहिये कि आप लोग ऐसे अच्छे धार्मिक काम करो और मेरी भक्ति, प्रार्थना उपासना मे लग जाओ, जिससे अग्नि, बिजली सूर्यादि सब दिव्य देव, आपको सुखदायक हो। प्यारे पुत्रो ! ये सब पदार्थ आप लोगो को सुख देने के लिये ही मैंने बनाए है, दुःख देने के लिये नही। दुःख तो अपनी अविद्या, मूर्खता, अधर्म करने और प्रभु से विमुख होने से होता है। आप, पापो को छोडकर मुझ प्रभु की शरण मे आकर सदा सुखी हो जाओ।

२५

कल्पन्ता ते दिशस्तुभ्यमाप शिवतमास्तुभ्य भवन्तु सिन्धवः
अन्तरिक्षꣳशिव तुभ्य कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ३५।६॥

पदार्थ—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (दिश) पूर्व पश्चिमादि दिशाएँ और इनमे रहने वाले प्राणिवर्ग (शिवतमा) अत्यन्त सुखकारी (कल्पन्ताम्) हो। (आप तुभ्यम् शिवतमा) जल तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हो। (सिन्धवः तुभ्यम् शिवतमा भवन्तु) नदिया और समुद्र तेरे लिये अति सुखकारी हो। (तुभ्यम्) तेरे लिये (अन्तरिक्षम् शिवम्) मध्य आकाश कल्याणकारी हो। (ते) तेरे लिए (सर्वा दिश,) ईशानादि सब विदिशाएँ अत्यन्त कल्याणकारी (कल्पन्ताम्) होवें।

भावार्थ—परम कृपालु परमात्मा, अपने पुत्र जीव मात्र को उत्तम उपदेश करते हैं—हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप लोग यदि पापाचरण को छोडकर, सदा वेदानुकूल, अपना आचरण बनाते हुए मेरी प्रेम भक्ति मे लग जावे तो आपके लिए सब दिशा, उपदिशा, सब जल, सब नदिया, समुद्र, अन्तरिक्ष और इनमे रहने वाले सब प्राणी और सब पदार्थ अत्यन्त मगलकारी हो।

: २६ :

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥३३।८१॥

पदार्थ—हे (पुरूवसो) बहुत पदार्थों मे वास करने वाले परम-पिता परमात्मन्! (या इमा) जो ये (मम गिर) मेरी वाणिया (उ) निश्चय करके (त्वा वर्द्धन्तु) आपको बढावें [आपकी महिमा का प्रचार करें] (पावक वर्णा) अग्नि के तुल्य वर्ण वाले महातेजस्वी (शुचय) पवित्र हृदय (विपश्चित) विद्वान् जन (स्तोमै) स्तुति वचनो से (अभि अनूषत) प्रशसा करें।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन् प्रभो! हम सब मुमुक्षु जनो को योग्य है कि हम सब की वाणियाँ आपकी महिमा को बढावें; सब विद्वान् पवित्र हृदय, महातेजस्वी, महात्मा लोगो को भी चाहिए कि, आपकी प्रेमपूर्वक उपासना प्रार्थना और स्तुति करने मे लग जावें क्योकि आपकी भक्ति से ही हम सबका जन्म सफल हो सकता है। आपकी भक्ति के बिना, विद्वान् हो चाहे अज्ञानी, किसी का भी जन्म सफल नही हो सकता। इसलिए हम सबको योग्य है कि हम सब लोग, उस दयामय अन्तर्यामी जगदीश्वर की, पवित्र वेद-मन्त्रो से प्रार्थना उपासना और स्तुति किया करे।

. २७ .

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा ऊर्ध्वो
अध्वरं दिवि देवेषु धेहि॥ ३७।१९॥

पदार्थ—हे जगदीश! (हृदे त्वा) हृदय की चेतनता के लिए आपको, (मनसे त्वा) ज्ञानयुक्त अन्त करण की शुद्धि के लिए आपको, (दिवे त्वा) विद्या के प्रकाश वा बिजुली-विद्या की प्राप्ति के लिए आपको (सुर्याय त्वा) सूर्यादि लोको के ज्ञान की प्राप्ति अर्थ आपको हम लोग ध्यावे [आपका ध्यान करें] (ऊर्ध्व) सबसे

ऊचे अर्थात् उत्कृष्ट आप (दिवि) उत्तम व्यवहार और (देवेषु) विद्वानो मे (अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ का (वेहि) स्थापन करें।

भावार्थ—हे दयामय जगद्रक्षक परमात्मन्! आप कृपा करें, हमारा हृदय चेतन स्फूर्ति वाला हो, और अत करण ज्ञान युक्त हो, आत्मविद्या का प्रकाश हो। बिजुली, अग्नि, सूर्य, वायु आदि विद्याओ की प्राप्ति के लिए सदा आपका ही ध्यान धरें। आप सारे ससार के विद्वानो मे अहिंसामय यज्ञ का विस्तार कर रहे हैं, अहिंसक प्राणी की कोई हिंसा न करे। सारे ससार मे शान्ति का राज्य हो, कोई किसी को दु ख न देवे। मनुष्यमात्र सब एक दूसरे के मित्र बनकर, एक दूसरे के हित करने मे प्रवृत्त हो, कोई किसी की हानि न करे।

: २८ :

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥
३४।१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश जगदीश्वर! (त्वम्) आप (प्रथम) सबसे प्रथम प्रख्यात (अङ्गिराः) जीवात्माओ को सुख देने वाले (ऋषि) ज्ञानी (देवानाम्) विद्वानो मे (देव) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त (शिव) कल्याणकारी (सखा) मित्र (अभव) है। (तव व्रते) आपके नियम मे (कवय) मेधावी (विद्मनापस) सब कर्मों के ज्ञाता (भ्राजदृष्टय) प्रदीप्त हैं दृष्टि जिनकी ऐसे (मरुतोऽजायन्त) मनुष्य प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप ज्ञानप्रद प्रभो! आप सबसे प्रथम प्रसिद्ध, जीव के सुखदाता, महाज्ञानी, विद्वान् महात्माओ के कल्याण कारक और सच्चे मित्र है। जो महापुरुष मेधावी उज्ज्वल बुद्धि वाले, आपके बनाए नियमो के अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, वे ही आपकी आज्ञा मनाते हुए सदा सुखी होते हैं।

: २९ :

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३६।४॥

पदार्थ—(सदा वृधः) सदा से महान् प्रभु (चित्र) आश्चर्य-कारक और आश्चर्यस्वरूप, (कया ऊती) सुखकारी रक्षण से (कया शचिष्ठया) सुखमय अपनी अतिशक्ति द्वारा (वृता) वर्तमान (न) हम सबका (सखा) मित्र (आभुवत्) सदा बना रहता है।

भावार्थ—सदा से महान् वह जगदीश्वर आश्चर्यस्वरूप और आश्चर्यकारक है। वह आनन्ददायक रक्षण से और अपनी आनन्द-कारक महाशक्ति द्वारा, हम सबकी रक्षा करता हुआ, हमारा सच्चा मित्र बना रहता है। ऐसे सदा सुखदायक सच्चे मित्र पर-मात्मा की, शुद्ध मन से भक्ति करना हमारा सबका कर्तव्य है।

: ३० :

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ३६।५॥

पदार्थ—हे जीव! (अन्धस) अन्नादि भोग्य पदार्थों के (मदानाम्) आनन्दों से (महिष्ठ) अधिक आनन्दकारक और (सत्य) तीनों कालों में एक रस (क) सुखस्वरूप (चित्) ज्ञानी परमात्मा (त्वा) तुमको (मत्सत्) आनन्द करता है और (दृढा वसु) बलकारक धनों को (आरुजे) दुःखनाश के लिए देता है।

भावार्थ—हे मनुष्यो! वह सत्, चित और आनन्दस्वरूप जगत्पिता परमात्मा, अन्नादि भोग और बलयुक्त धन, अनेक विपत्तियों के दूर करने के लिए तुम मनुष्यों को, देकर आनन्दित करता है, ऐसे दयालु परमपिता को कभी भूलना नहीं चाहिए।

: ३१ :

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३६।६॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (नः सखीनाम्) हम सब आपके प्रेमी मित्रो के और (जरितॄणाम्) उपासको के (शतम् ऊतिभि) सैंकडो रक्षणो से (अभि सु अविता) चारो ओर से उत्तम रक्षक (भवासि) आप होते हैं ।

भावार्थ—हे सबके रक्षक परम प्यारे जगदीश्वर ! आप अपने मित्रो और उपासको का अनेक प्रकार से अत्युत्तम रक्षण करते हैं । भगवन् ! न्यूनता हमारी ही है, जो हम ससार के भोगो मे लम्पट होकर ससारी पुरुषो को अपना मित्र जानते और उनके ही सेवक और उपासक बने रहते है । इसमे अपराध हमारा ही है, जो हम आपके प्यारे मित्र और उपासक नही बनते ।

: ३२

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचᳬराजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ १८।४८॥

पदार्थ—(न ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणो मे (रुचम) तेज और परस्पर प्रेम (धेहि) प्रदान करो । (न (राजसु) हमारे क्षत्रियो मे (रुचम् कृधि) तेज और प्रेम स्थापन करो । (विश्येषु शूद्रेषु) वैश्य और शूद्रो मे (रुचम् धेहि) तेज और प्रेम स्थापन करो । (मयि) मेरे मे भी (रुचा) अपने तेज और प्रेम द्वारा (रुचम् धेहि) सबसे प्रेम और तेज को स्थापन करो ।

भावार्थ—हे विशाल प्रेम ज्ञान और तेज के भण्डार परमात्मन् ! हमारे ब्राह्मणादि चारो वर्णों को वेदो के स्वाध्याय और योगाभ्यासादि साधनो से उत्पन्न जो ब्रह्मतेज उस तेज से सम्पन्न करो । इन चारो वर्णों मे आपस में प्रेम भी उत्पन्न करो, जिससे

एक दूसरे के सहायक बनते हुए सब सुखी हो। वेदादि सत्य शास्त्रों की विद्या और परस्पर प्रेम के बिना, कभी कोई सुखी नही हो सकता। इसीलिए आप दयालु पिता ने इस मन्त्र द्वारा, हमें बताया कि मेरे प्यारे पुत्रो! तुम लोग मुझसे ब्रह्मविद्या और परस्पर प्रेम की प्रार्थना करो, जिससे आप लोग सदा सुखी होओ।

: ३३ :

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
त लोकं पुण्य प्रज्ञेष यत्र देवाः सहाग्निना॥ २०।२५॥

पदार्थ—(यत्र) जिस देश मे (ब्रह्म) वेद वेत्ता ब्राह्मण (च) और (क्षत्र च) विद्वान शूर वीर क्षत्रिय ये दोनो (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार से मिलकर (सह) एक साथ (चरत) विचरण करते हैं अर्थात् विद्यमान् रहते और (यत्र) जहा (देवा) विद्वान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन (सह अग्निना) ज्ञानस्वरूप परमात्मा की प्रार्थना उपासना करते और अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मों के करने से ईश्वर की आज्ञा का पालन करते, उसी का ध्यान धरते और उसी के साथ रहते है (तम् लोकम्) उस देश और उस जनसमाज को मैं (पुण्यम्) पवित्र और (प्रज्ञेषम्) उत्कृष्ट जानता हूँ।

भावार्थ—परमात्मा हम सबको वेद द्वारा उपदेश देते हैं कि, जिस देश या जनसमाज मे वेदवेत्ता सच्चे ब्राह्मण और शूरवीर क्षत्रिय मिलकर काम करते हैं, वह देश और जनसमुदाय पवित्र भाग्यशाली है। वही देश और जनसमुदाय परम सुखी है। उस देश के वासी विद्वान् लोग, अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म करते और जगदीश्वर का ध्यान धरते, और उस परमपिता परमात्मा के साथ रहते हैं। धन्यवाद है ऐसे देश की और उसके वासी परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महापुरुषो को, जो प्रभु के भक्त बनकर दूसरो को भी परमेश्वर का भक्त और वेदानुयायी बनाते हैं।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
३४।१॥

पदार्थ—हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! (यत्) जो मुझ जीवात्मा का (मन) सकल्प विकल्प करने वाला अन्त करण (दैवम्) ज्ञानादि दिव्य गुणो वाला और प्रकाशस्वरूप (जाग्रत) जागते हुए का (दूरम् उद् आ एति) दूर २ देशो मे जाया करता है और (सुप्तस्य) सोते हुए [मुझ] का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) भीतर आ जाता है (तत्) वही मन (उ) निश्चय से (ज्योतिषाम्) सूर्य, चन्द्रादि प्रकाशको का और नाना विषयो के प्रकाश करने वाले इन्द्रियगण का (ज्योति) प्रकाशक है, और वही मन (दूरङ्गमम्) दूर तक पहुचाने वाला (तत्) वह (मे मन) मेरा मन (शिवसकल्पम्) शुभ कल्याणमय सकल्प करने वाला (अस्तु) हो ।

भावार्थ—हे सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ! आपकी कृपा से मेरा मन, शुभमगलमय कल्याण का सङ्कल्प करने वाला हो, कभी दुष्ट सङ्कल्प करने वाला न हो, क्योकि यह मन अति चचल है, जागृत अवस्था मे दूर २ तक भागता फिरता है । जब हम सो जाते हैं तब भी यह मन अन्दर भटकता रहता है, वही दिव्य मन दूर २ देशो मे आने जाने वाला और ज्योतियों का ज्योति है । क्योकि मन के बिना किसी ज्योति का ज्ञान नही हो सकता । दयामय परमात्मान् ! यह मन आपकी कृपा से ही शुभ सङ्कल्प वाला हो सकता है ।

: ३५ :

**येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
३४।२॥**

पदार्थ—(येन) जिस मन से (अपस) कर्म करने वाले उद्यमी और (मनीषिण) दृढ निश्चय वाले ज्ञानी और (धीरा) ध्यान करने वाले महात्मा लोग (विदथेषु) ज्ञानयुक्त व्यवहारो और युद्धादिको मे और (यज्ञे) यज्ञ वा परमपूज्य परमात्मा की प्राप्ति के लिये (कर्माणि) अनेक उत्तम कर्मों का (कृण्वन्ति) सेवन करते है और (यत्) जो (प्रजानाम् अन्त) सब प्रजाओ के अन्तर मध्य मे (अपूर्वम्) अद्भुत सबसे श्रेष्ठ (यक्षम्) पूजनीय, सब इन्द्रियो का प्रेरणा करने वाला है (तत् मे मन) वह ऐसा मेरा मन (शिव-सङ्कल्पम् अस्तु) शुभ सङ्कल्प करने वाला हो।

भावार्थ—हम सब जिज्ञासु पुरुषो को चाहिये कि, अपने मन को बुरे कर्मों से हटाकर परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, वेद विद्या, उत्तम महात्माओ के सत्सङ्ग मे लगावे, क्योकि जो उत्तम यज्ञादि कर्म करने वाले परम ज्ञानी अपने मन को वश मे करने वाले और ध्याननिष्ठ धीर मेधावी पुरुष है, वे सब अधर्मा-चरण से अपने मन को हटाकर, श्रेष्ठ ज्ञान कर्म और योगाभ्या-सादि मे लगाते हैं। मेरा मन भी दयामय आप परमात्मा की कृपा से उत्तम सङ्कल्प और परमात्मा के ध्यान मे सलग्न हो।

: ३६

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ॥ ३४।३॥**

पदार्थ—(यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर उत्तम ज्ञान साधन

(चेत) स्मरण करने वाला (धृतिः च) धैर्यस्वरूप और लज्जा आदि करने वाला (यत् प्रजासु) जो प्राणियो के भीतर (अन्त) अन्त करण मे (अमृतम्) नाशरहित (ज्योति) प्रकाश है, (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किम् चन) कोई भी (कर्म) काम (न क्रियते) नही किया जाता (तत् मे मन) वह सब कामो का साधन मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) शुभ सङ्कल्प वाला और परमात्मा मे इच्छा करने वाला हो ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्त.करण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप वृत्तिवाला होने से चार प्रकार का है । मनन करने से मन, निश्चय करने से बुद्धि, स्मरण करने से चित्त और अहङ्कार करने से अहङ्कार कहलाता है । यह मन शरीर के भीतर प्रकाश, स्मरण, धैर्य और लज्जा आदि करने वाला और सब प्राणियो के कर्मों का साधक अविनाशी है, उसको अशुभ कर्मों से हटाकर अच्छे कर्मों मे लगाओ और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करो कि, हे दयामय जगदीश ! हमारा मन श्रेष्ठ मङ्गलमय सङ्कल्प करने वाला और आप प्रभु परमपिता परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो ।

: ३७ :

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३४।४॥

पदार्थ—(येन अमृतेन) जिस अविनाशी आत्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) आगे होने वाला (सर्वम् इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) ग्रहण किया जाता, अर्थात् जाना जाता है । (येन) जिससे (सप्त होता) सात मनुष्य होता जिस यज्ञ मे अथवा पाँच प्राण छटा जीवात्मा और सातवा

अव्यक्त, ये सात जिसमे लेने देने वाले हो, वह (यज्ञ) अग्निष्टोमादि वा विज्ञान रूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत् मे मनः) वह योगयुक्त मेरा चित्त (शिव सङ्कल्पम् अस्तु) परमात्मा और मोक्ष विषयक सङ्कल्प करने वाला हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मन योगाभ्यास के साधनो से सिद्ध हुआ, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान इन तीनो कालो का ज्ञाता, सब सृष्टि का जानने वाला, कर्म, उपासना और ज्ञान का साधन है, ऐसे मन को कल्याण मे ही लगाना चाहिए।

: ३८ :

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३४।५॥

पदार्थ—(रथनाभौ अरा इव) रथ के चक्र की नाभि मे जैसे अरे लगे रहते हैं, इसी प्रकार (यस्मिन्) जिस मन मे (ऋच) ऋग्वेद, (साम) सामवेद, (यजूषि) यजुर्वेद, (प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित हैं अर्थात् चार वेदो के मन्त्र विद्वान् के मन मे सस्कार रूप से स्थित रहते हैं, (यस्मिन्) जिस मन मे (प्रजानाम्) सब प्राणियो के (सर्वम् चित्तम्) सब पदार्थों के ज्ञान (ओतम्) सूत्र मे मणियो के समान ओत-प्रोत हैं, अर्थात् पिरोये हुए हैं (तत् मे मन) वह मेरा मन (शिवसकल्पम् अस्तु) शुभ वेद विचार और परमात्मा के ध्यानादिको के सङ्कल्प वाला हो।

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुषो ! हम सब लोगो को योग्य है कि, जिस मन के स्वस्थ और शुद्ध रहने से, सत्सग, वेद विचार और ईश्वर ध्यानादि हो सकते हैं, अशुद्ध अस्वस्थ मन से नही ऐसे मन की अशुद्ध भावना को हटाकर वेद विचार और ईश्वर ध्यान मे लगावें, जिससे हमारा कल्याण हो।

: ३९ :

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ॥ ३४।६॥

पदार्थ—(इव) जिस प्रकार (सुसारथि) उत्तम सारथि (अश्वान) घोडो को चलाता है (इव) इसी प्रकार (यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यो के इन्द्रिय रूपी (वाजिन) वेगवान् घोडो को (अभीशुभि) लगामो द्वारा (नेनीयते) अनेक मार्गों पर ले जाता है, मन भी इन्द्रियो की अनेक प्रकार की प्रवृत्तिरूपी लगामो द्वारा मनुष्यों को अपने वश मे करके अनेक प्रकार के शुभ-अशुभ मार्गों मे ले जाता है, (हृत्प्रतिष्ठम्) जो मन हृदय मे स्थित हुआ (अजिरम्) अजर बूढ़ा नही होता (जविष्ठम्) बडा वेगवान् है। (तत् मे मन) वह मेरा मन (शिवसकल्पम् अस्तु) उत्तम कल्याण कारक सकल्प वाला हो।

भावार्थ—रथ का सारथी जैसे घोडो को चलाता है, ऐसे ही यह मन इन्द्रियो का सचालक है। इस मन मे सदा शुभ सकल्प होने चाहियें, जैसे उत्तम सारथी, घोडो को लगाम द्वारा अपने वश मे करता हुआ अभिलषित स्थान को पहुँच जाता है। ऐसे ही मन आदि इन्द्रियो को अपने वश मे करता हुआ मुमुक्षु पुरुष, मुक्ति-रूपी अभिलषित धाम को पहुँच जाता है। मन भी बडा ही बल-वान्, बूढा न होने वाला है, इसको अपने वश मे करने के लिए मुमुक्षु पुरुष को बडा यत्न करना चाहिये।

: ४० :

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री

धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायतां। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ता योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२।२२॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) महाशक्ति वाले ब्रह्मन् परमात्मन्! हमारे (राष्ट्रे) देश मे (ब्रह्मवर्चसी) वेद और परमेश्वर का ज्ञाता तेजस्वी सच्चा (ब्राह्मण) ब्राह्मण (आजायताम्) सब ओर हो, (शूर) शूरवीर (इषव्य) बाणविद्या मे चतुर (अतिव्याधी) दुष्टो को अति वेग से दबा देने वाला (महारथ) महारथी (राजन्य) राजपुत्र क्षत्रिय वर्ग (आजायताम) हो। (दोग्ध्री धेनु) बहुत दुग्ध देने वाली गौए (अनड्वान् वोढा) बैल भार उठाने वाले (आशु सप्ति) शीघ्र चलने वाले घोडे आदि हो। (योषा पुरन्धि) स्त्री पति पुत्र वाली हो। (अस्य यजमानस्य) इस यजमान के राष्ट्र मे (सभेय युवा) सभा मे उत्तम वक्ता जवान, और (जिष्णू) जयशील (रथेष्ठा) रथ पर स्थित (वीर) वीर पुरुष (जायताम्) होवे। (निकामे निकामे) अपेक्षित समय पर (न) हमारे देश मे (पर्जन्य वर्षतु) मेघ बरसे (न ओषधय) हमारे अन्न आदि (फलवत्य पच्यन्ताम्) फल वाले होकर पकें तथा (न योग क्षेम) जो धन आदि पहले हमे अप्राप्त हैं वह प्राप्त हो और जो प्राप्त हैं उनका सरक्षण (कल्पताम्) भली प्रकार सिद्ध हो।

भावार्थ—परमात्मन्! हमारे देश मे ब्राह्मण उच्च कोटि के हो। हमारे देश मे वीर क्षत्रिय उत्पन्न हो। गौ, घोडे, बैल हमारे देश मे उत्तम हो। समय पर वर्षा की, तथा परिपक्व अन्न की प्राप्ति की आवश्यकता को पूर्ण करते हुए आप, हमारे योग-क्षेम को भली प्रकार सिद्ध करें।

: ४१ :

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धयः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥१६।३६॥

पदार्थ—(मा) मुझे (देवजना) परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महात्मा सन्त जन जो देव कहलाने योग्य हैं पवित्र करें। (मनसा धिय) सोच विचार से किये कर्म (पुनन्तु) पवित्र करें। (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणिगण और पृथ्वी जलादि भूत (पुनन्तु) पवित्र करें। (जातवेद) वेदो को ससार मे प्रकट करने वाला अन्तर्यामी प्रभु (मा) मुझे (पुनीहि) पवित्र करे।

भावार्थ— हे पतित पावन भगवन्! आपकी कृपा से आपके प्यारे महात्मा सन्तजन, हमे उपदेश देकर पवित्र करे। हमारे विचारपूर्वक किये कर्म भी, हमे पवित्र करें। भगवन्! प्रकृति और इसके कार्य जो चर और अचर भूत है, ये सब आपके अधीन हैं, आपकी कृपा से हमे पवित्र होने मे ये अनुकूल हो। आपने हमे सासारिक और परमार्थिक सुख देने के लिए, चार वेद प्रकट किये है, आप कृपा करें कि, उन वेदो का स्वाध्याय करते हुए, हम सब आपके पुत्र अपने लोक और परलोक को सुधारे। यह तब ही हो सकता है, जब आप हमको पवित्र करें। मलिन हृदय से तो न आपकी भक्ति हो सकती है और न ही वेदो का स्वाध्याय, इसीलिए हमारी बारम्बार ऐसी प्रार्थना है कि, 'जातवेद पुनीहि मा'।

· ४२ .

उभाभ्या देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मा पुनीहि विश्वतः ॥ १६।४३॥

पदार्थ—हे (सवित) सबके जनक! (देव) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (पवित्रेण) शुद्ध आचरण और ज्ञान तथा (सवेन च) उत्तम ऐश्वर्य इन (उभाभ्याम्) दोनो से (माम्) मुझको

(विश्वत) सब प्रकार से (पुनीहि) पवित्र करें ।

भावार्थ—हे सकल सृष्टिकर्त्ता सकल सुखप्रदाता परमात्मन् ! आप कृपा करके हमे अपना यथार्थ ज्ञान प्रदान करें । तथा शुद्धाचरण वाला बनाकर ऐश्वर्य भी देवें, क्योकि शुद्ध आचरण और आपके ज्ञान के बिना सब ऐश्वर्य पुरुष को नरक मे ले जाता है । इसलिए हमारी प्रार्थना है कि, हमे शुद्धाचरण वाला और ब्रह्मज्ञानी बनाकर, उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हुए, पवित्र बनाएँ, जिससे हम, लोक और परलोक मे सुखी हो ।

४३ :

अग्न आयूँषि पवस आ सुवोर्जमिषञ्च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६।३८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप सर्वत्र व्यापक पूज्य परमात्मन् ! (आयूँषि) जीवनो को (पवसे) पवित्र करके (न ऊर्जम्) हमारे लिए बल (च) और (इषम्) अभिलषित फल अन्नादि ऐश्वर्य को (आसुव) प्रदान करें (आरे) समीप और दूर के (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तो जैसे दुष्ट पुरुषो को (बाधस्व) पीडित और नष्ट करें ।

भावार्थ—हे अन्तर्यामी कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर आप कृपा करे, हमारा जीवन पवित्र हो, आपके यथार्थ ज्ञान और आपकी प्रेम भक्ति के रग से रगा हुआ हो । हमारे शरीर नीरोग, मन उज्ज्वल और आत्मा उन्नत हो । हमारे आर्य भ्राता, वेदो के विद्वान्, पवित्र जीवन वाले धार्मिक, आपके अनन्य भक्त श्रद्धा भक्तियुक्त हो । भगवन् ! अपने भक्तो के विरोधी दु खदायको के हृदय को भी पवित्र करे, जिससे वे लोग भी, किसी की हानि न करते हुए कल्याण के भागी बन जावे ।

: ४४ :

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रँहवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रँहुवेम ॥ ३४।३४॥

पदार्थ—(प्रातः) प्रभात वेला मे (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य युक्त प्रभु की (हवामहे) हम स्तुति प्रार्थना करते हैं। (प्रातः) (मित्रा वरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र के रचयिता परमात्मा की (प्रातः भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्ता (ब्रह्मण पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियो को रुलानेहारे और भक्तो के सर्व रोग नाशक जगदीश्वर की (हुवेम) हम लोग प्रातःकाल मे स्तुति प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप ज्ञानप्रद परमात्मन्! हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी ऐश्वर्य के दाता प्रभो! हे परम प्यारे सूर्य, चन्द्र आदि सब जगतो के रचयिता अपने भक्तो और ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले जगदीश! सब मनुष्यो के आप ही सेवनीय हो। आप ही सब भक्तो को शुभ कर्मों मे लगाने वाले और उनके रोग शोक आदि कष्टो के दूर करने वाले और अन्तर्यामी हो। हम आपकी ही स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं अन्य की नही।

: ४५ :

प्रातर्जितं भगमुग्रँहुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता । आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ ३४।३५॥

पदार्थ—(प्रातः) समय मे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य

के दाता (उग्रम्) बड़े तेजस्वी (अदिते) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य के उत्पत्तिकर्ता (य) जो सूर्य चन्द्रादि लोको का (विधर्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्र) सब ओर से धारण कर्ता (यम् चित्) जिस किसी का भी (मन्यमान) जानने हारा (तुर चित्) दुष्टो का भी दण्डदाता (राजा) सबका प्रकाशक और स्वामी है (यम् भगम्) जिस भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करते है कि तुम, जा मै सूर्यादि लोक लोकान्तरो का बनाने और धारण करने हारा हूँ, उस मेरी उपासना किया करो और मेरी आज्ञा मे रहो, इससे (वयम् हुवेम) हम लोग उसकी स्तुति करते ह ।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् ! महातेजस्विन् जगदीश ! आपकी महिमा को कौन जान सकता है ? आपने सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, मगल, शुक्रादि लोको को बनाया और इनमे अनन्त प्राणी बसाये है । उन सबको आपने ही धारण किया और उनमे बसने वाले प्राणियो के गुण कर्म स्वभावो को आप ही जानने और और उनको सुख दु खादि देते है । ऐसे महासमर्थ आप प्रभु को, प्रात काल मे हम स्मरण करते ह । आप अपने स्मरण का प्रकार भी मन्त्रो द्वारा बता रहे है, यह आपकी अपार कृपा है, जिसको हम कभी भूल नही सकते ।

· ४६

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमा धियमुदवा ददन्न: ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्त स्याम ॥
३४।३६॥

पदार्थ—ह (भग) भजनीय प्रभो ! (प्रणेत) सबके उत्पादक सत्कर्मों मे प्रेरक (भग) ऐश्वर्य प्रद (सत्यराध) धन के दाता (भग)

सत्याचरणी पुरुषो को ऐश्वर्यप्रद आप परमेश्वर (न) हमें (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये, उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये। हे (भग) भगवन्! (गोभि. अश्वै) गाय घोडे आदि उपकारक पशुओ से हमारी समृद्धि को (न) हमारे लिए (प्रजनय) प्रकट कीजिए (भग) भगवन्! आपकी कृपा से हम लोग (नृभि) उत्तम पुरुषो से (नृवन्त) वीर मनुष्य युक्त (प्र स्याम) अच्छे प्रकार होवें।

भावार्थ—हे भजनीय प्रभो! आप सारे ससार को उत्पन्न करने वाले और सदाचारी अपने सच्चे भक्तो के लिए सच्चा धन ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। जिस बुद्धि से आप हम पर प्रसन्न होवें, ऐसी बुद्धि हमे देकर हमारी रक्षा करें। सारे सुखो की जननी उत्तम बुद्धि ही है। इसलिए हम आपसे ऐसी प्रज्ञा मेधा उज्ज्वल बुद्धि की प्रार्थना करते हैं। भगवन्! गौ-घोडे आदि हमे देकर हमारी समृद्धि को बढ़ावे और अच्छे-अच्छे विद्वान् और वीर पुरुषों से हमे सयुक्त करें, जिससे हमे किसी प्रकार का भी कष्ट न हो।

: ४७ :

उतेदानीं भगवन्त स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवाना्ँसुमतौ स्याम॥
३४।३७॥

पदार्थ—हे भगवन्! आपकी कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे) पदार्थों की प्राप्ति मे (उत) और (अह्नाम् मध्ये) इन दिनो के मध्य मे (भगवन्त) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवे (उत) और (मघवन्) हे परम पूजनीय असख्य धन दाता प्रभो! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय काल मे (देवानाम्) पूर्ण विद्वानो की (सुमतौ) उत्तम बुद्धि वा सम्मति मे सकल ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हम होवें।

भावार्थ—हे परम पूज्य असंख्य धन आदि पदार्थदाता प्रभो ! आप हम पर कृपा करें, कि हम आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से शीघ्र ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान होवें । भगवन् ! आपकी पूर्ण कृपा से ही पूर्ण विद्वान् महात्मा सन्त जन मिलते हैं । उनकी कृपा और सदुपदेशों से, हम अपना लोक और परलोक सुधारते हुए, सुखी रह सकते हैं । किसी उत्तम पुरुष का यह सत्य वचन है कि "बिना हरि कृपा मिले नहीं सन्ता" ।

: ४८ :

भग एव भगवानस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥
३४।३८॥

पदार्थ—हे (देवा) विद्वान् महापुरुषो ! (भग) सबके भजनीय सेवनीय परमेश्वर (एव) ही (भगवान् अस्तु) हमारा सबका पूज्य इष्ट देव हो । (तेन वयम्) उस देव की कृपा से हम सब (भगवन्त स्याम) भाग्यवान् हों । (तम् त्वा) उस आप भगवान् को, हे (भग) भगवन् ! (सर्व इत्) समस्त जन भी (जोहवीति) बार-बार स्मरण करता है । हे (भग) भगवन् ! (इह) इस जगत् में (स न) वह आप हमारे (पुर एता) अग्रगामी अर्थात् सबके नायक लीडर वा नेता (भव) होवें ।

भावार्थ—हे महात्मा विद्वान् महापुरुषो ! हम सबका पूजनीय इष्ट देव, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही होना चाहिए, न कि जड़ पदार्थ वा कोई जल, स्थल, वा जन्मता मरता कोई मनुष्य या पशु पक्षी । आप महापुरुष विद्वानों की कृपा से साधारण पुरुष भी प्रभु का भक्त बनकर भाग्यशाली बन जाता है और अनेक पुरुषों का कल्याण करता है । हे परमेश्वर ! आपका महती कृपा से, पुरुष विद्वान् और आपका सच्चा भक्त बनकर, अनेक पुरुषों को

आपका भक्त बनाकर संसार से उनका उद्धारकर्ता बन जाता है। यह सब आपकी कृपा का ही प्रताप है।

: ४९ :

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥ ११।५॥

पदार्थ—ईश्वर की उपासना का उपदेष्टा गुरु और उसका ग्रहण करने वाला शिष्य, इन दोनों के प्रति परमेश्वर का उपदेश है कि (पूर्व्यम् ब्रह्म) मैं सनातन ब्रह्म (वाम्) आप गुरु-शिष्य दोनों को (युजे) उपासना में जोड़ता हूँ, (नमोभिः) नमस्कारों से (विश्लोक) विविध कीर्ति (एतु) प्राप्त हो, (इव) जैसे (सूरेः) विद्वान् पुरुष को (पथ्या) मार्ग प्राप्त होता है, (ये विश्वे अमृतस्य पुत्रा) जो सब आप लोग, अमर जो मैं हूं उसके पुत्र हो, (शृण्वन्तु) सुनो (दिव्यानि धामानि) दिव्य लोको अर्थात् मोक्ष सुखों को (आ तस्थु) [अधितिष्ठन्तु] प्राप्त होवो।

भावार्थ—परम कृपालु परमात्मा, अपने भक्तो पर कृपा करते हुए कहते हैं—हे अमृत के पुत्रो! मेरे वचन को बड़े प्रेम से सुनो। आप लोग मुझको बारम्बार नमस्कार करते और मेरा ही मन मे ध्यान धरते हो, इस लोक मे कीर्ति और शान्ति को प्राप्त होओ। मोक्ष के अनन्त दिव्य सुख भी, आप लोगो के लिए ही नियत हैं, उनको प्राप्त होकर सदा आनन्द मे रहो।

: ५० :

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥ १२।७९॥

पदार्थ—(अश्वत्थे) कलतक रहेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार मे (व) आप जीव लोगो की (निषदनम्) स्थिति को (पर्णे)

पत्ते के तुल्य चचल जीवन वाले शरीर मे (व) तुम्हारा (वसति) निवास (कृता) किया, (यत्) जिस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो और (गोभाज इत्) वेदवाणी, इन्द्रिय, किरण आदि के सेवन करने वाले ही (किल असथ) निश्चय से होवो।

भावार्थ—दयामय परमात्मा अपने प्यारे पुत्रो को उपदेश देते हैं—हे पुत्रो! आप लोग विचार कर देखो, अति चचल नश्वर, ससार मे आप लोगो की मैंने स्थिति की है, उसमे भी पत्ते के तुल्य शीघ्र गिर जाने वाले शरीर मे मैंने आप लोगो का निवास कराया है। ऐसे नश्वर ससार और क्षणभगुर शरीर मे रहते हुए भी आप लोग ससार और शरीर को नित्य अविनाशी जानकर मुझ जगत्पति प्रभु को भुला देते हैं। ससार मे ऐसे फँसे कि, न आपकी वेदवाणी जो मेरी प्यारी वाणी है उसमे रुचि रही और न आपकी वेदवेत्ता महात्माओ के सत्सग मे ही श्रद्धा रही। इसलिए अब भी आपको मेरा उपदेश है, आप लोग सत्सग करे। वेदवाणी सुनने-पढने से ही प्रेम से मेरी भक्ति करते, लोक परलोक मे कल्याण के भागी बनें।

: ५१ :

देव सवितः प्रसुव यज्ञ प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ ९।१॥

पदार्थ—(देव) हे प्रकाशमय (सवितः) सब जगत् के उत्पादक सबके प्रेरक परमात्मन्! (यज्ञम्) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को (प्रसुव) अच्छे प्रकार चलाओ। (यज्ञपतिम्) यज्ञ के रक्षक यजमान को (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (प्रसुव) आगे बढाओ (दिव्य) विलक्षण अलौकिक आश्चर्यस्वरूप (गन्धर्व) वेदविद्या के आधार

(केतपू) बुद्धि के पवित्र करने वाले परमेश्वर (न केतम्) हमारी बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करें (वाच पति) वेदविद्या और वेदवाणी के पालक स्वामी प्रभु (न वाचम) हमारी विद्या और वाणी को (स्वदतु) मधुर करे।

भावार्थ—हे सदा प्रकाशस्वरूप, सब जगत् के स्रष्टा जगदीश! आप कृपा करके यज्ञादि उत्तम कर्मों को सारे ससार मे फैला दो। यज्ञ आदि कर्मों के करने वालो के ऐश्वर्य को बढाओ, जिसको देख कर यज्ञ आदि कर्मों के करने की रुचि सबके मन मे उत्पन्न हो। आप आश्चर्यस्वरूप अपने प्रेमी जनो की बुद्धियो को शुद्ध करने वाले हैं, कृपया हमारी बुद्धि को भी शुद्ध करें। आप वेदो के और वाणी के पालक हैं, हमारी वाणी को सत्य भाषण करने वाली और मधुर बोलने वाली बनावें।

: ५२ :

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्य ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमॅरयिं दा ॥३।२५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश! (त्वम् नः) आप हमारे (अन्तम) अत्यन्त समीप स्थित हैं, (उत वरूथ्य) और वरणीय और सेवनीय आप ही हैं। (त्राता) आप हमारे रक्षक (शिव भव) सुखदायक होओ (वसु) सब मे वास करने वाले (अग्नि) सबके अग्रणीय नेता (वसुश्रवा) धन ऐश्वर्य के स्वामी होने से महा-यशस्वी (अच्छा नक्षि) हमे भली प्रकार प्राप्त होओ (द्युमत्तमम्) हमे उज्ज्वल (रयिम् दा) धन विभूति प्रदान करे।

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप सर्वत्र व्यापक होने से सबके अति निकट हुए, सबके गुण, कर्म स्वभाव को जान रहे हो। किसी की कोई बात भी आप से छिपी नही। इसलिए हम पर दया करो कि हम आपको सर्वान्तर्यामी जानकर सब दुर्गुण दुर्व्यसन और सब

प्रकार के पापो से रहित हुए आपके सच्चे प्रेमी भक्त बनें। भगवन्! आप ही भजनीय, सेवनीय, सबके नेता सब में वास करने वाले, सारी विभूति के स्वामी, अपने प्यारे पुत्रों को उत्तम से उत्तम धन के दाता और उनके कल्याण के कर्ता हो। भगवन्! हमे भी उत्तम से उत्तम धन प्रदान करें और हमे अच्छे प्रकार से प्राप्त होकर, लोक परलोक मे हमारा कल्याण करें। हम आपकी ही शरण मे आये हैं।

: ५३ :

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३।३८॥

पदार्थ—(विश्ववेदसम्) सब ज्ञान और धनो के स्वामी (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वसुवित्तमम्) सब से अधिक धन ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले (आ अगन्म) प्राप्त हो। हे (अग्ने) हमारे सब के नेता आप (सम्राट्) सब से अधिक प्रकाशमान (द्युमन्म्) धन और अन्न को (सह) समस्त बल को (अभि अभि) सब ओर से (आयच्छस्व) हमे प्रदान करें।

भावार्थ—हे सब से अधिक ज्ञान, बल और धन के स्वामी परमात्मन्! हम आपकी शरण को प्राप्त होते हैं, आप कृपा करके सबको ज्ञान, धन और बल प्रदान करो। भगवन्! आप सच्चे सम्राट् हो, आप जैसा समर्थ, न्यायकारी, महाज्ञानी, महाबली दूसरा कौन हो सकता है। हम आप महाराजाधिराज की प्रजा हैं, हमे जो कुछ चाहिये आप से ही मागेंगे, आप जैसा दयालु दाता न कोई हुआ, न है और न होगा। आपने अनन्त पदार्थ हमे दिये, दे रहे हो और देते रहोगे, आपके अन्न आदि और ऐश्वर्य हमारे लिये ही तो हैं, क्योंकि आप तो सदा आनन्दस्वरूप हो आपको धन की आवश्यकता ही नही। जितने लोक लोकान्तर आपने बनाये हैं, ये सब आपने अपने प्यारे पुत्रो के लिये ही बनाये हैं, अपने लिये नहीं।

: ५४ :

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जन ।
जीवं व्रातᳪसचेमहि ॥ ३।५५॥

पदार्थ—हे (पितर) पालन करने वाले पूज्य महापुरुषो! (दैव्य जन·) देव विद्वानों मे सुशिक्षित, परमात्मा का अनन्य भक्त और योगीराज महात्मा पुरुष (न) हमे (पुन) बार-बार (मन ददातु) ज्ञान का प्रदान करे, हम लोग (जीवम्) जीवन और (व्रातम्) उत्तम कर्मों को (सचेमहि) प्राप्त हो।

भावार्थ—हे हमारे पूज्य पालन-पोषन करने वाले महापुरुषो! परमात्मा की दया और आप महापुरुषो की आशीर्वाद से हमे ऐसा योगीराज वेदवेत्ता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ सन्त महात्मा, ससार के कामी क्रोधी पुरुषों से भिन्न, शान्तात्मा महापुरुष प्राप्त हो, जिसके यथार्थ उपदेशो से, हम अपने जीवन और आचरणों को सुधारते हुए, परमेश्वर के अनन्य भक्त बनकर अपने जन्म को सफल करें।

: ५५ :

वयᳪसोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ३।५६॥

पदार्थ—हे (सोम) सब के प्रेरक परमात्मन्! (वयम्) हम (तव व्रते) आपके बनाये नियम के अनुसार चल कर और (तनूषु) अपने शरीर और आत्माओ मे (तव) आपके (मन) ज्ञान को (बिभ्रत.) धारण करते हुए (प्रजावन्त) पुत्र पौत्रादि से युक्त हो कर (सचेमहि) सुख को प्राप्त करें।

भावार्थ—हे सोम सत्कर्मों मे प्रेरक जगदीश्वर! आप के बनाये वैदिक नियमो के अनुसार अपना जीवन बनाकर, अपने आत्मा मे आपके ज्ञान को धारण करते हुए, अपने सम्बन्धिवर्ग सहित इस लोक और परलोक मे आप की कृपा से हम सदा सुखी रहें।

: ५६ :

आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ३।५४॥

पदार्थ—(न) हमे (पुन) बार-बार (क्रत्वे) उत्तम विद्या और श्रेष्ठ कर्म (दक्षाय) बल के लिये (ज्योक् च) चिर काल तक (जीवसे) जीवन धारण करने के लिये और (सूर्यम्) सब चराचर के आत्मा, सब के प्रेरक सूर्य के समान ज्योतिर्मय परमेश्वर के (दृशे) ज्ञान के लिये (मन) मनन वा ज्ञान शक्ति (आ एतु) प्राप्त हो ।

भावार्थ—हे ज्ञानमय परमात्मन् ! आप की कृपा से, हम उत्तम वैदिक कर्म, वेद विद्या और उत्तम बल प्राप्ति पूर्वक, बहुत काल तक जीवन धारण करते हुए, आप ज्योतिर्मय परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त हो । भगवन् ! आप के यथार्थ स्वरूप को जानकर, आप की वेद-विद्या का ही सारे ससार मे प्रचार करे, ऐसी हमारी प्रार्थना को कृपा कर स्वीकार करे ।

: ५७ :

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
तेषाᳬसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १६।५६॥

पदार्थ—(ये) जो (भूतानाम्) प्राणिमात्र के (अधिपतय) अधिपति पालक, रक्षक स्वामी (विशिखास.) शिखा रहित सन्यासी और (कपर्दिन) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग है, (तेषाम्) उन के हितार्थ (सहस्रयोजने) हज़ार योजन के देश मे हम लोग सर्वदा भ्रमण करते है और (धन्वानि) अविद्यादि दोषो के निवारणार्थ विद्यादि शास्त्रो का वे लोग (अवतन्मसि) विस्तार करते हैं ।

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि, जो वेदो के विद्वान्, सब के शुभचिन्तक, परमात्मा के सच्चे प्रेमी, महात्मा, मुण्डित सन्यासी और ऐसे ही जटिल ब्रह्मचारी लोग है, उन की प्रेम पूर्वक

सेवा करें और उनसे ही वेदो के अर्थ और भाव जान कर, परमात्मा के सच्चे प्रेमी भक्त बने। महानुभाव महात्माओ की सेवा और उनसे वेद उपदेश लेने के लिए कही दूर भी जाना पडे तब भी कष्ट सहन करके उनके पास जाकर, उनकी सेवा करते हुए उपदेश धारण कर अपने जन्म को सफल करे।

: ५८ :

कया त्वं न ऊत्याऽभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर॥ ३६।७॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सब सुख और ऐश्वर्य के वर्षक परमात्मन्! (त्वम्) आप (कया) किस अचिन्तनीय सुखदायक (ऊत्या) रक्षण आदि क्रिया से (न) हम को (अभि प्र मन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्य) आप की प्रशसा करने वाले मनुष्यो के लिए सुख को (आभर) सब प्रकार से प्राप्त कराते हो?

भावार्थ—हे परम दयालु परमात्मन्! जिस बुद्धि और युक्ति से आप धर्मात्मा ज्ञानी पुरुषो को सुखी करते और उनकी सब ओर से रक्षा करते है, उस बुद्धि और युक्ति को हम को भी जताइये।

: ५९ :

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता १४।२०॥

भावार्थ—(अग्नि) यह प्रसिद्ध अग्नि (देवता) दिव्य गुण वाला (वात) पवन (देवता) शुद्ध गुण युक्ति (सूर्य) सूर्य (देवता) अच्छे गुणो वाला (चन्द्रमा. देवता) चन्द्रमा शुद्ध गुण युक्त

(वसव) पृथ्वी आदि आठ वसु (देवता) दिव्य गुण वाले (रुद्रा.) प्राण आदि ११ रुद्र (देवता) शुद्ध गुण वाले (आदित्या) बारह महीने (देवता) दिव्य गुणयुक्त (मरुत) मनन कर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे देवा) अच्छे गुण वाले सब विद्वान् मनुष्य, वा दिव्य पदार्थ (देवता) देव संज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) बडे ब्रह्माण्ड वा वेदवाणी का रक्षक परमात्मा (देवता) सब दिव्य गुण युक्त देवो का भी देव है (इन्द्र) बिजुली वा उत्तम धन (देवता) दिव्य गुण युक्त (वरुण देवता) जल वा श्रेष्ठ गुणो वाला पदार्थ उत्तम है ।

भावार्थ—इस ससार मे जो अच्छे गुणो वाले पदार्थ है, वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं, और जो सब देवो का देव होने से महादेव, सब का धारक, रचक और रक्षक, सबकी व्यवस्था और प्रलय करने द्वारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है, उस सबके अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें, उसी की ही सबको प्रेम से उपासना करनी चाहिए।

: ६० :

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां २ आविवेश ॥ १७।९१॥

पदार्थ—(चत्वारि शृङ्गा) चार दिशाएँ सींगवत् (त्रय अस्य) तीन इसके (पाद) चरण हैं तीन काल अथवा तीन भुवन चरण के समान हैं। (द्वे शीर्षे) पृथ्वी और द्युलोक दोनो शिर है। (अस्य सप्त हस्तास) महत्, अहकार और पाच भूत ये सात इस भगवान् के हाथ हैं। (त्रिधा बद्धः) सत् चित् आनन्द इन तीन स्वरूपो मे बद्ध है, वह (वृषभ) सब सुखो की वर्षा करने

वाला और सारे जगत् को उठाने वाला (रोरवीति) वेद ज्ञान का उपदेश कर रहा है, वह (मह देव.) महादेव (मर्त्यान् आववेश) मरण धर्मा मनुष्यो और विनश्वर सब पदार्थों मे भी व्यापक है।

भावार्थ—इस मन्त्र मे अलङ्कार से परमात्मा का कथन है। जैसे कोई ऐसा बैल हो जिसके चार सींग, तीन पांव, दो सिर, सात हाथ, तीन प्रकार से बधा हुआ बार बार बोलता हो, ऐसे बैल की उपमा से प्रभु के स्वरूप का निरूपण किया है। चार दिशाएँ सींगवत् तीन काल वा तीन भुवन पादवत्, पृथिवी और द्युलोक दोनो शिरवत्, महतत्त्व अहङ्कार, पाच भूत ये सात प्रभु के हाथवत् हैं, सत्, चित्, आनन्द (इन तीन) स्वरूप से विराजमान, सब सुखो की वर्षा करने वाला, वेद ज्ञान का सदा उपदेश कर रहा है। वह महादेव, मरणधर्मा मनुष्यो और सब नश्वर पदार्थों मे व्यापक है, ऐसे प्रभु को जानना चाहिये।

६१ :

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १४।१७॥

पदार्थ—हे दयामय जगदीश्वर ! (मे आयु पाहि) मेरे आयु की रक्षा करो। (मे प्राणम् पाहि) मेरे प्राण की रक्षा करो। (मे व्यानम् पाहि) मेरे व्यान की रक्षा करो। (मे चक्षु पाहि) मेरे नेत्रो की रक्षा करो। (मे श्रोत्रम् पाहि) मेरे कानो की रक्षा करो। (मे वाचम् पिन्व) मेरी वाणी को अच्छी शिक्षा से युक्त करो। (मे मन जिन्व) मेरे मन को प्रसन्न करो। (मे आत्मानम् पाहि) मेरे चेतन आत्मा की और मेरे इस भौतिक देह की रक्षा करो। (मे ज्योति यच्छ) मुझे आत्मा की और अपनी यथार्थ ज्ञानरूपी ज्योति. प्रदान करें।

भावार्थ—परमात्मन् ! आप कृपा करके हमारे आयु, प्राण, अपान, व्यान, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन, देह और इस चेतन जीवात्मा की रक्षा करते हुए मुझे यथार्थ ब्रह्मज्ञान प्रदान करें, जिससे हम आपके दिये मनुष्य जन्म को सफल कर सकें। भगवन् ! आयु, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन आदि की रक्षा और इन की नीरोगता के बिना, हमारा जीवन ही दुःखमय हो जायगा, इसलिए आप से इनकी रक्षा और प्रसन्नता की भी हम प्रार्थना करते हैं कृपा करके इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करें।

: ६२ :

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳसर्वतःस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ३१।१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पुरुष) पूर्ण परमेश्वर (सहस्रशीर्षा) जिसमे हमारे सब प्राणियो के सहस्र अर्थात् अनन्त शिर (सहस्राक्ष) जिसमे हजारो नेत्र (सहस्रपात्) हजारो पग है (स भूमिम्) वह समग्र भूमि को (सर्वत) सब प्रकार से (स्पृत्वा) व्याप्त होके (दश अगुलम्) पाच स्थूल भूत, पाँच सूक्ष्म भूत यह दश जिसके अवयव है ऐसे सब जगत् को (अति अतिष्ठत) उलाघ कर स्थित होता है अर्थात् सब से पृथक् भी स्थित होता है।

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! जिस पूर्ण परमात्मा मे, हम मनुष्य आदि सब प्राणियो के, अनन्त शिर, नेत्र, पग आदि अवयव है, जो पृथिवी आदि से उपलक्षित पाच स्थूल और पाच सूक्ष्म भूतो से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर, जहा जगत् नही वहां भी पूर्ण हो रहा है। उस जगत् कर्ता परिपूर्ण जगत्पति परमात्मा, चेतनदेव की उपासना करनी चाहिए। किसी जड पदार्थ को परमेश्वर मानना और उस जड पदार्थ को ही भोग लगाना, उसी को प्रणाम करना, पखा व चामर फेरना महामूर्खता है। परमेश्वर ने ही सब जगत् के पदार्थों को बनाया, ईश्वर रचित उन

पदार्थों मे ईश्वरबुद्धि करके, उनको भोग लगाना नमस्कारादि करना, महामूर्खता नही तो और क्या है ?

: ६३ :

पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ३१.२॥

पदार्थ—(पुरुष एव) सब जगत् मे पूर्ण व्यापक ईश्वर ही (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य मे उत्पन्न होगा और है (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अति रोहति) अत्यन्त बढता है, (इदम् सर्वम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप समस्त जगत् का और (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्ष सुख वा कारण का भी (ईशान) स्वामी परमात्मा है, वही सब कुछ रचता है ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब २ इस जगत् की रचना हुई तब २ उस समर्थ प्रभु ने ही इस जगत् को रचा, वही सदा इसका पालन-पोषण और धारण करता रहा, अब कर रहा है, आगे भविष्य मे भी इसकी रचना पालन-पोषण धारण करना आदि काम करता रहेगा । और मुक्ति सुख भी उसी जगन्नियन्ता परमात्मा के अधीन है । वही प्रभु, अपने प्यारे, अपने जीवन को पवित्र वेदानुसार पवित्र बनाने वाले ज्ञानी भक्तो को मुक्ति देकर सदा सुखी रखता है ।

६४ :

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३१।३॥

पदार्थ—(एतावान्) तीन काल मे होने वाला जितना ससार है, यह सब (अस्य) इस जगदीश ही की (महिमा) सामर्थ्य का स्वरूप है (च) और (पूरुष) सारे जगत् मे पूर्ण परमेश्वर (अत)

इस जगत् से (ज्यायान्) बहुत ही बड़ा है (विश्वा भूतानि) प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब भूत (अस्य पाद) इस भगवान् का एक पाद है इस एक अंश रूप पाद मे सारा ससार वर्तमान है और (त्रिपाद्) तीन अंशो वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप (दिवि) प्रकाशस्वरूप अपने आप मे (अमृतम्) नित्य अविनाशी रूप से वर्तमान है ।

भावार्थ—यह भूत भौतिक सब ससार इस जगत्पति की महिमा है । उस प्रभु ने ही सारे जगत् को अपनी शक्ति से रचा और वही इसका पालन पोषण कर रहा है । इस जगत् से वह बहुत ही बड़ा है, सारे चराचर जगत् के सब भूत इस प्रभु के एक अंश में पड़े हैं । उस जगदीश के तीन पाद स्व स्वरूप मे वर्तमान हैं । वही अविनाशी प्रकाशस्वरूप और सदा मुक्तस्वरूप है । कभी बन्धन मे नही आता, और अपने भक्तों के सकल बन्धनो को काट कर उनको मुक्ति प्रदान करता है ।

: ६५ :

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोऽस्येहाभवत्पुन. ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ३।१।४॥

पदार्थ—पूर्व उक्त (त्रिपात् पुरुष) तीन अंशो वाला पुरुष (ऊर्ध्व) सबसे उत्तम ससार से पृथक् सदा मुक्त स्वरूप (उत् ऐत्) उदय को प्राप्त हो रहा है । (अस्य) इस पुरुष का (पाद) एक भाग (इह) इस जगत् मे (पुन) बारबार उत्पत्ति प्रलय के चक्र मे (अभवत्) प्राप्त होता है । (तत) इसके अनन्तर (साशनानशने अभि) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड इन दोनो प्रकार के चराचर लोकों के प्रति (विष्वङ्) सब प्रकार से व्याप्त होकर (वि अक्रामत्) विशेष कर उनको उत्पन्न करता है ।

भावार्थ—परमात्मा कार्य जगत् से पृथक्, तीन अंशो से प्रकाशित हुआ, एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को बार-बार

उत्पन्न करता है, पश्चात् उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है। इन मन्त्रों में परमात्मा के जो चार पाद वर्णन किये हैं, यह एक उपदेश करने का ढग है। उस निराकार प्रभु के वास्तव में न कोई हस्त है न पाद। पुन इस कथन का कि, वही प्रभु एक अंश से जगत् को उत्पन्न करता है, तीन अंशों मे पृथक् रहता है, भाव यह है कि सारे जगत् से प्रभु बहुत बड़ा है, जगत् बहुत ही अल्प है। अनन्त ब्रह्माण्डों को रचता हुआ भी इन से पृथक् है और बहुत बड़ा है।

: ६६ :

ततो विरडाजायत विराजो अधि पूरुष ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर ॥ ३१।५॥

पदार्थ—(तत) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) सूर्य चन्द्रादि विविध लोकों से प्रकाशवान ब्रह्माण्ड रूप ससार (अजायत) उत्पन्न हुआ। (विराज अधि) विराट् ससार के भी ऊपर अधिष्ठाता (पूरुष) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा होता है, (अथो) इसके अनन्तर (स) वह पुरुष (पुर·) सब से प्रथम विद्यमान रह कर (जात) इस जगत् मे प्रसिद्ध हुआ (अति अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है। (पश्चात् भूमिम्) पीछे पृथिवी और शरीरो को उत्पन्न करता है।

भावार्थ—परमात्मा से ही सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है। वह प्रभु उस जगत् से पृथक्, उसमें व्याप्त होकर भी, उसके दोषो से लिप्त न होके इस सब का अधिष्ठाता है। ऐसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सदा आनन्द स्वरूप जगदीश की ही उपासना करनी चाहिए।

: ६७ :

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ३१।६॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) सर्वपूज्य (सर्वहुत) सब को नेत्र, श्रोत्र, वाक्, हस्त, पाद, प्राणादि सब कुछ देने वाले परमेश्वर से (पृषद् आज्यम्) दधि, दुग्ध घृत आदि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुए। (ये) जो (आरण्या) वन के सिंह शूकर आदि (च) और (ग्राम्या) ग्राम मे होने वाले गाय भैंस आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान वेग आदि गुणो वाले सब (पशून्) पशुओ को (चक्र) उत्पन्न करता है।

भावार्थ—सब के पूजने योग्य और नेत्र, श्रोत्र, प्राणादि अमूल्य अनन्त पदार्थों के दाता परमात्मा ने, दधि, दुग्ध, घृत आदि भोज्य पदार्थ हमारे लिए उत्पन्न किए है। उसी जगत्पति ने वन मे रहने वाले, सिंह, शूकर, शृगाल, मृगादि भगने वाले, पशु बनाए और उसी, प्रभु ने नगरो मे रहने वाले, गौ, घोडा, ऊँट, भैंस बकरी, भेड आदि उपकारी पशु बनाये, जो सदा हमारी सेवा कर रहे हैं। दयामय प्रभो! आपको, जो पुरुष, स्मरण नही करते, आपकी वैदिक आज्ञा को न मानकर, ससार के भोगो मे फँसे रहते हैं, ऐसे कृतघ्न दुष्ट पापियो को जितने भी दुःख हो थोडे हैं।

६८.

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ३१ ७॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस पूर्ण और (यज्ञात्) अत्यन्त पूजनीय (सर्वहुत) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते हैं, उसी परमात्मा से (ऋच) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दासि) अथर्व-वेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता (तस्मात्) उस प्रभु से ही (यजु) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है।

भावार्थ—उस परम कृपालु जगत्पिता ने, हमारे इस लोक और परलोक के अनन्त सुखो की प्राप्ति के लिए चार वेद बनाये,

उन वेदो को पढ सुन के हम, लोक परलोक के सब सुखो को प्राप्त हो सकते हैं। परमात्मा के ज्ञान और उपासना के बिना मुक्ति सुख नही प्राप्त हो सकता और उसका ज्ञान और उपासना बिना वेदो के पढे सुने नही हो सकता। महर्षि लोगो का वचन है "नावेदविन्मनुते त बृहन्तम्" वेदो को न जानने वाला कोई पुरुष भी उस व्यापक प्रभु को नही जान सकता। ऐसे लोक परलोक के सुख की प्राप्ति के लिए, हम सबको वेदो का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना आवश्यक है। बिना वेदो के न कोई ईश्वर का ज्ञानी हो सकता है न ही भक्त। जिसका ज्ञान नही हुआ उसकी भक्ति कैसे ?

: ६६ :

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावय ॥ ३१।८॥

पदार्थ—(अश्वा) घोडे (ये के च) और जो कोई गधा, ऊँट आदि (उभयादत) दोनो ओर दातो वाले हैं (तस्मात अजायन्त) उस परमेश्वर से उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी ईश्वर से (गाव) गौए भी (ह) निश्चय करके (जज्ञिरे) उत्पन्न हुई (तस्मात्) उससे (अजाऽवय) बकरी, भेड (जाता) उत्पन्न हुई हैं।

भावार्थ—उस जगत् रचयिता परमात्मा ने अपनी शक्ति से घोडे, गधे, ऊँट आदि नीचे ऊपर दोनो ओर दातो वाले पशु उत्पन्न किये, एक ओर दातो वाले बैल, भैंस आदि प्राणी उत्पन्न किये। उसी प्रभु ने बकरी भेड आदि प्राणी उत्पन्न किये है। इस वेद मन्त्र मे जो घोडा, गाय, बकरी और भेड इतने थोडे प्राणियो का वर्णन है, वह ससार के लाखो प्राणियो का उपलक्षण है, अर्थात् वह सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता प्रभु, अपनी अचिन्त्य शक्ति से लाखो प्रकार के प्राणियो के शरीरो को सृष्टि के आरम्भ मे उत्पन्न और प्रलय काल में सबका सहार भी करता है।

: ७० :

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुष जातमग्रत ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ३१।९॥

पदार्थ—(ये देवा) जो विद्वान् (च) और (साध्या) योगाभ्यासादि साधन करते हुए (ऋषय) मन्त्रो के अर्थ जानने वाले ज्ञानी लोग हैं, जिस (अग्रत) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ मे (प्र औक्षन्) सीचते अर्थात् धारण करते है, वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से (तम् अयजन्त) उसी का पूजन करते है ।

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यो को, चराचर ससार के कर्ता-धर्ता जगदीश्वर का, शम, दम, विवेक, वैराग्य, धारणा, ध्यान आदि साधनो से पवित्र हृदय रूप मन्दिर मे, सदा पूजन करना चाहिए। बाहिर के पूजने के ढग, जो बहिर्मुखता के कारण है, उनसे सदा विद्वान् पुरुषो को आप बचकर, अज्ञानी पुरुषो को बचाना चाहिए। जो विद्वान् कहलाकर आप बाहिर के पाखण्ड और दम्भ मे फँसे और दूसरो को उन्ही मे फँसाते हैं, वे विद्वान् ही नही महामूर्ख और स्वार्थी हैं। ऐसे दम्भी, कपटी पुरुषो से परे रहने मे ही कल्याण है ।

: ७१ :

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ३१।१०॥

पदार्थ—(यत्) जिस (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को विद्वान् पुरुष (वि अदधु) विविध प्रकारो से धारण करते हैं उसकी (कतिधा) कितने प्रकार से (वि अकल्पयन्) कल्पना करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इस ईश्वर की सृष्टि मे मुख के समान श्रेष्ठ कौन (आसीत्)

है (बाहू किम्) भुजबल का धारण करने वाला कौन (ऊरू) जघें (किम्) कौन हैं (पादौ) पाव के समान (किम्) कौन (उच्येते) कहा जाता है ।

भावार्थ—इस जगत् मे ईश्वर का सामर्थ्य असख्य है, उस समुदाय मे उत्तम अग मुख अर्थात् मुख्य गुणो से इस ससार मे क्या उत्पन्न हुआ है ? बाहूबल, वीर्य्य, शूरता और युद्ध-विद्या आदि गुणो से कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है ? व्यापार, कृषि आदि मध्यम गुणो से किसको उत्पत्ति हुई है ? मूर्खता आदि नीच गुणो से किसकी उत्पत्ति हुई है ? इन चार प्रश्नो के उत्तर आगे के मन्त्र मे दिए है ।

: ७२ :

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृत ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪशूद्रो अजायत ॥३१।११॥

पदार्थ—(अस्य) इस प्रभु की सृष्टि मे (ब्राह्मण) वेदवेत्ता ईश्वर का ज्ञाता वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है । (बाहू) भुजाओ के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्य) क्षत्रिय (कृत) बनाया (यत्) जो (ऊरू) जाघो के तुल्य वेगादि काम करने वाला (तद्) वह (अस्य) इसका (वैश्य) सर्वत्र प्रवेश करने हारा वैश्य है । (पद्भ्याम्) सेवा के योग्य और अभिमान रहित होने से (शूद्र) मूर्खतादि गुण युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ ।

भावार्थ—जो मनुष्य वेदविद्या और शमदमादि उत्तम गुणो मे मुख के तुल्य उत्तम, ब्रह्म के ज्ञाना हो वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करने हारे हो वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या मे प्रवीण हो वे वैश्य और जो सेवा मे प्रवीण, विद्या हीन, पगो के ममान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त है, वे शूद्र मानने चाहिये । ऐसी वर्णव्यवस्था गुण कर्म अनुसार ही वेद कथित है । जन्म से न कोई ब्राह्मण है, न ही कोई क्षत्रियादि । सब वेदा-

नुयायी मनुष्यो को चाहिए कि ऐसी व्यवस्था के अनुसार आप चलें और औरो को चलावें।

: ७३ :

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो॰ सूर्य्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥ ३१।१२॥

पदार्थ—(चन्द्रमा) चन्द्र (मनस जात) मनरूप से कल्पना किया गया है। जैसे हमारे शरीर मे मन है, ऐसे ही विराट् शरीर मे चन्द्र है। (सूर्य चक्षो अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया, मानो उसका नेत्र सूर्य है, (श्रोत्रात् वायु च प्राण च) श्रोत से वायु और प्राण प्रकट किए गए, मानो श्रोत्र वायु और प्राण है। (मुखात) मुख से (अग्नि अजायत) अग्नि को प्रकट किया, मानो अग्नि विराट् का मुख है।

भावार्थ—सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने प्रकृति रूप उपादान कारण से, इस ब्रह्माण्ड रूप विराट् शरीर को उत्पन्न किया। उसमे चन्द्रलोक मन स्थानी जानना चाहिए। सूर्यलोक नेत्ररूप, वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य, अग्नि मुख के तुल्य, ओषधि और वनस्पतिया रोमो के तुल्य नदिया नाडियो के तुल्य और पर्वतादि हाडो के तुल्य हैं, ऐसा जानना चाहिए।

: ७४ :

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष꣡शीर्ष्णो द्यो समवर्त्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन्॥ ३१।१३॥

पदार्थ—(नाभ्या) नाभि भाग से (अन्तरिक्षम्) लोको के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ। (द्यौ) प्रकाश युक्त लोक (शीर्ष्ण) सिर भाग से (सम् अवर्तत) कल्पित हुआ (पद्भ्याम् भूमि) पाव से पृथिवी, (दिश श्रोत्रात्) श्रोत्र से दिशाएँ (तथा लोकान्) ऐसे ही सब लोको को (अकल्पयन्) कल्पित किया गया है। अर्थात् उस

विराट् की अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्युलोक है, भूमि पैर हैं, कान दिशा तथा लोक हैं।

भावार्थ—इस ससार मे जो २ कार्यरूप पदार्थ हैं, वे सब, विराट् का ही अवयव रूप जानना चाहिए। ऐसे विराट् को भी जब परमात्मा ने बनाया तब यह सिद्ध हो गया कि, सारी भूमि और द्युलोकादि सब लोक, उनमे रहने वाले सव प्राणी, उस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने ही बनाये है। ये सब लोक न तो आप ही उत्पन्न हुए न इनका कोई और ही रचक है क्योंकि प्रकृति आप जड है, जड से अपने आप कुछ उत्पन्न हो नही सकता। जीव अल्पज्ञ परतन्त्र और बहुत ही थोडी शक्तिवाला है। सूर्य, चन्द्र आदि लोक लोकान्तरो का जीव द्वारा बनना असभव है।

: ७५ ·

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म. शरद्धवि ॥ ३१।१४॥

पदार्थ—(यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य वा जानने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवा) विद्वान् लोग (यज्ञम्) उपासना रूप ज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) सम्पादन करते है, तब (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्त) वर्ष के आरम्भ काल वसन्त ऋतु के समान, सौम्यभाग दिन का पूर्वाह्न काल ही (आज्यम्) घृत (ग्रीष्म) ऋतु मध्याह्न काल (इध्म) ईंधन प्रकाशक और (शरत्) शरद् ऋतु रात्रि (हवि) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है।

भावार्थ—जब वाह्य सामग्री के अभाव मे सन्यासी विद्वान् महात्मा लोग, ससार कर्ता ईश्वर की उपासना रूप मानस ज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें, तव पूर्वाह्लादि काल ही साधनरूप से कल्पना करने चाहिएँ।

: ७६ :

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिध कृताः ।
देवा यद्यज्ञ तन्वाना अबध्नन्पुरुष पशुम् ॥ ३१।१५॥

पदार्थ— (यत्) जिस (यज्ञम्) मानस ज्ञान यज्ञ को (तन्वान) विस्तृत करते हुए (देवा) विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को हृदय मे (अबध्नन्) ध्यानयोग रूप रस्सी से बाँधते हैं (अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात (परिधय) परिधि अर्थात् धारण सामर्थ्य (आसन्) हैं, (त्रि सप्त) इक्कीस २१ (समिध) सामग्री रूप (कृता) विधान किये गये हैं ।

भावार्थ—विद्वान् लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को करते हुए, उससे पूर्ण परमेश्वर को जान कर कृतार्थ होते हैं । इस यज्ञ की इक्कीस समिधा रूप सामग्री ऐसी हैं—मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहकार, पाच सूक्ष्म भूत, पाच स्थूल भूत, पाच ज्ञान इन्द्रिय और सत्त्व, रजस्, तमस्, यह तीन गुण २१ समिधा हैं । गायत्री आदि सात छन्द परिधि हैं, अर्थात् चारो ओर से सूत के सात लपटो के समान है ।

: ७७ :

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह्नाक महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा ॥
३१।१६॥

पदार्थ—जो (देवा) विद्वान् लोग (यज्ञेन) ज्ञान यज्ञ से (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा की (अयजन्त) भक्ति से पूजा करते हैं (तानि) वह पूजादि (धर्माणि) धारणा रूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं, (ते) वे विद्वान् (महिमान) महत्त्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख मे (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्या) साधनो को किये हुए (देवा) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं उस (नाकम्)

सब दुखो से रहित मुक्ति सुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि विवेक वैराग, शम दमादि साधनो से युक्त हो कर उस दयामय परमात्मा की उपासना करें। इस ससार मे अनादि काल से, इस भक्ति उपासना रूप धर्म से जैसे पहले मुक्त हुए विद्वान्, सदा आनन्द को प्राप्त हो रहे हैं, ऐसे ही हम सब लोग भी, उस जगत्पति जगदीश की श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से उपासना करके, सब दुखो से रहित सदा आनन्द धाम मुक्ति को प्राप्त होवें।

: ७८ :

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ ३१।१७॥

पदार्थ—(अद्भ्य) जलो से और (पृथिव्यै) पृथिवी से (विश्वकर्मण) समस्त ससार के कर्ता जगत्पति के (रसात्) प्रेरक बल से (सभृत) सम्यक् पुष्ट हुआ (अग्रे) सब से प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ (त्वष्टा) वह विधाता ही (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि मे (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वत्ता को (एति) प्राप्त होता और मनुष्यो को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सम्पूर्ण ससार का जनक जो परमात्मा, प्रकृति और उसके कार्य सूक्ष्म तथा स्थूल भूतो से, सब जगत् को और उसके शरीरो के रूपो को बनाता है उस ईश्वर का ज्ञान और उसकी वैदिक आज्ञा का पालन ही देवत्व है।

: ७९ :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस परस्तात्। तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।३१।१८।

पदार्थ— जिज्ञासु पुरुष को विद्वान् कहता है कि हे जिज्ञासो! (अहम्) मैं जिस (एतम्) पूर्वोक्त (महान्तम्) बडे २ गुणो से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (तमस) अज्ञान, अन्धकार से (परस्तात्) पृथक् वर्तमान (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हू (तम् एव) उसी को (विदित्वा) जान कर आप (मृत्युम्) दु खप्रद मरण को (अति एति) उल्लघन कर जाते हो किन्तु (अन्य) इससे भिन्न (पन्था) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिए (न विद्यते) विद्यमान नही है।

भावार्थ—मुमुक्षु पुरुष को कोई महानुभाव विद्वान् उपदेश करता है कि मुमुक्षो! मैं उस परमात्मा को जानता हू। जो सर्वज्ञतादि गुणयुक्त-सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप, अज्ञान अन्धकार से परे वर्तमान, सर्वत्र पूर्ण है। इसी को जानकर बारबार जन्म मरण से रहित हुआ मुक्तिधाम को प्राप्त होकर, सदा आनन्द मे रहता है। इस प्रभु के ज्ञान और भक्ति के बिना, मुक्तिधाम के लिये दूसरा कोई मार्ग नही है। इसलिये बहिर्मुखता के हेतु घण्टे घडियाल बजाना, अवैदिक चिह्न तिलक छाप आदि लगाना, कान फाडकर उनमे मुद्रा धारण करना कराना, सब व्यर्थ और वेद विरुद्ध है। यह सब स्वार्थी, नास्तिक, वेदविरोधियो के चलाये हुए हैं। इन पाखण्डो से मुक्ति की आशा करनी भी महामूर्खता है।

· ८० ·

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ ३१।१९॥

पदार्थ—(अजायमान) जो उत्पन्न न होने वाला (प्रजापति) प्रजा पालक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्त) सब के हृदय मे (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारो से

(विजायते) विशेष प्रकट होता है (तस्य योनिम्) उस प्रजापति के स्वरूप को (धीरा) ध्यानशील महापुरुष (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते है (तस्मिन्) उसमे (ह) प्रसिद्ध (विश्वा भुवनानि) सब लोक-लोकान्तर (तस्थु) स्थित है ।

भावार्थ—सर्वपालक परमेश्वर, आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमे प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है अर्थात् सर्वत्र विराजमान है । उस जगदीश्वर के स्वरूप को विवेकी महात्मा लोग ही जानते हैं । उस सर्वाधार परमात्मा के आश्रित ही सब लोक स्थित हो रहे हैं । ऐसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, अन्तर्यामी प्रभु को जानकर ही हम सुखी हो सकते हैं ।

: ८१ :

यो देवेभ्य आतपति यो देवाना पुरोहित ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।। ३१।२०

पदार्थ—(य) जो (देवेभ्य) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि भूतो के उत्पन्न करने के लिये आप परमेश्वर (आतपति) सब प्रकार से विचार करता है और (य) जो (देवानाम्) पञ्चभूत और सब लोको से भी (पुर हित) सब से पूर्व विद्यमान रहा और (य) जो (देवेभ्य) प्रकाश और तेजोमय सूर्यादिको से भी (पूर्व) प्रथम (जात) विद्यमान था (रुचाय) स्वप्रकाशस्वरूप (ब्राह्मये) परमात्मा को (नम) हमारा बारम्बार प्रेम से नमस्कार है ।

भावार्थ—जो जगत्पिता परमात्मा भूत भौतिक ससार की उत्पत्ति से प्रथम, विचार रूपी तप करता है । जैसे घटका निमित्त कारण कुलाल घट की उत्पत्ति से प्रथम जिस प्रकार का घट बनाना हो वैसा ही विचार करके घट को बनाता है, ऐसे ही ईश्वर विचार कर (उसका नियम ही विचार है) ससार को उत्पन्न करता है । संसार के देव सूर्य, चन्द्र, बिजुली आदिको से वह प्रभु पूर्व ही

विद्यमान था। ऐसे वेद निरूपित प्रकाश और तेजोमय जगदीश को, बहुत नम्रतापूर्वक हम सब प्रेम भक्ति से बारम्बार प्रणाम करते हैं।

: ८२ :

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥ ३१।२१॥

पदार्थ—(देवा) विद्वान् पुरुष (रुचम्) रुचिकारक (ब्राह्मम्) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान को (जनयन्त) उपदेश द्वारा उत्पन्न करते हुए (अग्रे) प्रथम (तत्) उस ब्रह्म को ही (त्वा) तुम्हे (अब्रुवन्) कथन करें, (य ब्राह्मण) जो वेद वेत्ता ब्रह्मज्ञानी (एवम्) ऐसे (विद्यात्) ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है (तस्य) उसके (वशे) अधीन समस्त (देवा) इन्द्रियगण (असन्) रहते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञान ही हम सब को आनन्द देने वाला और मनुष्य की रुचि और प्रीति बढाने वाला है। उस ब्रह्मज्ञान को विद्वान् लोग, अन्य मनुष्यो को उपदेश करके, उनको आनन्दित कर देते है, जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है, उसी ज्ञानी पुरुष के मन आदि सब इन्द्रिय वश मे हो जाते हैं।

: ८३ :

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥ ३१।२२॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (ते) आप की (श्री) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मी) सब ऐश्वर्य (च) भी (पत्न्यौ) दोनो स्त्रियो के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे) दिन रात (पार्श्वे) पार्श्व (नक्षत्राणि रूपम्) सारे नक्षत्र आप से ही प्रकाशित होने से आपके ही रूप हैं, (अश्विनौ) आकाश और पृथिवी (व्यात्तम्) मानो खुले मुख के

समान है, आप ही (इष्णन्) इच्छा करते हुए (मे) मेरे लिये (असुम्) उस मुक्ति सुख को (इषाण) प्राप्त करावें और (मे) मेरे लिए (सर्वं लोकम् इषाण) सब के दर्शन और सब लोको के सुखो को पहुचावें ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! ससार भर की सर्व शोभारूपी श्री और ससार भर की सब विभूति धन ऐश्वर्य रूपी लक्ष्मी, ये दोनो आप की स्त्रिया हैं । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति के अधीन रहती है, ऐसे ही सब शोभा और सब प्रकार की विभूति आपकी आज्ञा मे सर्वदा वर्त्तमान हैं । दिन-रात (पार्श्वे) पासे और सब नक्षत्र आप के रूप के तुल्य हैं । द्युलोक और पृथिवी खुले मुख के तुल्य है, अर्थात् समस्त जगत् आपके अधीन है आपकी आज्ञा से बाहिर कुछ भी नहीं है, ऐसे महासमर्थ जगत्पति आप पिता से ही हमारी प्रार्थना है कि हमे शोभा और विभूति प्रदान करें और सब लोकों के सुख प्राप्त करावें । सर्वदु ख निवृत्ति पूर्वक, परमात्म प्राप्ति रूपी मुक्ति भी हमे कृपा कर प्रदान करें ।

: ८४ :

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।। ४०।१।।

पदार्थ—(जगत्याम्) इस सृष्टि मे (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर अचर ससार है (इदम् सर्वम्) यह सब (ईशा) सर्वशक्तिमान् नियन्ता परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है । (तेन त्यक्तेन) उन त्याग किये हुए अथवा (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थ से (भुञ्जीथा) भोग अनुभव कर । (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन की (मा गृध) इच्छा मत कर ।

भावार्थ—मनुष्यमात्र को चाहिए कि, सर्वत्र व्यापक परमात्मा को जानकर, अन्याय से किसी के धनादि पदार्थ की कभी

इच्छा भी न करे। जो कुछ वस्तु परमेश्वर ने दे दी है उससे ही अपने शरीर की रक्षा करे। जो धर्मात्मा पुरुष, परमेश्वर को सर्वत्र व्यापक सर्वान्तर्यामी जानकर कभी पाप नही करते और सदा प्रभु के ध्यान और स्मरण मे अपने समय को लगाते हैं, वे महापुरुष, इस लोक मे सुखी और परलोक मे मुक्ति सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द मे रहते हैं।

८५.

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँसमा ।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥४०।२॥

पदार्थ—(इह) इस जगत् मे मनुष्य (कर्माणि) वैदिक कर्मों को (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतम् समा) सौ वर्ष पर्य्यन्त (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे। हे मनुष्य! (एवम्) इस प्रकार (त्वयि नरे) कर्म करने वाले तुझ पुरुष मे (कर्म न लिप्यते) अवैदिक कर्म का लेप नही होता (इत अन्यथा) इससे किसी दूसरे प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप लगे बिना नही रहता।

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि वैदिक कर्म, सन्ध्या, प्रार्थना, उपासना, वेदो का स्वाध्याय, महात्मा सन्त जनो का सत्सगादि सदा करता हुआ, सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा करे। ब्रह्मचर्यादि साधन ही पुरुष की आयु को बढाने वाले है। व्यभिचारी, दुराचारी ब्रह्मचारी नही बन सकता इसलिए दुराचाररूप पाप कर्म त्यागकर, ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक वैदिक कर्म करता हुआ पुरुष, चिरजीव बनने की इच्छा करे। पुरुष कुछ कर्म किये बिना नही रह सकता, अच्छे कर्म न करेगा तो बुरे कर्म ही करेगा। इसलिए वेद ने कहा है, पुरुष अच्छे कर्म करे तब पाप कर्मों से पुरुष का लेप कभी नही होगा। पाप कर्मों से छूटने का और कोई उपाय नही है।

: ८६ :

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृता ।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जना· ॥४०।३॥

पदार्थ—(ते लोका) वे मनुष्य (असुर्या) केवल अपने प्राणो के पुष्ट करने वाले पापी असुर कहाने योग्य है जो (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) अज्ञान से (आवृता) सब ओर से ढके हुए हैं (ये के च) और जो कोई (नाम) प्रसिद्ध (जना) मनुष्य (आत्महन) आत्म हत्यारे हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरकर (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुष्ट देहरूपी लोको को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते है।

भावार्थ—वे ही मनुष्य, असुर दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि है, जो आत्मा मे और जानते, वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही है। ऐसे लोग कभी अज्ञान से पार होकर परमानन्द रूप मुक्ति को नही प्राप्त हो सकते। ऐसे पापी पुरुष अपने आत्मा के हनन करने हारे वेद मे आत्म हत्यारे कहे गए है। दूसरे वे भी आत्म हत्यारे है, जो पिता की न्याईं सबके पालन-पोषण करने हारे, समस्त ससार के कर्ता-धर्ता सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को नही मानते न उसकी भक्ति करते न ही उसकी वैदिक आज्ञा के अनुसार अपना जीवन बनाते है, केवल विषय भोगो मे फँसकर, सारा जीवन उन भोगो की प्राप्ति के लिए लगा देना पामरपन नही तो और क्या है ? ईश्वर को न मानना ही सब पापो से बडा पाप ह। ऐसे महापापी नास्तिक पुरुषो की सदा दुर्गति होती है। ऐसी दुर्गति देनेहारी नास्तिकतारूपी राक्षसी से सबको बचना और बचाना चाहिए।

८७ ·

अनेजदेक मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४०।४॥

पदार्थ—(अनेजत्) काँपने वाला नही अचल, अपनी अवस्था से कभी चलायमान नही होता। (एकम्) अद्वितीय (मनस जवीय) मन से भी अधिक बेग वाला ब्रह्म है। (पूर्वम्) सबसे प्रथम, सबसे आगे (अर्षत्) गति करते हुए अर्थात् जहा कोई चल-कर जावे वहा व्यापक होने से पूर्व ही विद्यमान है, (एनम्) इस ब्रह्म को (देवा) बाह्य नेत्र आदि इन्द्रिय (न आप्नुवन) नही प्राप्त होते। (तद्) वह ब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप मे स्थित (धावत) विषयो की ओर गिरते हुए (अन्यान्) आत्मा से भिन्न मन वाणी आदि इन्द्रियो को (अति एति) लाघ जाता है अर्थात् उनकी पहुँच से परे रहता है। (तस्मिन्) उस व्यापक ईश्वर मे (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष मे गतिशील वायु और जीव भी (अप) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है।

भावार्थ—परमात्मा व्यापक है, मन जहा-जहा जाता है वहा-वहा प्रथम से ही परमात्म देव स्थिर वर्त्तमान हैं। प्रभु का ज्ञान शुद्ध एकाग्र मन से होता है, नेत्र आदि इन्द्रियो और अज्ञानी विषयी लोगो से वह देखने योग्य नही वह जगत्पिता आप निश्चल हुआ, सब जीवो को और वायु सूर्य चन्द्र आदिको को नियम से चलाता और धारण करता है। ऐसे मन नेत्रादिको के अविषय ब्रह्म को कोई महानुभाव महात्मा बाह्य भोगो से उपराम ही जान सकता है। विषयो मे लम्पट दुराचारी शराबी कबाबी कभी नही जान सकता।

: ८८ :

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत. ॥४०।५॥

पदार्थ—(तद् एजति) वह ब्रह्म मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता है। (तत्) वह ब्रह्म (न एजति) अपने स्वरूप से कभी चलाय-मान नही होता अथवा (तत् एजति) वह ब्रह्म एजयति-समग्र

ब्रह्माण्ड को चला रहा है, आप चलायमान नही होता। (तत् दूरे) वह अज्ञानी मूर्ख दुराचारी पुरुषो से दूर है, (तत् उ अन्तिके) वह ही ब्रह्म विद्वान् सदाचारी महापुरुषो के समीप है, (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस समस्त ब्रह्माण्ड और सब जीवो के (अन्त) भीतर (तत् उ) वह ही ब्रह्म (अस्य सर्वस्य) इस जगत् के और सब जीवो के (बाह्यत) बाहिर भी वर्तमान है, क्योकि वह सर्वत्र व्यापक है।

भावार्थ—वह परमात्मा अज्ञानी मूर्खों की दृष्टि से चलता है, वास्तव मे वह सब जगत् को चला रहा है, आप कूटस्थ निर्विकार अटल होने से कभी स्व स्वरूप से चलायमान नही होता। जो अज्ञानी पुरुष, परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हैं, वे इधर-उधर भटकते हुए भी उसको नही जानते। जो विवेकी पुरुष ईश्वर की वैदिक आज्ञा के अनुसार अपने जीवन को बनाते, सदा वेदो का और वेदानुकूल उपनिषदादिको का विचार करते, उत्तम महात्माओ का सत्सग और उनकी प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं, वे अपने आत्मा मे अति समीप ब्रह्म को प्राप्त होकर, सदा आनन्द मे रहते है। परमात्मदेव को सब जगत् के अन्दर बाहिर व्यापक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी जानकर कभी कोई पाप न करते हुए, उस प्रभु के ध्यान से अपने जन्म को सफल करना चाहिए।

: ८९ :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मान ततो न विचिकित्सति ॥ ४०।६॥

पदार्थ—(यस्तु) जो भी विद्वान् (सर्वाणि भूतानि) सब चर अचर पदार्थों को (आत्मन् एव) परमात्मा के ही आश्रित (अनु पश्यति) वेदो के स्वाध्याय, महात्माओ के सत्सग धर्माचरण और योगाभ्यास आदि साधनो से साक्षात् कर लेता है और (सर्वभूतेषु च) सब प्रकृति आदि पदार्थों मे (आत्मानम्) परमात्मा को व्यापक

जानता है (तत) तब वह (न विचिकित्सति) सशय को नही प्राप्त होता ।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष, सब प्राणी अप्राणी जगत् को परमात्मा के आश्रित देखना है और सब प्रकृति आदि पदार्थों मे परमात्मा को जानता है । ऐसे विद्वान् महापुरुषो के हृदय मे कोई सशय नही रहता ।

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ ऐसा होता है कि जो, विद्वान् पुरुष मब प्राणियो को अपने आत्मा मे और अपने आत्मा को सब प्राणियो मे देखता है वह किसी से घृणा वा किसी की निन्दा नही करता, अर्थात् वह सबका हितेच्छु शुभचिन्तक बन जाता है ।

. ६० .

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत ।
तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत ॥ ४०।७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस ब्रह्म ज्ञान के प्राप्त होने से (सर्वाणि भूतानि) सव जीव प्राणी (आत्मा एव अभूत्) अपने आत्मा के तुल्य ही हो जात है, समस्त जीव अपने समान दीखने लगते है तव (एकत्वम् अनु पश्यत) परमात्मा म एकता अद्वितीय भाव को ध्यान योग से साक्षात् जानने वाले महापुरुष के (क मोह) मूढता कहा और (क शोक) कौन सा शोक वा क्लेश रह सकता है अर्थात् उस महापुरुष से शोक मोहादि नष्ट हो जात है ।

भावार्थ—जो विद्वान् सन्यासी महात्मा लाग, परमात्मा के पुत्र प्राणिमात्र को अपन आत्मा के तुल्य जानन है, अर्थात् जैसे अपना हित चाहते है, वैसे ही अन्यो मे भी वर्तत है । एक अद्वितीय परमात्मा की शरण का प्राप्त होते है, उनको शोक मोह लोभादि कदाचित् प्राप्त नही होत । और जो लोग, अपन आत्मा को यथाथ जानकर परमात्म परायण हो जात है, वे सदा सुखी रहते है, ईश्वर स विमुख को कभी सुख की प्राप्ति नही होती ।

: ९१ :

**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ४०।८॥**

पदार्थ —(स) वह परमात्मा (परि अगात्) सब ओर से व्याप्त है (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) शरीर-रहित (अव्रणम्) फोडा फुंसी और घाव से (अस्नाविरम्) नाडी नस के बन्धन से रहित, (शुद्धम्) अविद्यादि दोषो से रहित, सदा पवित्र (अपापविद्धम्) पापो से सदा मुक्त (कवि) सर्वज्ञ (मनीषी) सबके मनो का प्रेरक (परिभू) दुष्ट पापियो का तिरस्कार करने वाला (स्वयम्भू) माता पिता से जन्म न लेने वाला अपनी सत्ता मे सदा विद्यमान अनादि स्वरूप है वह (याथातथ्यत) यथार्थ रूप से ठीक ठीक (शाश्वतीभ्य) सनातन से चली आई (समाभ्य) प्रजाओ के लिए (अर्थान्) समस्त पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर रचता और उनका ज्ञान प्रदान करता है।

भावार्थ—जो परमात्मा, अनन्तशक्ति युक्त अजन्मा, निराकार, सदा मुक्त, न्यायकारी, निर्मल, सर्वज्ञ, सबका साक्षी, नियन्ता, अनादिस्वरूप, सृष्टि के आदि मे ब्रह्मर्षियो द्वारा वेद विद्या का उपदेश न करता तो, कोई विद्वान् न हो सकता। ऐसे अजन्मा निराकार जगत्पति का जन्म मानना और उसका आकार बताना घोर मूर्खता और वेद विरुद्ध नास्तिकता नही तो और क्या है? परमात्मा कृपा करके ऐसी नास्तिकता से जगत् को बचावे, ऐसी प्रार्थना है।

: ९२ :

**अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरता. ॥४०।९॥**

पदार्थ—(ये) जो (असम्भूतिम्) सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनो गुणो वाली अव्यक्त प्रकृति की (उपासते) उपास्य ईश्वर भाव से उपासना करते हैं, वे (अन्धम् तम) आवरण करने वाले अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं। (ये उ) और जो (सम्भूत्याम्) सृष्टि मे (रत) रमण करते है, उसी मे फसे हैं, (ते) वे (उ) निश्चय से (तत) उससे भी (भूय इव) अधिक गहरे (तम) अज्ञानरूप अन्धकार मे प्रविष्ट होते हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य, समस्त जगत् के प्रकृति रूप जड कारण को उपास्य ईश्वर भाव से स्वीकार करते हैं। वे अविद्या मे पडे हुए क्लेशो को ही प्राप्त होते है, और जो कार्य जड जगत् को उपास्य इष्टदेव ईश्वर जानकर, उस जड पदार्थ की उपासना करते हैं, वे गाढ अविद्या मे फँस कर, सदा अधिकतर क्लेशो को प्राप्त होते हैं। इसलिये सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को ही, अपना पूज्य इष्टदेव जानकर, उसी की ही सदा उपासना करनी चाहिये, किसी जड पदार्थ की नही।

अथवा—(असम्भूतिम्) इस देह को छोडकर पुन अन्य देह मे आत्मा प्रकट नही होता, ऐसा मानने वाले गाढ अन्धकार मे पडे हैं और जो (सम्भूतिम्) आत्मा ही कर्मानुसार जन्मता और मरता है, ईश्वर कुछ नही है, जो ऐसा मानने वाले है, वे नास्तिक उनसे भी अधिक घोर अन्धकार मे पडे हैं।

· ६३ ·

अन्यदेवाहु सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणा ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ ४०।१०॥

पदार्थ—(सम्भवात्) उत्पत्ति वाले कार्य जगत् से (अन्यत एव) भिन्न ही फल (आहु) कहते है, (असम्भवात्) कारण प्रकृति के ज्ञान से (अन्यत आहु) अन्य ही फल कहते है (ये) जो विद्वान्

पुरुष (न) हमे (तत्) इस तत्व को (विचचक्षिरे) व्याख्यान पूर्वक कहते हैं उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषो से (इति शुश्रुम) इस प्रकार के वचन को हम सुनते हैं ।

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग, कार्य कारण रूप वस्तु से भिन्न भिन्न उपकार लेते और लिवाते हैं और उन कार्य कारण के गुणो को आप जानते और दूसरे लोगो को भी बताते हैं, ऐसे ही हम सबको निश्चय करना चाहिये ।

: ६४ :

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳसह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ४०।११॥

पदार्थ—(य) जो पुरुष (सम्भूतिम्) कार्य जगत् (च) और (विनाशम्) जिसमे पदार्थ नष्ट होकर लीन होते है, ऐसे कारण रूप असम्भूति (च) इनके गुण कर्म स्वभावो को (सह) एक साथ (उभयम्) दोनो (तत्) उन कार्य कारण स्वरूपो को (वेद) जानता है (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान कर (मृत्युम्) देह छोडने से होने वाले भय को (तीर्त्वा) पार करके उसको सर्वथा त्यागकर (सम्भूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्त्व को जानकर (अमृतम्) अविनाशी मोक्ष सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—कार्य कारण रूप वस्तु निरर्थक नही है, किन्तु कार्य कारण के गुण कर्म स्वभावो को जानकर, धर्म आदि मोक्ष के साधनो मे सयुक्त करके, अपने शरीरादि के कार्य कारण को जानकर, मरण का भय छोडकर, मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये । जिस कारण से यह शरीर उत्पन्न हुआ है, उसमे ही कभी न कभी अवश्य लीन होगा । जिसकी उत्पत्ति हुई है उसका नाश भी अवश्य होगा, ऐसे निश्चय से निर्भय होकर, मुक्ति के साधनो मे यत्नशील होना चाहिये ।

: ९५ :

अन्धन्तम· प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳪरता ॥४०।१२॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (अविद्याम्) नित्य पवित्र सुख रूप आत्मा से भिन्न अपने और स्त्री आदिको के शरीर आदिको को नित्य पवित्र सुख और आत्मा रूप जानते और (उपासते) इन शरीरादिको के भजन-मजन मे सारे समय को लगा देते हैं वे (अन्धन्तम) गाढ अन्धकार मे (प्रविशन्ति) प्रवेश करते है, महा-ज्ञानी मूर्ख हैं और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रता) विद्या अर्थात् केवल शास्त्रो के अक्षरो के पठन पाठनादि मे लगे रहते हैं, वे (तत भूय इव) उससे भी अधिक (तम) अज्ञानान्धकार मे प्रवेश कर रहे है, उनसे भी अधिक अज्ञानी और मूर्ख है ।

भावार्थ—जो अज्ञानी ससारी लोग, आत्मा और परमात्मा के ज्ञान से हानि, केवल अनित्य अपवित्र दु ख अनात्म रूप, अपने और स्त्री आदि के शरीरो को नित्य पवित्र सुख और आत्मरूप जानकर इनके ही पालन पोषण भजन-मजन मे सदा लगे रहते हैं, न वेदो का स्वाध्याय करते न ही विद्वानो का सत्सग करते हैं, ऐसे विषयो मे लम्पट अविद्यारूप अन्धकार मे पडे अपने दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ खो रहे है। जो शास्त्र वा अन्य अनेक प्रकार की विद्या तो पढे हैं, परन्तु प्रभु का ज्ञान और उसकी प्रेम भक्ति से शून्य हैं । न वेदो को पढते सुनते अनात्मविद्या के अभ्या-सी है, वे उन मूर्खों से भी गए गुजरे है । मूर्ख तो रस्ते पड सकते हैं, परन्तु वे अभिमानी लोग नही पड सकते ।

: ९६ :

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्याया· ।
इति शुश्रम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥४०।१६॥

पदार्थ—(विद्याया) विद्या के फल और कार्य (अन्यत् एव आहु) भिन्न ही कहते हैं और (अविद्याया अन्यत् आहु) अविद्या का फल अन्य कहते है (ये न तद् विचचक्षिरे) जो हम को विद्या और अविद्या के स्वरूप का व्याख्यान करके कहते हैं। इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्मज्ञानी विद्वानो से (तत्) उस वचन को, हम लोग (इति शुश्रुम) (इस तत्व का) श्रवण करते हैं।

भावार्थ—अनादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है, वह अज्ञान युक्त जड से कदापि नही और जो जड से प्रयोजन सिद्ध होता है, वह चेतन से नही। सब मनुष्यो को विद्वानो के सग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनो का विवेक करके दोनो से उपयोग लेना चाहिये।

: ९७ :

विद्या चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ ४०।१४॥

पदार्थ—(विद्याम् च अविद्याम् च) विद्या और अविद्या को इन साधनो सहित (य) जो विद्वान् (तत् उभयम् वेद) इन दोनो के स्वरूप को जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्युम् तीर्त्वा) मृत्यु को उलाघ कर (विद्यया) ज्ञान से (अमृतम्) मुक्ति को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष, विद्या-अविद्या के यथार्थरूप को जान लेते हैं, वे महापुरुष, जड शारीरादिको और चेतन आत्मा को परमार्थ के कामो मे लगाते हुए, मृत्यु आदि सब दु खो से छूट कर सदा सुख को प्राप्त होते है। यदि जड प्रकृति आदि और शारीरादि कार्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति कैंने कर और जीव, कर्म उपासना और ज्ञान के सपादन करने मे कैसे समर्थ हो ? इससे यह सिद्ध हुआ कि, न केवल जड, न

केवल चेतन से और न केवल कर्म से और न केवल ज्ञान से, कोई धर्मादि की सिद्धि करने में समर्थ होता है।

: ६८ :

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तऽशरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतऽस्मर ॥ ४०।१५॥

पदार्थ—हे (क्रतो) कर्म कर्ता जीव! शरीर छूटते समय तू (ओ३म्) इस मुख्य नाम वाले परमेश्वर का (स्मर) स्मरण कर। (क्लिबे) सामर्थ्य के लिये परमात्मा का (स्मर) स्मरण कर। (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। (वायु) यह प्राण अपानादि वायु (अनिलम्) कारण रूप वायु जो (अमृतम्) अविनाशी सूत्रात्मारूप है उस को प्राप्त हो जायगा। (अथ) इस के अनन्तर (इदम् शरीरम्) यह स्थूल शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्मीभूत हो जायगा।

भावार्थ—शरीर को त्यागते समय पुरुषों को चाहिये कि, परमात्मा के अनेक नामों में सब से श्रेष्ठ जो परमात्मा का प्यारा ओ३म् नाम है, उसका वाणी से जाप और मन से उस के अर्थ सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का चिन्तन करें। यदि आप, अपने जीवन में उस सबसे श्रेष्ठ परमात्मा के ओ३म् नाम का जाप और मन से उस परम प्यारे प्रभु का ध्यान करते रहोगे तो, आपको मरण समय में भी उसका जाप और ध्यान बन सकेगा। इसलिए हम सब को चाहिये कि ओ३म् का जाप और उसके अर्थ परमात्मा का सदा चिन्तन किया करें, तब ही हमारा कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

: ६९ :

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
४०।१६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप सर्वव्यापक करुणामय परमात्मन् ! हे (देव) दिव्य गुण युक्त प्रभो ! आप (विश्वानि वयुनानि) हमारे सब कर्म और सब भावो को (विद्वान्) जानने वाले हो, इसलिए (अस्मान्) हम सबको (राये) सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नय) ले चलो। (अस्मात्) हम सब से (जुहुराणम्) कुटिलता रूप (एन) पापाचरण को (युयोधि) दूर करो (ते) आप के लिए हम सब (भूयिष्ठाम्) बहुत ही (नम उक्तिम् विधेम) नमस्कार कहते हैं।

भावार्थ—हे सर्वान्तर्यामी जगदीश ! आप हमारे सब के ज्ञान और कर्मों को जानते हो, आप से कुछ भी छिपा नही। हमारे कुसस्कार और कुटिलता रूपी पाप को, दूर करो। इस लोक और परलोक मे सुख प्राप्ति के लिए हमे उत्तम मार्ग से ले चलो, हम आप का बहुत ही नम्रता पूर्वक बारम्बार प्रणाम और आपकी ही स्तुति करते है।

: १००

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुष. सो ऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ४०॥१७॥

पदार्थ—(सत्यस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा वा ज्ञान रूप मोक्ष का (मुखम्) द्वार (हिरण्मयेन) सुवर्णादि (पात्रेण) दरिद्रता रूपी दुःख से रक्षक धन सम्पत्ति से (अपिहितम्) ढका हुआ है (य असौ) जो यह (आदित्ये) प्रलय मे सब को सहार करने वाला जो ईश्वर, उसमे जो (पुरुष) जीव है (स असौ अहम्) सो यह मैं हू। (ओ३म् खम् ब्रह्म) सब से उत्तम नाम परमेश्वर का ओ३म् है, वह (खम्) आकाश के सदृश व्यापक और (ब्रह्म) सब से बडा है।

भावार्थ—जो पुरुष धन को प्राप्त हो कर धन को शुभ कामो

मे लगाते हैं, पाप कर्मों मे कभी नही लगाते वे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं। प्राय सुवर्णादि धन से प्रमादी लोग, पाप करके मोक्ष मार्ग को प्राप्त नही हो सकते। इसलिये मन्त्र मे कहा है कि सुवर्णादि धन से मुक्ति का द्वार ढका हुआ है, इसीलिये उपनिषद् मे कहा है—"तत्त्व पूषन् अपावृणु" हे सब के पालन पोषण कर्त्ता प्रभो! उस विघ्न को दूर कर ताकि मैं मुक्ति का पात्र बन सकू। 'ओ३म्' यह परमात्मा का सब से उत्तम नाम है। इस नाम की उत्तमता वेद, उपनिषद्, दर्शन और गीता आदि स्मृतियो मे वर्णन की गई है। इसमे वेदो को मानने वालो को कभी सन्देह नही हो सकता। उसको (खम्) आकाश की न्याईं व्यापक और सबसे बडा होने से ब्रह्म वेद ने कहा है।

●

सामवेद शतक

सामवेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रों का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

"जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है, अन्य का नहीं और जैसे सूर्य प्रकाश स्वरूप है, पर्वत से लेके त्रसरेणु पर्यन्त पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे वेद भी स्वयम् प्रकाश है और सत्य विद्याओं का भी प्रकाश कर रहे हैं।"

(ऋ० भा० भू०)

—महर्षि दयानन्द

: १ :

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ पू० १।१।१।१॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे स्वप्रकाश सर्वव्यापक सब के नेता परम-पूज्य परमात्मन ! (बर्हिषि) आप हमारे ज्ञानयज्ञरूप ध्यान मे (आयाहि) प्राप्त होओ । (गृणान) आप स्तुति किये हुए है । (होता) आप ही दाता है (वीतये) हमारे हृदय मे प्रकाश करने के लिये तथा (हव्यदातये) भक्ति, प्रार्थना, उपासना का फल देने के लिये (नि सत्सि) विराजो ।

भावार्थ—परम कृपालु परमात्मा, वेद द्वारा हम अधिकारियो को प्रार्थना करने का प्रकार बताते है । हे जगत्पित ! आप प्रकाशस्वरूप हैं, हमारे हृदय मे ज्ञान का प्रकाश कीजिये । आप यज्ञ मे विराजते हो, हमारे ज्ञानयज्ञरूप ध्यान मे प्राप्त होओ । आपकी वेद और वेददृष्टा ऋषि लोग स्तुति करते है हमारी स्तुति को भी कृपा करके श्रवण कर हम पर प्रसन्न होओ । आप ही सब को सब पदार्थ और सुखो के देने वाले हो ।

: २ :

त्वमग्ने यज्ञाना॑ होता विश्वेषा॑ हिता ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ पू० १।१।१।२॥

शब्दार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (विश्वेषा यज्ञानाम्) ब्रह्मयज्ञादि सब यज्ञो के (होता) ग्रहण करने वाले स्वामी है । आप (देवेभि) विद्वान् भक्ता से (मानुषे जने) मनुष्यवर्ग मे (हित) धारण किये जाते है ।

भावार्थ—आप जगत्पिता सब यज्ञो के ग्रहण करने वाले, यज्ञो के स्वामी हैं, अर्थात् श्रद्धा से किये यज्ञ होम, तप, ब्रह्मचर्य, वेद-पठन, सत्यभाषण, ईश्वर भक्ति आदि उत्तम-उत्तम काम आप को

प्यारे हैं। मनुष्य-जन्म मे ही यह उत्तम कर्म किये जा सकते हैं और इन श्रेष्ठ कर्मों द्वारा, इस मनुष्य जन्म मे आप परमात्मा का यथार्थ ज्ञान भी हो सकता है। पशु-पक्षी आदि अन्य योनियो मे तो आहार, निद्रा, भय रागद्वेषादि ही वर्तमान है, न इन योनियो मे यज्ञादि उत्तम काम बन सकते है और न आप का ज्ञान ही हो सकता है।

३

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।। **पू० १।१।१।३**

शब्दार्थ—(विश्ववेदसम्) सब को जानने वाले ज्ञानस्वरूप ज्ञान के दाता (होतारम्) व्यापकता से सब के ग्रहण करने वाले (दूतम्) कर्मों का फल पहुचाने वाले (अस्य यज्ञस्य) इस ज्ञान यज्ञ के (सुक्रतुम) सुधारने वाले (अग्नि वृणीमहे) ऐसे ज्ञानस्वरूप परमात्मा को हम सेवक जन स्वीकार करते है।

भावार्थ—आप ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही वेदो द्वारा सब के ज्ञान प्रदाता हैं। सबके कर्मों के यथायोग्य फल दाता भी आप हैं, सब जगह व्यापक होने से, सब ब्रह्माण्डो को आप ही धारण कर रहे है। आप ही हमारी भक्ति उपासना के श्रेष्ठ फल देने वाले है, आप इतने बडे अनन्त श्रेष्ठ गुणो के धाम और पतित पावन परमदयालु सर्वशक्तिमान् है, तो हमे भी योग्य है कि, सारी मायिक प्रवृत्तियो से उपराम हो, आप की ही शरण मे आवें, आप को ही अपना इष्ट देव परम पूजनीय समझ निशि-दिन आप के ध्यान और आप की आज्ञा पालन मे तत्पर रहे।

: ४ :

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुत. ।। **पू० १।१।१।४।।**

शब्दार्थ—(विपन्यया) स्तुति से (द्रविणस्यु) अपने प्यारे उपासकों के लिये आत्मिक बल रूप धन का चाहने वाला (समिद्ध) विज्ञात हुआ (शुक्र) ज्ञान और बल वाला तथा ज्ञान और बल का दाता (आहुत) अच्छे प्रकार से भक्ति किया हुआ (अग्नि) ज्ञानस्वरूप ईश्वर (वृत्राणि) अविद्यादि अन्धकार दुःखों और दुःख साधनों को (जङ्घनत्) हनन करे।

भावार्थ—हे जगत्पते! आपकी प्रेम मे स्तुति प्रार्थना उपासना करने वालों को आप आत्मिक बल देते है, जिससे आपके प्यारे उपासक भक्त, अविद्यादि पञ्च क्लेश और सब प्रकार के दुःख और दुःख साधनों को दूर करते हुए, सदा आपके ब्रह्मानन्द मे मग्न रहते हैं। कृपासिन्धो भगवन्! हम पर ऐसी कृपा करो कि, हम भी आपके ध्यान मे मग्न हुए, अविद्यादि सब क्लेशों और उनके कार्य दुःखों और दुःख साधनों को दूर कर, आप के स्वरूपभूत ब्रह्मानन्द को प्राप्त होवें।

५ :

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैर मित्रमर्दय॥ पू० १।१।२।१॥

शब्दार्थ—हे अग्ने! (ते नम) आप को हमारा नमस्कार है। (कृष्टय) आपके प्यारे भक्त मनुष्य (ओजसे गृणन्ति) बल प्राप्ति के लिये आपकी स्तुति करते है। (देव) हे प्रकाश-स्वरूप और सब के प्रकाश करने वाले सुखदाता प्रभो! (अमै) रोग भयादिकों से (अमित्रम्) पापी शत्रु को (अर्दय) पीडित कीजिये।

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप सर्व सुखदायक देव! आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना हम सदा करें, जिससे हमे आत्मिक बल मिले और ज्ञान का प्रकाश हो। जो लोग आप से विमुख होकर आप की भक्ति और वेदों की आज्ञा से विरुद्ध चलते, नास्तिक बन

ससार की हानि करते हैं, उन पतितो तथा ससार के शत्रुओ को ही बाह्य शत्रु और आभ्यन्तर शत्रु काम, क्रोध, रोग, शोक, भयादि सदा पीडित करते रहते है।

: ६ :

अग्निमिन्धानो मनसा धियऽसचेत मर्त्यः ।
अग्निमिन्धे विवस्वभि ॥ ऋ० १।१।२।६॥

शब्दार्थ—(मर्त्य) मनुष्य (मनसा) सच्चे मन से श्रद्धापूर्वक (अग्निम् इन्धान) प्रभु का ध्यान करता हुआ (धियम्) बुद्धि को (सचेत) अच्छे प्रकार प्राप्त हो इसलिये (विवस्वभि) सूर्य की किरणो के साथ (अग्निम् इधे) प्रकाशस्वरूप प्रभु को हृदय मे विराजमान करे।

भावार्थ—मनुष्य का नाम मर्त्य अर्थात् मरण धर्मा है। यदि यह मृत्यु से बचना चाहे तो जगत्पिता की उपासना करे।

सबको योग्य है कि दो घण्टा रात्रि रहते उठ कर प्रभु का ध्यान करे। प्रात काल सूर्य के निकले कभी सोवें नही। प्रभु की भक्ति करे तो लोगो को दिखलाने के लिये दम्भ से नही, किन्तु श्रद्धा और प्रेम से ध्यान करते-करते परमात्मा के ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त होकर मृत्यु से तर जावे।

: ७ :

अग्ने मृड महाँ असयय आ देवयु जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १।१।३।३॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे पूजनीय ईश्वर! हम (मृड) सुखी करो (महान् असि) आप महान् हो (देवयु जनम्) ज्ञान यज्ञ से आप देव की पूजा चाहने वाले भक्त को (अय) प्राप्त होते हो, (बर्हि) यज्ञ स्थल मे (आसदम्) विराजने को (आ इयेथ) प्राप्त होते हो।

भावार्थ—हे परम पूजनीय परमात्मन्! आप श्रद्धा भक्ति

युक्त पुरुषो को सदा सुखी रखते और प्राप्त होते हो। श्रद्धा भक्ति और सत्कर्म हीन नास्तिक और दुराचारियो को तो न आपकी प्राप्ति हो सकती है, न वे सुखी हो सकते हैं। इसलिये हम सब को योग्य है कि, आपकी वेदाज्ञा के अनुसार यज्ञ, होम, तप, स्वाध्याय और श्रद्धा, भक्ति, नम्रता और प्रेम से आपकी उपासना मे लग जावे जिस से हमारा कल्याण हो।

: ८ :

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाᳬ रेताᳬसि जिन्वति ॥ १।१।३।७॥

शब्दार्थ—(अयम् अग्नि) यह प्रकाशमान जगदीश्वर (मूर्द्धा) सर्वोत्तम है (दिव ककुत्) प्रकाश की टाट है। जैसे बैल की टाट (कोहान गा) ऊँची होती हैं ऐसे ही परमश्वर का प्रकाश अन्य सब प्रकाशो से श्रेष्ठ है (पृथिव्या पति) पृथिवी आदि सब लोको का पालक है। (अपाम्) कर्मों के (रेतासि) बीजो को (जिन्वति) जानता है।

भावार्थ—आप परमपिताजी सबसे ऊँचे, सबसे श्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप सबके कर्मों के साक्षी और फल प्रदाता हैं। ऐसे आप जगत्पिता प्रभु को सदा अति समीपवर्ती जान, हम सबको पापो से रहित होना, सदाचार और आपकी भक्ति मे सदा तत्पर रहना चाहिये।

: ९ :

तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अगिर।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ १।१।३।९॥

शब्दार्थ—हे अग्ने! (तम् त्वा) उस आपको (गोपवन) वाणी की शुद्धि चाहने वाला और आपकी स्तुति से जिसकी वाणी शुद्ध हो गई है ऐसा भक्त पुरुष (गिरा) अपनी वाणी से (जनिष्टत्)

आपकी स्तुति करता हुआ आपको ही प्रकट कर रहा है। (अगिर) हे ज्ञाननिधे! (पावक) पवित्र करने वाले! (स हवम श्रुधी) ऐसे आप हमारी स्तुति प्रार्थना को सुनकर अंगीकार करो।

भावार्थ—मनुष्य की वाणी, संसार के अनेक पदार्थों के वर्णन और कठोर, कटु, मिथ्या भाषणादिकों से अपवित्र हो जाती है। परमात्मा पतित पावन है, जो पुरुष उनके ओंकारादि सर्वोत्तम पवित्र नामों का वाणी से उच्चारण और मन मे चिन्तन करते हैं, वे अपनी वाणी और मन को पवित्र करते हुए आप पवित्र होकर, दूसरे सत्संगियों को भी पवित्र करते हैं। धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष जो आप भक्त बनकर दूसरों को भी भक्त बनाते हैं, वास्तव में उनका ही जन्म सफल है।

: १० :

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद्रत्नानि दाशुषे॥ १।१।३।१०॥

शब्दार्थ—(वाजपति) अन्नपति, (कवि) सर्वज्ञ (अग्नि) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दाशुषे) दानी के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य (रत्नानि) विद्या, मोती, हीरे स्वर्णादि धनों को (दधत्) देता हुआ (परि अक्रमीत्) सर्वत्र व्याप रहा है।

भावार्थ—हे सर्वसुखदात! आप दानशील हैं, इसलिये दानशील उदार भक्त पुरुष ही आपको प्यारे हैं। विद्यादाता को विद्या, अन्नदाता को अन्न, धनदाता को धन, आप देते हैं। इसलिये विद्वानों को योग्य है, कि आप की प्रसन्नता के लिये, विद्यार्थियों को विद्या का दान बड़े प्रेम से करें, धनी पुरुषों को भी योग्य है कि योग्य सुपात्रों के प्रति धन, वस्त्रादिकों का दान उत्साह, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से करें। आपके स्वभाव के अनुसार चलने वाले सत्पुरुषों को आप सब सुख देते हैं। इसलिये हम

सबको आपके स्वभाव और आज्ञा के अनुकूल चलना चाहिये, तब ही हम सुखी होगे अन्यथा कदापि नही ।

: ११ :

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥ १।१।१।३।१२॥

शब्दार्थ—(कविम्) सर्वज्ञ (सत्यधर्माणम्) सत्यधर्मी अर्थात् जिनके नियम सदा अटल हैं (देवम्) सदा प्रकाशस्वरूप और सब सुखो के देने वाले (अमीवचातनम्) रोगो के विनाश करने वाले (अग्निम्) तेजोमय परमात्मा की (अध्वरे) ब्रह्मयज्ञादि मे (उपस्तुहि) उपासना और स्तुति कर ।

भावार्थ—हे प्रभो ! जिस आप जगत्पति के नियम से बँधे हुए, पृथिवी, सूर्य्य, चन्द्र, मगल, शुक्र, शनि, बृहस्पति आदि ग्रह, उपग्रह अपने-अपने नियम मे स्थित होकर अपनी-अपनी गति से सदा घूम रहे है । आप जगन्नियन्ता के नियम को तोडने का किसी का भी सामर्थ्य नही । ऐसे अटल नियम वाले सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सुखदायक, रोग शोक विनाशक, आप परमात्मा की, मुमुक्षु, पुरुष श्रद्धा भक्ति से प्रेम मे मग्न हाकर प्रार्थना और उपासना सदा किया करे, जिससे उनका कल्याण हो ।

: १२ :

कस्य नून परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १।१।३।१४॥

शब्दार्थ—(सत्पते) महात्मा सन्त जनो के रक्षक ! (**यस्य** गिर) जिस भक्त की वाणिया (ते) आपके विषय मे (गोषात.) अमृतरस से भरी है उसके लिये (कस्य) सुख की (परीणसि) बहुत-सी (धिय) बुद्धियो को (नूनम् जिन्वसि) निश्चय से भरपूर कर देते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके जो परम प्यारे सुपुत्र और अनन्य भक्त हैं, अपनी अतिमनोहर अमृतभरी वाणी से, सदा आप प्रभु के ही गुण गण को गान करते हैं। भक्तवत्सल आप भगवान्, उन भक्तो को श्रेष्ठ बुद्धि से भरपूर कर देते है। आपकी अपार कृपा से जिनको उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई है, वे अपने मन से ऐसा चाहते हैं कि, हे दया के भण्डार भगवान् ! जैसी आपने हमको सद्बुद्धि दी है जिससे हम आपके भक्त और आपकी कृपा के पात्र बनें। ऐसी ही कृपा मेरे सब भ्राताओ पर कीजिये, उनको भी सद्बुद्धि प्रदान कीजिये, जिससे सब आपके प्यारे भक्त बन जाये, और सब सुखी होकर ससार भर मे शान्ति के फैलाने वाले बने।

: १३ :

पाहि नो अग्न एकया पाह्यूउत द्वितीयया। पाहि गीर्भि-स्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो। ११। ४।२॥

शब्दार्थ—(ऊर्जांपते) हे बलपते ! (वसो) ह अन्तर्यामिन् अग्ने ! (एकया) ऋग्वेद रूप वाणी के उपदेशो से (न पाहि) हमारी रक्षा करो। (उत द्वितीयया पाहि) और यजुर्वेद की वाणी से रक्षा करो। (तिसृभि गीर्भि पाहि) ऋग्यजु सामरूप त्रयी वाणी से रक्षा करो। (चतसृभि पाहि) चारो वेदो की वाणी के उपदेशो से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे वेदो के पवित्र उपदेशो के ससार भर मे फैलाने और धारण करने से सब मनुष्यो की इस लोक और परलोक मे रक्षा होती और ससार मे शान्ति फैल सकती है ऐसी राजादिको के पुलिसादि प्रबन्धो से भी नही, इसलिये, हे शान्तिवर्धक और सुरक्षक परमात्मन् ! आप अपने वेदो के सत्यो-पदेशो को ससार भर मे फैलाओ और हमे भी बल और बुद्धि दो कि आपकी चार वेद रूपी आज्ञा को ससार मे फैला दे जिससे सब नर नारी आपकी प्रेम भक्ति मे मग्न हुए सदा सुखी हो।

: १४ :

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।
१।२।६।२॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणस्पति) ब्रह्माण्ड वा वेदपति परमात्मा (न प्रैतु) हमको प्राप्त हो (देवी सूनृता) वेदवाणी (अच्छा) अच्छी तरह (प्र एतु) हमे प्राप्त हो (वीर नर्यम्) फैलने वाले मनुष्य के हितकारक (पङ्क्तिराधसम्) १ यजमान २ ब्रह्मा ३ अध्वर्यु ४ होता ५ उद्गाता इन पाचो पुरुषो से सेवित (यज्ञम्) यज्ञ को (देवा नयन्तु) अग्नि वायु देवता ले जावें ।

भावार्थ—हे ब्रह्माण्डपते ! हम सबको तीन वस्तुओ की कामना करनी चाहिये—एक आप परब्रह्म की प्राप्ति, दूसरी वेद विद्या, तीसरी यज्ञ, अथवा १ हम यजमानो को मन से ईश्वर का चिन्तन, २ वाणी से वेद-मन्त्रो का उच्चारण, ३ कर्म से अग्नि मे आहुति छोडना ।

: १५ :

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वँहोता नो अध्वरे । त्वम्पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ पू० १।२।६।७॥

शब्दार्थ—हे अग्ने (विश्ववार) सबके पूजन करने योग्य परमात्मन् ! (त्व न अध्वरे) आप हमारे ज्ञान यज्ञ में (गृहपति) यजमान हैं । (त्व होता) आप ही होता हैं । (त्व पोता) आप ही पवित्र करने वाले हैं । (प्रचेता) चेताने वाले भी आप ही है । (यक्षि) यज भी आप ही करते हैं । (च) और (वार्यम् यासि) कर्मफल भी आप ही पहुँचाते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आप यजमान, होता आदि रूप है । यद्यपि ज्ञान यज्ञ मे भी जीवात्मा, यजमान और वाणी आदि होता,

पोता, प्रचेता, आदि ऋत्विग् हैं, परन्तु आपकी कृपा के बिना कुछ भी कार्य्य सिद्ध नही हो सकता, इसलिए कहा गया है कि आप ही यजमानादि सब कुछ हैं ।

: १६ :

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ पू० २।१।२।२॥

शब्दार्थ—हे अग्ने पूजनीय ईश्वर ! (त्व यस्य सख्यम् आविथ) आप जिस पुरुष की मित्रता को प्राप्त होते हैं, (स:) वह (तव) आपकी (वाजकर्मभि) बल करने वाली (सुवीराभि) सुन्दर वीर्य वाली (ऊतिभि) रक्षाओ से (प्रतरति) पार हो जाता है ।

भावार्थ—हे पूजनीय प्रभो ! जो पुरुष आपकी भक्ति मे लग गये और आपके ही मित्र हो गये हैं, उन भक्तो को आप अपनी अति बल वाली, पुरुषार्थ और पराक्रम वाली रक्षाओ से, सर्वदुखो से पार करते हैं, अर्थात् उनके सब दु ख नष्ट करते हैं । आपकी अपार कृपा से उन प्रेमियो को आत्मिक बल मिलता है, जिससे कठिन-से-कठिन विपत्ति आने पर भी, सदाचाररूप धर्म और आपकी भक्ति से कभी चलायमान नही होते ।

: १७ :

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा राति· सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तय. ॥ पू० २।१।२।५॥

शब्दार्थ—(सुभग) हे शोभन ऐश्वर्य वाले ! (न) हमारे (आहुत) सर्व प्रकार से ध्यान किये (अग्नि) ज्ञानस्वरूप परमात्मा आप (भद्र) कल्याणकारी होओ । हमारा (राति) दान (भद्रा) श्रेष्ठ हो । (अध्वर भद्र) हमारा यज्ञ सफल हो, (उत) और (प्रशस्तय) स्तुतियें (भद्रा) उत्तम हो ।

भावार्थ—हम सबको योग्य है,' कि होम, यज्ञ, दान, ध्यान,

स्तुति प्रार्थना आदि जो-जो अच्छे कर्म करें, श्रद्धा भक्ति प्रेम और नम्रता से करे, क्योंकि श्रद्धा और नम्रता के बिना, किये कर्म, हस्ती के स्नान के तुल्य नष्ट हो जाते है। इसलिए अश्रद्धा, अभिमान, नास्तिकता आदि दुर्गुणो को समीप न फटकने दो। वे पुरुष धन्य हैं, जो यज्ञ दान, तप, परोपकार, होम, स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि उत्तम कामो को श्रद्धा, नम्रता और प्रेम से करते हैं। हे प्रभो! हमे भी श्रद्धा नम्रता आदि गुणयुक्त और दान यज्ञादि उत्तम काम करने वाला बनाओ।

: १८ :

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत।
सखायः स्तोमवाहसः॥ पू० २।२।७।१०॥

शब्दार्थ—(सखाय) हे मित्रो! (स्तोमवाहस) जिनको प्रभु की स्तुतियो का समूह प्राप्त होने योग्य है ऐसे आप लोग (आ निषीदत) मुक्ति प्राप्त के लिए मिलकर बैठो और (इन्द्रम्) परमेश्वर का (प्रगायत) कीर्तन करो (तु) पुन सब सुखो को (आ इत) चारो ओर से प्राप्त होओ।

भावार्थ—हे मित्रो! आप एक दूसरे के सहायक बनो और आपस मे विरोध न करते हुए मिलकर बैठो। उस जगत्पिता की अनेक प्रकार की स्तुति प्रार्थना उपासना करो। उस प्रभु के अत्यन्त कल्याणकारक गुणो का गान करो, ऐसे उसके गुणों का गान करते हुए, सब सुखो को और मोक्ष को प्राप्त होवोगे, उसकी भक्ति के बिना मोक्ष आदि सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

: १९ :

भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जंशतक्रतो।
यदिन्द्र मृडयासि नः॥ पू० २।२।८।९॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त प्रभो! (न) हमारे लिए

(भद्र भद्रम्) उत्तमोत्तम (इषम्) अन्न और (उर्जम्) रस को (आभर) प्राप्त कराओ, (शतक्रतो) बहु कर्मन् (यत्) जिससे (न) हमको (मृडयासि) सुखी करें।

भावार्थ—हे जगत्पित: ! हमे पुरुषार्थी बनाओ, जिससे हम अन्न, रस आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों को प्राप्त होकर सुखी हो। दूसरो के भरोसे रहते हुए, आलसी, दरिद्री बनकर आप ही अपने को हम दुःखी न बनावे। आपने हमे नेत्र, श्रोत्र, हस्त, पाद आदि इन्द्रिये उद्यमी बनने के लिए दी हैं, न कि आलसी बनने के लिए। आप उनकी ही सहायता करते हो, जो अपने पाँव पर आप खडे रहते हैं इसलिए पुरुषार्थी बनकर जब हम आपसे सहायता मागेंगे तब आप हमे अपनी आज्ञा मे चलने वाले जानते हुए अवश्य सब सुख देंगे।

. २० :

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ पू० ३।१।१।६ ॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (इन्दव) हमारे मन की सब वृत्तियाँ (त्वा आविशन्तु) आप मे अच्छी तरह से लग जावें (सिन्धव समुद्रमिव) जैसे नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं (त्वाम्) आपसे (न अतिरिच्यते) कोई बढकर नही है।

भावार्थ—हे दयानिधे परमात्मन् ! हमारे मन की सब वृत्तियाँ आप मे लग जावे। जैसे गगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियाँ बिना यत्न के समुद्र मे प्रवेश करती हैं। ऐसे ही हमारे मन की सब वृत्तियाँ, आपके स्वरूप मे लगी रहे। क्योकि आपसे बढकर न कोई ऐश्वर्यवान् है और न सुखदायक दयालु है। हम आपकी शरण मे आये है, हम पर कृपा करो, हमारा मन इधर-उधर की सब भटकनाओ को छोडकर, परमानन्द और शान्तिदायक आपके ध्यान मे मग्न हो जावे।

: २१ :

इन्द्रा नु पूषणा वयँ सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ पू० ३।१।१।६॥

शब्दार्थ—(वयम्) हम लोग (वाजसातये) धन, अन्न और बल प्राप्ति के लिए और (स्वस्तये) लोक परलोक मे अपने कल्याण, के लिए (सख्याय) प्रभु से मित्रता और उसकी अनुकूलता के लिए (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (नु) और (पूषणम् हुवेम्) पालन-पोषण करने वाले परमेश्वर की उपासना और सत्कार करें ।

भावार्थ—हे सर्वपालक पोषक प्रभो । जो श्रेष्ठ पुरुष आपकी उपासना और आपका ही सत्कार करते है, आप उनको धन, अन्न, आत्मिक बल कल्याण आदि सब कुछ देते हैं । जो लोग आपसे विमुख होकर दुराचार मे फसे है, उनको न तो यहा शान्ति वा सुख प्राप्त होता है, और न मरकर । इसलिए हमे वेदो के अनु-सार चलने वाले सदाचारी, अपने भक्त बनाओ, जिससे धन, अन्न, बल और कल्याण सब कुछ प्राप्त हो सके ।

: २२ :

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ पू० ३।१।१।१०॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! (त्वत्) आप से (उत्तर न कि) कोई उत्तम नही, (न ज्याय) न आपसे कोई बडा (अस्ति) है (वृत्रहन्) हे मेघनाशक सूर्य के तुल्य अविद्यादि दोषनाशक प्रभो ! ससारभर मे भी दूसरा कोई नही ।

भावार्थ—हे देव ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप प्रभु के बनाये हुए हैं और उन ब्रह्माण्डो मे रहने वाले समस्त प्राणी, आप जगन्नियन्ता की आज्ञा मे वर्तमान है, आपकी आज्ञा को जड व चेतन कोई नही उल्लघन कर सकता, इसलिए आपके बराबर भी कोई नही तो

आपसे श्रेष्ठ व बड़ा कहा से होगा ? सब ब्रह्माण्डों के और उनमे रहने वाले प्राणिमात्र के पालक, रक्षक, सुखदायक भी आप सदा सुखी रहते हैं ।

: २३ :

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुले ॥ ऋ० ३।१।३।६॥

शब्दार्थ—(विष्णु) व्यापक परमात्मा ने (इदम्) इस जगत् को (त्रेधा) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन प्रकार से (विचक्रमे) पुरुषार्थयुक्त किया है (अस्य) इस जगत् के (पासुले) प्रत्येक रज वा परमाणु मे (समूढम्) अदृश्य (पदम्) स्वरूप को (निदधे) निरन्तर धारण किया है ।

भावार्थ—आप विष्णु ने तीन लोक और लोकान्तर्गत अनन्त पदार्थ तथा सब प्राणियो के शरीर उत्पन्न किए हैं । इन सबको आपने ही धारण किया है और इन सब पदार्थों मे अन्तर्यामी होकर व्याप रहे हैं । कोई लोक वा पदार्थ ऐसा नही, जहा आप विष्णु व्यापक न हो, तो भी सूक्ष्म होने से हमारे इन चर्ममय नेत्रो से नही देखे जाते । कोई महात्मा ही अन्तर्मुख होकर आपको ज्ञान नेत्रो से जान सकता है, बहिर्मुख ससार के भोगो मे सदा लम्पट मनुष्य तो हज़ारो जन्मो मे भी आप जगन्नियन्ता परमात्मा को नही जान सकते ।

: २४ :

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ऋ० ३।१।५।२॥

शब्दार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर (अर्वत नर) अश्वादि पर चढ़ने वाले वीर नर (वृत्रेषु त्वाम्) शत्रुओ से घेरे जाने पर आपका ही सहारा लेते हैं, (काष्ठासु) सब दिशाओ मे (सत्पतिम् त्वाम्)

महात्मा सन्त जनो के पालक और रक्षक, आपको ही भजने हैं इसलिए (कारव) आपकी स्तुति करने वाले हम भी (वाजस्य सातौ) बल के दान निमित्त (त्वाम् इत् हि) केवल आपको ही (हवामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो ! सब दिशाओं मे सन्तजनो के रक्षक आप परमेश्वर का जैसे शत्रुओ से घेरे जाने पर बल प्राप्ति के लिए वीर पुरुष पुकारते हैं, ऐसे ही हम आपके सेवक भक्तजन भी काम क्रोधादि शत्रुओ से घेरे जाने पर, उनको जीतने के लिए आपसे ही बल मागते हैं। दयामय ! जो आपकी शरण आता है खाली नही जाता। हम भी आपकी शरण आये हैं हम अपने भक्तो को आपकी आज्ञा रूप वेदो मे दृढ विश्वासी और जगत् का उपकारक बनाओ, हम नास्तिक और स्वार्थी कभी न बनें, ऐसी कृपा करो।

२५

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव त न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि ॥ पू० ३।२।४।२॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत भयामहे) जिस से हम भय को प्राप्त हो (ततो नो अभय कृधि) इस से हम को निर्भय कीजिये। (मघवन्) हे ऐश्वर्ययुक्त प्रभो (तव) आप के (न) हम लोगो की (ऊतये) रक्षा के लिये (त शग्धि) उसे अभय करने को आप समर्थ हैं। हमारी याचना को पूर्ण कीजिए (मृध) हिंसक (द्विषो वि जहि) शत्रुओ को नष्ट कीजिये।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् प्रभो ! जहा-जहा से हमे भय प्राप्त होने लगे, वहा २ से हमे निर्भय कीजिये। हमे निर्भय करने को आप महासमर्थ है इसलिए आप से ही हमारी प्रार्थना है कि हमारे बाहर के शत्रु और विशेष करके हमारे भीतर के काम क्रोधादि सर्व शत्रुओ का नाश कीजिये जिस से हम निर्विघ्न हो कर आप के ध्यानयोग मे प्रवृत्त हुए मुक्ति को प्राप्त होवें।

: २६ :

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥
पू० ४।१।१।८॥

शब्दार्थ—(इन्द्र मघवन्) हे परम धनवान् परमेश्वर । आप (कदाचन स्तरी न असि) कभी भी हिंसक नही है, किन्तु (दाशुषे) विद्या धनादि दान करने वाले के लिये (उप उप इत् नु) समीप समीप ही शीघ्र (सश्चसि) कर्मफल पहुँचाते हैं (देवस्य ते) प्रकाश-युक्त आप का (दान भूत इत्) कर्मानुसारी दान पुनर्जन्म मे भी (नु पृच्यते) निश्चय करके सम्बद्ध होता है ।

भावार्थ—हे प्रभो ! प्राणिमात्र के कर्मों का फल देने वाले आप है, कभी किसी के कर्म को निष्फल नही करते न किसी निरपराध को दण्ड ही देते हैं । किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म मे सब प्राणिवर्ग आप की व्यवस्था से कर्मानुसारी फल को भोगने वाला बनता है ।

· २७ ·

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ
शूरमिन्द्रम् । हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्र मिदꣳ
हविर्मघवा वेत्विन्द्र । पू० ४।१।५।२॥

शब्दार्थ— (त्रातारम इन्द्रम्) पालक परमेश्वर (अवितारम् इन्द्रम्) रक्षक परमेश्वर (हवे हवे सुहवम्) जब-जब पुकारें तब तब सुगमता से पुकारने योग्य (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर परमेश्वर (शक्रम्) शक्तिमान् (पुरुहूतम्) वेदो मे सबसे अधिक पुकारे गए (इन्द्रम् हुवे) ऐसे परमेश्वर को मे पुकारता हू । (मघवा इन्द्र) अनन्त धन वाला परमेश्वर (इदम् हवि) इस पुकार को (नु वेतु) शीघ्र जाने ।

भावार्थ—आप प्रभु सब के रक्षक और पालक हैं आपकी भक्ति बडी सुगमता से हो सकती है, वेदो मे आप की भक्ति, उपासना करने के लिए बहुत ही उपदेश किए गये है। जो भाग्य-शाली आप की भक्ति प्रेम पूर्वक करते हैं, उनकी प्रार्थना पुकार को अति शीघ्र सुन कर उनकी सब कामनाओ को आप पूर्ण करते हैं।

: २८ :

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ ४।२।१।१॥

शब्दार्थ—(शतक्रतो) हे अनन्तकर्म और उत्तम ज्ञानयुक्त प्रभो ! (गायत्रिण) गाने मे कुशल (त्वा गायन्ति) आप का गान करते हैं, (अर्किण) पूजा मे चतुर (अर्कम् अर्चन्ति) पूजनीय आप को ही पूजते है (ब्रह्माण) वेदज्ञाता यज्ञादि क्रिया मे कुशल (वशम् इव) जैसे अपने कुल को (उद् येमिरे) उद्यम वाला करते हैं ऐसे आप की ही प्रशसा करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे आप के सच्चे पूजक, वेद विद्या को पढ कर अच्छे-गुणो के साथ अपने और औरो के वश को भी पुरुषार्थी करते हैं, वैसे अपने आप को भी श्रेष्ठ गुणयुक्त और पुरुषार्थी बनाते हैं। जो पुरुष आप से भिन्न पदार्थ की पूजा वा उपासना करते हैं, उन को उत्तम फल कभी प्राप्त नही हो सकता, क्योकि आप की ऐसी कोई आज्ञा नही है कि, आप के समान कोई दूसरा पदार्थ पूजन किया जावे, इसलिये हम सब को आप की ही पूजा करनी चाहिये।

: २९ :

अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥ ४।२।३।३॥

शब्दार्थ—(नर प्रियमेधास) हे पञ्च महायज्ञादि उत्तम कर्मों से प्यार करने वाले मनुष्यो ! (पुरम्) भक्तजनो के सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले (उत्) और (धृष्णु) सब को दबा सकने और आप किसी से न दबने वाले प्रभु का (अर्चत-अर्चत प्रार्चत) यजन करो, यजन करो, विशेष करके यजन करो। (पुत्रका) हे मेरे परम प्यारे पुत्रो ! (अर्चन्तु) अर्चन करो (इत्) अवश्य (अर्चत) यजन करो।

भावार्थ—कृपासिन्धो भगवन् ! आप कितने अपार प्यार और कृपा से हमे बारबार उपदेश अमृत से तृप्त करते हैं कि हे पुत्रो ! तुम पञ्चमहायज्ञादि उत्तम कर्मों से प्यार करो, मैं जो तुम्हारा सदा का सच्चा पिता हूँ, उस का सच्चे मन से पूजन करो। मैं समर्थ हू तुम्हारी सब कामनाओ को पूरा करूगा इस मेरे सत्य वचन मे दृढ विश्वास करो, कभी सन्देह न करो।

: ३० :

एतोन्विन्द्र७ स्तवाम सखायः स्तोम्य नरम्।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्॥ पू० ४।२।५।७॥

शब्दार्थ—(सखाय) हे मित्रो ! (एत उ) आओ आओ (य एक इत्) जो परमेश्वर एक ही (विश्वा कृष्टी) सब मनुष्यो को (अभ्यस्ति) तिरस्कृत (शासित) करने मे समर्थ है (स्तोम्यम् नरम्) स्तुति योग्य सब के नायक (इन्द्रम् नु स्तवाम्) परमेश्वर की शीघ्र हम स्तुति करे।

भावार्थ—हे प्यारे मित्रो ! आओ, आओ हम सब मिलकर उस सर्वशक्तिमान् सब के नियन्ता एक प्रभु की शीघ्र स्तुति करें, हमारा शरीर क्षणभगुर है, ऐसा न हो कि हमारे मन-की-मन मे रह जाय, इसलिये प्राकृत पदार्थों मे अत्यन्तासक्ति न करते हुए, उस स्तुति योग्य सब के स्वामी जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना मे अपने मन को लगा कर शान्ति को प्राप्त होवें।

: ३१ :

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ पू० ४।२।५।८॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मकृते विपश्चिते) सब मनुष्यो के लिये वेदो को उत्पन्न करने वाला ज्ञानस्वरूप और ज्ञान प्रदाता (विप्राय बृहते) मेधावी सर्वज्ञ और महान् (पनस्यवे) पूजनीय (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (बृहत् साम गायत) बडा साम गान करो ।

भावार्थ—हे सुज्ञ जनो ! जिस दयामय जगत्पिता ने हमारे लिये धर्म आदि चार पुरुषार्थों के साधक वेदो को उत्पन्न किया, ऐसा ज्ञानस्वरूप, ज्ञानदाता, महान् जो परम पूजनीय परमात्मा है, उस प्रभु की हम अनन्य भक्ति करें । उसी जगत्पिता की कपट छलादिको को त्याग कर वैदिक और लौकिक स्तोत्रो से बडी स्तुति करें, जिससे हमारा जीवन पवित्र और जगत् के उपकार करने वाला हो ।

: ३२ :

विश्वतोदावन्विश्वतो न आभर य त्वा शविष्ठमीमहे ॥
५।२।१।१॥

शब्दार्थ—(विश्वतो दावन्) हे सब ओर से दान करने वाले प्रभो ! (न विश्वत· आभर) हमारा सब ओर से पालन पोषण करो (य त्वा शविष्ठम्) जिस आप अत्यन्त बलवान् को (ईमहे) हम याचना करते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आप ही सबको सब पदार्थ देने वाले हो, आपके द्वार पर सब याचना करने वाले है, आप ही सब बलियो मे महाबलवान् हो आपके सेवक हम लोग भी आपसे ही मागते है । हमारा सबका हृदय आपके ज्ञान और भक्ति से भरपूर हो, व्यवहार मे भी हमारा अन्न वस्त्र आदिको से पालन पोषण

करो। हमारे सब देशभाई भोजन वस्त्र आदिको की अप्राप्ति से कभी दु.खी न हो सदा सब सुखी रहे, ऐसी कृपा करो।

: ३३ :

सदा गाव. शुचयो विश्वधायसः। सदा देवा अरेपसः॥ ५।२।१।६॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन्! (विश्वधायस) जो उत्तम पुरुष ससार मे सब सुपात्रो को अन्नवस्त्रादि दान से धारण पोषण करते हैं, (अरेपस) पापाचरण नही करते (देवा) दानादि दिव्यगुणयुक्त पुरुष हैं, वे (सदा शुचय) सदा पवित्र रहते है, जिस प्रकार (गाव) गौए सदा शुद्ध रहती है।

भावार्थ—हे प्रभो! जो तेरे सच्चे भक्त है, वे अपने तन, मन, धन को, सुपात्र, विद्वान्, जितेन्द्रिय, परोपकारी महात्माओ की सेवा मे लगा देते हैं। वस्तुत ऐसे दानशील और पापाचरण रहित सदा पवित्र, आप प्रभु के भक्त ही देव कहलाने के योग्य है। जैसे गौ, वा सूर्य की किरणे, वा वेदवाणी वा नदियो के पवित्र जल, ये सब पवित्र है और इनको परोउपकार के लिए ही आपने रचा है, ऐसे ही आपके भक्त भी परोउपकार के लिए ही उत्पन्न हुए हैं।

: ३४ :

सोम पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्या। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो॥ ६।१।४।५॥

शब्दार्थ—(सोम) सकल जगत् उत्पादक, सत्कर्मों मे प्रेरक, शान्त स्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा जोकि (मतीना जनिता) बुद्धियो का उत्पादक (दिवो जनिता) द्युलोक का उत्पादक (पृथिव्या जनिता) पृथिवी का उत्पादक (अग्नेः जनिता) अग्नि का उत्पादक

(सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक (इन्द्रस्य जनिता) बिजुली का उत्पादक (उत विष्णो जनिता जनयिता) और यज्ञ का उत्पादक है (पवते) ऐसा प्रभु धार्मिक विद्वान् महात्माओ को प्राप्त होता है।

भावार्थ—पृथिवी सूर्य आदि सब लोक लोकान्तर और सब ब्रह्माण्डो को उत्पन्न करने वाला महासमर्थ प्रभु अपने प्यारे धार्मिक और परोपकारी योगी भक्तजनो को प्राप्त होते हैं, अन्य को नही।

: ३५ :

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय।
अथादित्य व्रते वयन्तवानागसो अदितये स्याम ।६।३।१।४॥

शब्दार्थ—(आदित्य वरुण) हे सूर्यवत प्रकाशमान अविनाशी सर्वश्रेष्ठगुण सम्पन्न प्रभो! (अस्मत्) हमसे (उत्तमम् मध्यमम् अधमम् पाशम्) उत्तम मध्यम और निकृष्ट इन तीन प्रकार के बन्धनो को (उत् अव विश्रथाय) शिथिल कर दीजिये, (अथ वयम्) और हम लोग (तव व्रते) आपके नियम पालन मे (अदितये) दु ख और नाश रहित होने के लिये (अनागस स्याम) निरपराध होवें।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप अविनाशी सत्यकामादि दिव्यगुण-युक्त प्रभो! जो तेरी प्राप्ति और तेरी आज्ञा पालन मे कठिन से कठिन वा साधारण बन्धन हो उसे दूर करो। आपकी सृष्टि के नियम, जो हमारे कल्याण के लिये ही आपने बनाये हैं, उनके अनुसार हमारा जीवन हो। उन नियमो के पालने मे हमे किसी प्रकार का दु ख वा हानि न हो। हम सब अपराधो से रहित हुए तेरी भक्ति और तेरी आज्ञा पालन मे समर्थ हो।

: ३६ :

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम। यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ।६।६।१।६॥

शब्दार्थ—(अह देवेभ्य प्रथमजा अस्मि) मैं वायु बिजली आदि देवो से पूर्व ही विद्यमान हूँ और (ऋतस्य अमृतस्य नाम) सच्चे अमृत का टपकाने वाला हूँ (य मा ददाति) जो पुरुष मेरा दान करता है (म इत्) वही (एवम् आवत्) ऐसे प्राणियो की रक्षा करता है और जो किसी को न देकर आप ही खाता है (अन्नम् अदन्तम्) उस अन्न खाते हुए को (अहम् अन्नम् अधि) मे अन्न खा जाता हू अर्थात् नष्ट कर देता हू।

भावार्थ—परमेश्वर उपदेश देते है कि, हे मनुष्यो ! जब वायु आदि भी नही उत्पन्न हुए थे तब भी मैं वर्तमान था, मैं ही मोक्ष का दाता हू, जो आप ज्ञानी होकर दूसरो को उपदेश करता है, वह अपनी और दूसरे प्राणियो की रक्षा करता हुआ पुरुषार्थ भागी होता है जो अभिमानी होकर दूसरो को उपदेश नही करता, उसका मैं नाश कर देता हूँ। दूसरे पक्ष मे अलकार की रीति से अन्न कहता है—कि मैं ही सब देवो से प्रथम उत्पन्न हुआ हू। जो पुरुष महात्मा अतिथि आदिको को देकर खाता है, वह अपनी रक्षा करता है। जो असुर केवल अपना ही पेट भरता है, अतिथि आदिको को अन्न नही देता, उस कृपण नास्तिक दैत्य का मैं नाश कर देता हूँ।

: ३७ :

उपास्मै गायता नरः पवमाना येन्दवे।

अभि देवाँ इयक्षते॥ उ० १।१।१।१॥

शब्दार्थ—(नर) हे मनुष्यो ! (अस्मैपवमानाय) इस पवित्र करने वाले (इन्दवे) परमेश्वर (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानो को लक्ष्य करके, अपना यजन करना चाहते हुए के लिए (उपगायत) उपगान करो।

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे कोई धर्मात्मा दयालु पिता, अपने पुत्र के लिए, अनेक उत्तम वस्तुओ का सग्रह करके, मन मे चाहता

है कि, मेरा पुत्र योग्य बन जाए, तब मैं इसको उत्तम वस्तुओ को देकर सुखी करूँ। ऐसे ही आप पतित पावन परम दयालु जगत्पिता भी चाहते है कि यह मेरे पुत्र, धर्मात्मा होकर मेरा ही पूजन करे, तब मैं अपने प्यारे इन पुत्रो को अपना यथार्थ ज्ञान देकर, मोक्षादि अनन्त सुख का भागी बनाऊ।

३८ :

स न॰ पवस्व श गवे श जना शमर्वते।
श॒राजन्नोषधीभ्य ॥ उ० १।१।१।३॥

शब्दार्थ—(राजन्) हे प्रकाशमान प्रभो! (स न) वह आप हमारे (गवे श पवस्व) गौ अश्वादि पशुओ के लिए सुख की वर्षा करे (श जनाय) हमारे पुत्र भ्राता आदिको के लिए सुख वर्षा (अवते शम्) हमारे प्राण के लिए सुख वर्षा। (ओषधीभ्य शम्) हमारी गेहूँ, चावल आदि ओषधियो के लिए सुख वर्षा करो।

भावार्थ—हे महाराजाधिराज परमात्मान्! आप हमारे लिए गौ, अश्वादि उपकारक पशुओ को देकर और उन पशुओ को सुखी करते हुए हमारी रक्षा करे। ऐसे ही हमारी पुत्र पौत्रादि सतान तथा हमारे प्राण सुखी करे, और हमारे लिए गेहूँ चावल आदि उत्तम अन्न उत्पन्न कर हमे सदा सुखी करे।

३९ :

त त्वा समिद्भिरगिरो घृतेन वर्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ उ० १।१।४।२॥

शब्दार्थ—(अगिर) हे प्रकाशमान (यविष्ठ्य) अति बलयुक्त प्रभो! (त त्वा) वेदो मे प्रसिद्ध आपको (समिद्भि) ध्यान आदि साधनो से तथा (घृतेन) आप मे स्नेह प्रेमभक्ति से (वर्धयामसि) अपने हृदय मे प्रत्यक्ष जाने और आप (बृहत् शोच) बहुत प्रकाश करें।

भावार्थ—हे परमात्मन्! जो आपके प्यारे भक्त जन, अपने हृदय मे आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति उपासना मे तत्पर हैं, उनको ही आपका यथार्थ ज्ञान होता है, उनके हृदय मे ही आप अच्छी तरह से प्रकाशित हुए अविद्यादि अन्धकार को नष्ट कर उन्हे सुखी करते हैं, आपकी भक्ति के बिना तो प्रकृति मे फंसकर आपकी वैदिक आज्ञा मे विरुद्ध चलते मूर्ख ससारी लोग, अनेक नीच योनियो मे भटकते-भटकते सदा दुखी ही रहते हैं।

· ४०

त्व न इन्द्र वाजयुस्त्व गव्यु शतक्रतो।
त्व हिरण्ययुर्वसो ॥ उ० १।२।२।३॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्व न) आप हमारे लिए (वाजयु) अन्न की इच्छा वाले हो (शतक्रतो) हे अनन्तज्ञान और शोभनीय कर्म वाले प्रभो! (त्व गव्यु) आप हमारे लिए गौ आदि उपकारक पशुओ की इच्छा वाले और (वसो) हे सबमे बसने और सबको अपने मे वास देने वाले सर्वाधिष्ठान परमात्मन्! (त्व हिरण्ययु) आप हमारे लिए सुवर्णादि धन चाहने वाले हूजिये।

भावार्थ—हे जगत्पते परमेश्वर! आप हमारे और हमारे देशी सब भ्राताओ के लिए गेहूँ चावल आदि अन्न, गौ-अश्व आदि उपकारक पशु, सुवर्ण-चादी आदि धन की इच्छा वाले हूजिये। किसी वस्तु की न्यूनता से हम सब दुखी वा दरिद्री न रहे, किन्तु हमारे सब भ्राता, सब प्रकार के सुखो से सम्पन्न हुए निश्चिन्त होकर आपकी भक्ति मे अपने कल्याण के लिए लग जाये।

· ४१ ·

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः। उ० १।२।३।३॥

शब्दार्थ—हे प्रभो ! (देवा) विद्वान् लोग (सुन्वन्तम्) अपना साक्षात् कराते हुए आपकी (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) निद्रा के लिए इच्छा नहीं करते (अतन्द्रा) निरालस होकर (प्रमादम् यन्ति) अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप वेद द्वारा हमें उपदेश दे रहे हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप लोगों को योग्य है कि अति निद्रा, आलस्य, विषयासक्ति आदि मेरी भक्ति और ज्ञान के विघ्नों को जीतकर, मेरी इच्छा करो । क्योंकि, अतिनिद्राशील आलसी और विषयासक्तों को मेरी भक्ति वा ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए इन सब विघ्नों को दूर कर, मेरी वैदिक आज्ञा के अनुकूल अपना जीवन पवित्र बनाते हुए सदा सुखी रहो ।

: ४२ :

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ।। उ० २।१।१६।२।।

शब्दार्थ—हे इन्द्र ! (ते सख्य) आपकी मैत्री में हम (वाजिन) अन्न और बल युक्त हुए (मा भेम) किसी से न डरें । (शवसस्पते) हे बलपते ! (जेतारम्) सबको जीतने वाले (अपराजितम्) और किसी से भी न हारने वाले (त्वाम् अभिप्रनोनुम) आपको हम बारम्बार प्रणाम और आपकी ही स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—हे दयासिन्धो भगवन् ! जो आपकी शरण आते हैं, उनको किसी प्रकार का भय नहीं प्राप्त होता क्योंकि आप महाबली और सबको जीतने वाले हैं, तो आपकी शरण में आए भक्तों को डर किसका रहा । इसलिए अभय पद की इच्छा वाले हमको इस लोक और परलोक में अभय कीजिये ।

: ४३ :

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हित ।। उ० २।२।४।३।।

शब्दार्थ—हे शान्तिदायक प्रभो ! (पुनान) अपवित्रो को पवित्र करने वाले (द्युतान) प्रकाश करने वाले (वाजिभि) प्राणायामो के साथ (हित) ध्यान किये हुए आप (देववीतये) विद्वान् भक्तो को प्राप्त होने के लिए (इन्द्रस्य) इन्द्रियो मे अधिष्ठाता जीव के (निष्कृतम्) शुद्ध किये हुए अन्त करण स्थान मे (याहि) साक्षात् रूप से प्राप्त हूजिये ।

भावार्थ—हे शुद्ध स्वरूप परमात्मन् ! आप शरणागत अपवित्रो को भी पवित्र करने और अज्ञानियो को भी ज्ञान का प्रकाश देने वाले हो, प्राणायाम, धारणा, ध्यानादि साधनो से जो आपके विद्वान् भक्त आपके साक्षात् करने के लिए प्रयत्न करते है, उनके शुद्ध अन्त करण मे प्रत्यक्ष होते हो ।

: ४४ .

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वꣳसूर्य्यमरोचय ।
विश्वकर्मा विश्व-देवो महाँ असि ॥ उ० ३।२।२२।२॥

शब्दार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम् अभिभू असि) आप सब [पर शासन करने] को दबा सकने वाले हो, (त्वम् सूर्यम् अरोचय) आप ही सूर्य को प्रकाश देते हो (विश्वकर्मा) सब जगतो के रचने वाले (विश्वदेव) सबके प्रकाशक देव और (महान् असि) सर्वव्यापी महादेव हे ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप सर्वशक्तिमान् होने से सबको दबाने वाले है । सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् आदि सब प्रकाशो के प्रकाशक भी आप हैं, आपके प्रकाश के बिना यह सूर्य आदि कुछ भी प्रकाश नही कर सकते, इसलिए आपको ज्योतियो का ज्योति सच्छास्त्रो म वर्णन किया है । सब ब्रह्माण्डो के रचने वाले और सूर्य आदि सब देवो के देव होने से आप महादेव है ।

: ४५ .

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनन्दिव. ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ उ० ३।२।२२।३॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र ! (ज्योतिषा विभ्राजत्) आप अपने ही प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हुए (दिव रोचनम्) ऊपर के द्युलोक को भी प्रकाशित कर रहे है (स्व अगच्छ) और अपने आनन्द स्वरूप को प्राप्त हो रहे है (देवा ते सख्याय) विद्वान् लोग आपकी मित्रता वा अनुकूलता के लिए (येमिरे) प्रयत्न करते है ।

भावार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! आप अपने ही प्रकाश से ऊपर के द्युलोक आदि तथा नीचे के पृथिवी आदि लोको को प्रकाशित कर रहे है । आप आनन्द स्वरूप है, आपके परम प्यारे और आपके ही अनन्यभक्त विद्वान् देव, आपके साथ गाढी मित्रता के लिए सदा प्रयत्न करते हैं, आपके मित्र बनकर मृत्यु से भी न डरते हुए, आपके स्वरूपभूत आनन्द को प्राप्त होते हैं ।

: ४६ :

त्व हि न· पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ उ० ४।२।१३।२॥

शब्दार्थ—हे (वसो) अन्तर्यामी रूप से सब मे वास करने वाले प्रभो ! (शतक्रतो) हे जगतो के उत्पति स्थिति प्रलय आदि-कर्त ! (त्व हि न पिता) आप ही हमारे पालक और जनक हैं (त्व माता) हमारी मान करने वाली सच्ची माता भी आप ही (बभूविथ) थे और अब भी है, (अथ) इसलिये आप से ही (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम मागते है ।

भावार्थ—हमे योग्य है कि जिस वस्तु की इच्छा हो आप से मागे । आप अवश्य देगे, क्योकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे लिये ही

आपने बनाये हैं। आप तो आनन्द-स्वरूप हो किसी पदार्थ की भी अपने लिये कामना नही करते, यदि कोई वस्तु मागने पर भी हमे नहीं देते, तो वह वस्तु हमे हानि करने वाली है, इसलिये नही देते। हम सब को जो सुख मिले और मिल रहे हैं, वह सब आपकी कृपा है, हम आपकी भक्ति मे मग्न रहेगे तो, कोई ऐसा सुख नही जो हमे न मिल सके।

: ४७ :

त्वाᳬशुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत।
स नो रास्व सुवीर्यम्॥ उ० ४।२।१३।३॥

शब्दार्थ—(शष्मिन्) हे बलवान् प्रभो! (पुरुहूत) बहुतो से पुकारे गये (सहस्कृत) बल देने वाले (वाजयन्त त्वाम्) बल देते हुए आपकी (उपब्रुवे) मैं स्तुति करता हूं (स न) वह आप हमारे लिये (सुवीर्यम् रास्व) उत्तम बल का दान करो।

भावार्थ—हे महाबलिन् बलप्रदात! हम आपके भक्त आपकी ही उपासना करते हैं, आप कृपा कर हमे आत्मिक बल दो, जिससे हम लोग, काम क्रोध आदि दुःखदायक शत्रुओ को जीत कर, आपकी शरण मे आवें। आपकी शरण मे आकर ही हम सुखी हो सकते हैं, आपकी शरण मे आये बिना तो, न कभी कोई सुखी हुआ और न होगा।

: ४८ :

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँ पाहि शृणुही गिर।
रक्षा तोकमुतत्मना॥ उ० ५।१।१८।३॥

शब्दार्थ—(यविष्ठ) हे अत्यन्त बलयुक्त प्रभो! (दाशुष) दानशील (नॄन् पाहि) मनुष्यो की रक्षा कीजिये (गिर शृणुहि) उनकी प्रार्थना रूपी वाणियो को सुनिये (उत तोकम्) और उन के पुत्रादि सन्तान की (त्मना रक्षा) अपने अनन्त सामर्थ्य से रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् जगदीश्वर ! आप कृपा कर, दान-शील धर्मात्माओ की और उनके पुत्र-पौत्रादि परिवार की रक्षा कीजिये, जिससे वे दाता धर्मात्मा परम प्रसन्न हुए, सुपात्रो को अनेक पदार्थों का दान देते हुए ससार का उपकार करें और आपकी कृपा के पात्र सच्चे प्रेमी भक्त बन कर दूसरो को भी प्रेमी भक्त बनावें ।

: ४९ :

इन्द्रमीशानमोजसा भि स्तोमैरनूषत । सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ उ० ५।१।२०।३॥

शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (ओजसा ईशानम्) नपने अद्‌भुत बल से सब पर (शासन) हकूमत करने वाले महा ऐश्वर्य-वान् प्रभु की (स्तोमै) स्तुति बोधक वेदमन्त्रो से (अभि अनूषत) सब प्रकार से स्तुति करो, (यस्य सहस्रम्) जिस प्रभु के हज़ारो (उत वा भूयसी) अथवा हज़ारो से भी अधिक (रातय सन्ति) दिये हुए दान है ।

भावार्थ—जिस दयालु ईश्वर के दिये हुए शुद्ध वायु,जल, दुग्ध, फल, फूल, वस्त्र, अन्न आदि हज़ारो और लाखो पदार्थ हैं, जिन को हम निशि दिन उपभोग मे ले रहे हैं, इसलिये हमे योग्य है कि उस परम पिता जगदीश की, पवित्र वेद के मन्त्रो से सदा स्तुति करे और उसी को अनेक धन्यवाद देवे, जिस से हमारा कल्याण हो ।

· ५० ·

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ उ० ६।२।१।१॥

शब्दार्थ—(अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ के (उपप्रयन्त) समीप जाते हुए हम (आरे) दूरस्थो की (च) और (अस्मे) समीपस्थो की (शृण्वते अग्नये) सुनते हुए ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिये

(मन्त्र वोचेम) स्तुतिरूप मन्त्र को उच्चारण करें।

भावार्थ—हे विभो ! हम से दूरवर्ती और समीपवर्ती सब प्राणिमात्र की पुकार को, आप सदा सुनते है, इसलिये हम सब को योग्य है कि आप के रचे वेदो के पवित्र स्तुतिरूप सूक्त और मन्त्रो का, वाणी से पाठ, यज्ञ होमादिको के आरम्भ मे अवश्य किया करें और मन से आप का ही ध्यान और उपासना सदा किया करे।

५१

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः। शुद्धो रयिन्निधारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥उ० ६।२।६।२॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! (शुद्ध न आगहि) सदा पवित्र स्वरूप आप हम को प्राप्त होवे। (शुद्ध शुद्धाभि ऊतिभि) पावन आप अपनी पावनी रक्षाओ से हमारी रक्षा करे। (शुद्ध रयिम् निधारय) पावन आप निष्कपट व्यवहार से प्राप्त पवित्र धन को धारण करावे। (सोम्य) हे अमृतस्वरूप प्रभो ! (शुद्ध ममद्धि) पावन आप हम पर प्रसन्न होवे।

भावार्थ—हे दीनदयालो भगवन् ! आप सदा पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाले हो, हम को पवित्र बनाओ। खान-पान आदि व्यवहार के लिये हमे पवित्र धन दो, जिससे हम पवित्र रहते हुए आपके प्यारे सच्चे भक्त बने और अपने सहवासी भाइयो को भी पवित्र सच्चे भक्त बनाते हुए सदा सुखी रहे।

: ५२ .

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिँ शुभ्रो रत्नानि दाशुषे। शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजँसिषाससि ॥उ० ६।२।६।३॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र ! (शुद्ध हि) जिस से आप पावन है, इसलिये (रयिम् न) हमे पवित्र धन दो। (शुद्ध) आप पवित्र है, (दाशुषे रत्नानि) दानी पुरुष के लिये पवित्र स्वर्ण, रजत,

मणि, मुक्ता आदि रत्न दो। (शुद्ध) आप शुद्ध हैं, इसलिये (वृत्राणि जिघ्नसे) अशुद्ध दुष्ट राक्षसो को नाश करते हैं, (शुद्ध वाजम् सिषासमि) और पवित्र आप पवित्र अन्न को प्राणी के कर्म अनुसार देना चाहते है।

भावार्थ – हे पतित पावन भगवन! आप पावन है हमे पवित्र धन दो, पुण्यात्मा, दानशील, धर्मात्माओ के लिये भी पवित्र मणि, हीरा, मुक्ता आदि रत्न दो। आप सदा पवित्र स्वरूप है, अपवित्र दुष्ट पापी राक्षसो का नाश कर जगत् मे पवित्रता फैला दो। आप अपने प्यारे भक्तो को पवित्र अन्न आदि दिया चाहते और उनको पवित्रात्मा बनाते है।

: ५३ :

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः। विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥उ० ६।३।७।१॥

शब्दार्थ—(सत्पते) हे सत्पुरुषो के रक्षक और पालक (इन्द्र) परमेश्वर! (नः) हमारी (अद्य-अद्य) आज २ और (श्वः श्वः) कल २ (परे) और परले दिन ऐसे ही (विश्वा अहा) सब दिन (त्रास्व) रक्षा करो (च) और (नः जरितृन्) हमारी आप की स्तुति करने वालो की (दिवा च नक्तं रक्षिषः) दिन मे और रात्रि मे भी सदा रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे सत्पुरुष महात्माओ के रक्षक और पालक इन्द्र! आप हमे श्रेष्ठ बनाओ, हमारी सब दिन और रात्री मे सदा रक्षा करो, आपसे सुरक्षित होकर, आपके भजन स्मरण स्तुति प्रार्थना मे और आपके वेद प्रचार मे हम लग जावें, जिससे कि हमारा और हमारे सब भ्राताओ का कल्याण हो।

: ५४ :

उत नः प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ उ० ६।३।६।१॥

शब्दार्थ—(उत न प्रियासु प्रिया) परमेश्वर की स्तुति के लिए हमारी प्यारियो से अति प्यारी मिठी रस-रस युक्त (सप्त-स्वसा) गायत्री आदि सात छन्दो जाति रूप बहनो वाली (सुजुष्टा) अच्छे प्रकार अभ्यास से सेवन की गई (स्तोम्या सरस्वती भूत्) प्रशसनीय वाणी होवे ।

भावार्थ—हे वेदगम्य प्रभो ! हम पर दया करो कि हमारी वाणी अति प्रिय, मधुर और वेदो के गायत्री आदि छन्दो वाले सूक्त तथा मन्त्रो से अभ्यस्त और प्रशसनीय हो । जब हम सब आपकी स्तुति प्रार्थना करने लगे, तो आपकी महिमा और स्वरूप के निरूपण करने वाले सैंकडो मन्त्र हमारे कण्ठाग्र हो, उनके पाठ और अर्थ ज्ञानपूर्वक, हम आपकी स्तुति प्रार्थना करे ।

: ५५ :

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः । सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु य विश्वे मदन्त्यूमाः ॥

उ० ६।३।१७।१॥

शब्दार्थ—(तत् भवनेषु ज्येष्ठ इत् आस) वह प्रसिद्ध सब भुवनो मे अत्यन्त बडा ब्रह्म ही था (यत उग्र) जिस ब्रह्म रूप निमित्त कारण से तेजस्वी (त्वेष नृम्ण) प्रकाश बल वाला सूर्य (जज्ञे) उत्पन्न हुआ, (जज्ञान) उत्पन्न हुआ ही सूर्य (सद्य') शीघ्र (शत्रुन् निरिणाति) शत्रुओ को नष्ट करता है (यम् अनु) जिस सूर्य के उदय होने के पश्चात् (विश्वे ऊमा मदन्ति) सब प्राणी हर्ष पाते हैं ।

भावार्थ—हे जगत्पित ! जब यह ससार उत्पन्न भी नही हुआ था, तब सृष्टि के पूर्व भी आप वर्तमान थे । आपसे ही यह महातेजस्वी तेज पुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुआ है, मनुष्य के जो शत्रु, सिह, सर्प, वृश्चिक आदि विषधारी जीव हैं, उनको यह सूर्य अपने

उदय मात्र से भगा देता है। ज्वर आदिकों के कारण जो सूक्ष्म जन्तु हैं, उनको मार भी डालता है। ऐसे सूर्य के उदय होने पर मनुष्य पशु, पक्षी आदि सब प्राणी बहुत ही प्रसन्न होते हैं।

: ५६ :

न ह्यां३ऽग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
न की राया नैवथा न भन्दना ॥ उ० ७।१।८।३॥

शब्दार्थ— (अग) हे प्रिय इन्द्र ! (पुरा चन) पूर्वकाल मे तथा वर्तमान काल मे भी (न कि राया) न तो धन से (न एवथा) न रक्षा से (भन्दना) और न स्तुत्यपन से (त्वत् वीरतर) आपसे अधिक अत्यन्त वीर पुरुष कोई (नहि जज्ञे) नही उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—हे परम प्यारे जगदीश ! आप जैसा अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी, न कोई पूर्वकाल मे हुआ, न अब कोई है, और न होगा। आप सबकी रक्षा करने वाले, सब धन के स्वामी और स्तुति के योग्य है। जो भद्र पुरुष, आपको ही महाबली, धन के मालिक और सबके रक्षक जानकर, आपकी स्तुति प्रार्थना करते और आपकी वैदिक आज्ञा अनुसार चलते है, उनका ही जन्म सफल है।

: ५७ :

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ उ० ७।२।१।२॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानरूप ज्ञानप्रद प्रभो ! (त्व जनानाम् जामि) आप प्रजा जनो के बन्धु (प्रिय मित्र) सदा प्यारे मित्र (सखा) चेतनता से समान नाम वाले (सखिभ्य ईड्य असि) हम जो आपके सखा है उनमे आप सदा स्तुति के योग्य हैं।

भावार्थ—हे दयानिधे ! आप हम सबके सच्चे बन्धु और अत्यन्त प्यार करने वाले मित्र हैं। ससार मे जितने बन्धु वा मित्र

हैं, ससारी लोग जब स्वार्थ कुछ नही पाते, तब इनमे कोई हमारा बन्धु वा मित्र नही रहता। केवल एक आप ही हैं जो बिना स्वारथ के हम पर सदा अनुग्रह करते हुए सदा बन्धु वा मित्र बने रहते है। इसलिए हम सबसे आप ही सदा स्तुति के योग्य हैं अन्य कोई भी नही।

५८

वृषो अग्नि· समिध्यतेऽश्वो न देववाहन· ।
तँहविष्मन्त ईडते ॥ उ० ७।२।२।२॥

शब्दार्थ— (वृष) प्रभु सुखो की वर्षा करने वाले (उ) निश्चय (देववाहन) पृथिवी, वायु आदि सबके आधार होने से वाहन (अश्व) प्राण के (न) समान वर्तमान (अग्नि) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (समिध्यते) हृदय मे अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है (तम्) आपकी (हविष्मन्त ईडते) भक्ति रूपी भेट वाले महात्मा लोग स्तुति करते हैं।

भावार्थ—हे सर्वाधार परमात्मन्! आप ही पृथिवी वायु आदि सब देव और सब लोको के आधार और सबके सुख दाता सबके जीवन के हेतु, प्राणवत परम प्यारे सबके हृदय मे अन्तर्यामी होकर वर्तमान हैं। हम सबको योग्य है कि ऐसे परम पूज्य परम-दयालु जगत्पति आपकी, अति प्रेम से भक्ति करे, जिससे हमारा सबका यह मनुष्य जन्म पवित्र और सफल हो।

: ५९ .

न षण त्वा वय वृषनवृषण समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यत बृहत् ॥ उ० ७।२।२।३॥

शब्दार्थ—(वृषन्) हे कामना के पूरक अग्ने (वृषण) तेरी भक्ति से नम्र और आर्द्रचित्त (वयम्) हम आपके सेवक (बृहत् दीद्यतम्) बहुत ही प्रकाशमान (वृषणम्) कामनाओ के पूरक

(त्वाम् समिधीमहि) आपका अपने हृदय मे ध्यान धरते हैं।

भावार्थ—हे ज्ञान स्वरूप ज्ञान-प्रदात ! आप अपने भक्तो की सब योग्य कामनाओ को पूर्ण करते है। हम आपके प्यारे बच्चे, नम्रता से आपकी भक्ति करने के लिए, उपस्थित हुए है, आपका ही अपने हृदय मे ध्यान धरते है। आप हम पर कृपा करे कि, हमारा मन सब कल्पना को छोड आपके ही ध्यान मे, अच्छी प्रकार लग जावे, जिससे हमको शान्ति और आनन्द प्राप्त हो।

६० :

मन्द्रꣳहोतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीडे स उ श्रवत्॥ उ० ७।२।३।३॥

शब्दार्थ—(मन्द्रम्) हर्षदायक (होतारम्) कर्म फल प्रदाता (ऋत्विजम्) सब ऋतुओ मे यजनीय पूजनीय (चित्रभानुम्) विचित्र प्रकाशो वाले (विभावसुम्) अनक प्रकार के प्रकाश के धनी ऐसे (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ (स) वह प्रभु (उ) अवश्य (श्रवत्) मेरी की हुई स्तुति को सुने।

भावार्थ—मनुष्य मात्र को परमात्मा का यह उपदेश है कि तुम लोग मेरी स्तुति प्रार्थना उपासना किया करो। जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को उपदेश करते है कि तुम पिता वा गुरु के विषय मे इस प्रकार से स्तुति आदि किया करो, वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने भी, हमको अपनी अपार कृपा और प्यार से सब व्यवहार और परमार्थ का वेद द्वारा उपदेश किया है, जिससे हम सदा सुखी होवें। इसलिए हम, उस आनन्ददायक और कर्मफल प्रदाता सदा पूजनीय स्वप्रकाश परमात्मा की स्तुति करते है।

६१ :

इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके॥ ७।३।६।१॥

शब्दार्थ—(वरुण) हे सबसे श्रेष्ठ परमात्मन् ! आप (अव) अब (अवस्यु) अपनी रक्षा और आपके यथार्थ ज्ञान की इच्छा वाला मैं (त्वाम् आचके) आपकी सर्वत्र स्तुति करता हूँ (मे इम हवम् श्रुधी) आप मेरी इस स्तुति समूह को सुनकर स्वीकार करो और (मृडय) हमे सुख दो।

भावार्थ—हे प्रभो ! जो आपके सच्चे प्रेमी भक्त है, उनकी प्रेमपूर्वक की हुई प्रार्थना को, आप सर्वान्तर्यामी, अपनी सर्वज्ञता से ठीक-ठीक सुनते है। अपने प्यारे भक्तो पर प्रसन्न हुए उनको अपना यथार्थ ज्ञान और सर्व सुख प्रदान करते हैं। हम भी आपकी प्रार्थना उपासना करते है इसलिए हमे भी अपना यथार्थ ज्ञान देकर सदा सुखी करो।

. ६२ .

उप न. सूनवो गिर शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु न.॥ ७।३।१३।१॥

शब्दार्थ—(ये अमृतस्य सूनव) जो अमर परमेश्वर के पुत्र हैं (न गिर उपश्रृवन्तु) हमारी वाणियो को सुनें (न) हमारे लिए (सुमृडीका भवन्तु) सदा सुखदायक हो।

भावार्थ—हे सज्जन सुखद ! आपकी कृपा के बिना, आप अजर अमर प्रभु के प्यारे पुत्र महात्मा सन्त जन नही मिलते। दयामय ! हम पर दया करे, कि आपके प्यारे सन्त जनो का समागम हमे मिले, उन महात्माओ की श्रद्धा भक्ति से सेवा करते हुए, उनसे ही सदुपदेश सुन अपने सदेहो को दूर कर सदा सुखी रहे।

. ६३ .

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्य कृत पश्येम तुर्वश यदुम्॥ उ० ७।३।१७।१॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर ! (उग्रस्य तव सख्ये) अति बलवान्

आपकी मित्रता मे (मा भेम) हम किसी से न डरे (मा श्रमिष्म) न थकें (ते वृष्ण) कामना पूरक आपका (महत्) बडा (अभि-चक्ष्यम्) सर्वत स्तुति योग्य (कृतन) कर्म है आपकी मित्रता से (तुर्वशम्) समीप स्थित (यदुम् पश्येम) मनुष्य को हम देखें ।

भावार्थ—हे परमात्मन्! ससार मे यह प्रसिद्ध है, कि जिसका कोई राजा आदि बलवान् मित्र बन जाता है, तब वह मनुष्य साधारण मनुष्य से नही डरता, प्राय उसके अधीन सब मनुष्य हो जाते हैं। ऐसे ही जो पुरुष, प्रबल प्रतापी आप प्रभु की शरण मे आ गये और आपका ही अपना मित्र बनाते है, वे किसी से भी नही डरते उलटा सबको अपना भाई जान, सबके हित मे लगे रहते है, ऐसे सच्चे भक्तो की सब कामनाओ को आप पूर्ण करते है।

६४

यस्याय विश्व आर्यो दास शेवधिपा अरि ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवी रवी तुभ्येत्सो अज्यते रयि ॥

उ० ७।३।१६।१॥

शब्दार्थ—(यस्य अय विश्व आर्य दास) जिस परमेश्वर का यह सब आयगण सेवक भक्त (शेवधिपा) वेद निधि का रक्षक और (अरि) प्रापक है उस (अर्ये) स्वामी (रुशमे) नियन्ता (पवी-रवी) वेदवाणी के पिता परमेश्वर मे (तिर) छिपा हुआ (चित्) भी (स रयि) वह वेद का धन (तुभ्य) तुझ भक्त के लिये (इत् अज्यते) अवश्य प्रकट किया जाता है।

भावार्थ—ससार मे दो प्रकार के मनुष्य है, एक अनार्य अर्थात् अनाडी, वेद विरुद्ध सिद्धान्त को कहने और मानने वाले। दूसरे आर्य जो वेदानुसार सिद्धान्त को मानने वाले है। जो आर्य हैं वे वेदनिधि के रक्षक और प्रभु के सेवक भक्त हैं, वेदरूपी गुप्त महाधन, को उपयोग मे लाकर आर्य लोग सदा सुखी रहते है।

: ६५ :

इन्द्र वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्य ।
अस्माकमस्तु केवल· ॥ उ० ८।१।२।१॥

शब्दार्थ—(विश्वत) सब पदार्थों वा (जनेभ्य) सब प्राणियो से (परि) उत्तम गुणो के कारण श्रेष्ठतर (इन्द्र हवामहे) परमेश्वर को बारम्बार अपने हृदय मे हम स्मरण करते है । (व) आपके (अस्माकम्) और हमारे सब लोगो के (केवल) चेतन मात्र स्वरूप ही इष्ट देव और पूजनीय हैं ।

भावार्थ—हे चेतन स्वरूप प्रभो ! आप परमैश्वर्य वाले चेतन मात्र प्रभु की ही हम उपासना करते है । आप से भिन्न किसी जड वा चेतन मनुष्य, वा किसी प्राणी को अपना इष्टदेव और पूजनीय नही मानते, क्योकि आप ही सब देवो के देव चेतना-स्वरूप अधिपति है । आपकी ही उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार पुरुषार्थ प्राप्त होते है, आप को छोड इधर-उधर भटकने से तो, हमारा दुर्लभ यह मनुष्य देह व्यथ चला जायगा, इसलिये हम सब, आपको ही अपना पूज्य और उपासनीय इष्ट-देव जान आप की उपासना और आपकी वेदोक्त आज्ञा पालने मे मन को लगा कर मनुष्य देह को सफल करते है ।

: ६६

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ उ० ८।२।५।२॥

शब्दार्थ—जिस कारण यह परमेश्वर (अदाभ्य) किसी से मारा नही जा सकता, (गोपा) सब ब्रह्माण्डो की रक्षा करने वाले सब जगतो को (धारयन्) धारण करने वाले (विष्णु) सर्वत्र व्यापक ईश्वर ने (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनो पृथिवी, अन्तरिक्ष द्युलोको का विधान किया हुआ है । (अतो धर्माणि धारयान्) इस कारण

सब धर्मों को वेद द्वारा धारण कर रहा है ।

भावार्थ—हे विष्णो ! आपने ही वेद द्वारा अग्निहोत्रादि धर्मों को तथा सृष्टि के सब पदार्थों को धारण कर रखा है, आप के धारण वा रक्षण के बिना, किसी धर्म वा पदार्थ का धारण वा रक्षण नही हो सकता । आप ही सब लोको, धर्मों और जगत् व्यवहारो के उत्पादक, धारक और रक्षक हैं । ऐसे सर्वशक्तिमान् आप को, जान और ध्यान करके ही हम सुखी हो सकते है अन्यथा कदापि नही ।

: ६७ :

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्त सखाय. ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ उ० १।२।३।१॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मन् । (सखाय) मित्र वर्ग (कण्वा) मेधावी (त्वा) आपका (उक्थेभि) वेद मन्त्रो से (जरन्ते) पूजन करते है और (त्वा यन्त) आप को चाहते हुए (तदिदर्था.) अनन्य भक्त (वयम्) हम (उ) भी आप को ही पूजते है ।

भावार्थ—हे परम पूजनीय परमेश्वर ! ससार मे महाज्ञानी, सब के मित्र, महानुभाव महात्मा लोग, वेदो के पवित्र मन्त्रो से आप का पूजन करते हैं । दयामय ! हम भी सासारिक भोगो से उपराम हो कर आपको ही चाहते हुए आपकी शरण मे आते है और आपको अपना इष्ट देव जानकर आपकी भक्ति मे अपने मन को लगाते हैं ।

: ६८ :

इन्द्र स्थातर्हरीणा न किष्ट पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ उ० ८।२।१०।२॥

शब्दार्थ— (हरीणा स्थात) हे सूर्यकिरणादि तजो के स्थापक इन्द्र परमेश्वर ! (ते पूर्व्य स्तुतिम्) आपकी सनातन वेदोक्तस्तुति

को कोई (नकि उदानश) नही पाता (शवसा न भन्दना) न तो बल से, और न तेज से ।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप सूर्य चन्द्रादि सब ज्योतियो के उत्पादक और सब प्राणियो के सुख के लिय इन सूर्यादिको को अपने २ स्थानो मे स्थापन करने वाले हे । आपकी महिमा अपार है और अपार ही आप की स्तुति है, उस का पार जानने का किस का बल वा शक्ति है, अर्थात् कोई पार नही पा सकता ।

: ६६ :

यो जागार तमृच कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमय ँ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योका ॥ उ० ६।२।५।१॥

शब्दार्थ—(यो जागार) जा मनुष्य जागता है (तम् ऋच कामयन्ते) उस को ऋग्वेद के मन्त्र चाहते है (यो जागार) जो जागता है (तम् उ) उसको ही (सामानि यन्ति) सामवेद के मन्त्र प्राप्त होते है, (यो जागार) जो जागता है (तम्) उसको (अयम् सोम आह) यह सामादि ओषधिगण कहता है कि (अहम् न्योक) मैं नियत स्थान वाला (तव सख्ये अस्मि) तेरी मित्रता और अनुकूलता मे वर्तमान हू ।

भावार्थ—जो पुरुषार्थी जागरणशील है, उन को ही ऋक् साम आदि वेद फलीभूत होते है और सोम आदि ओषधियें हाथ जोडे उसके सामने खडी रहती है कि हम सब आप के लिये प्रस्तुत हैं। जो पुरुष निद्रा से बहुत प्यार करने वाले आलसी और उद्यम-हीन हैं, उनको न तो वेदो का ज्ञान प्राप्त होता है न ओषधियें ही काम देती हैं । इसलिये हम सब को जागरणशील और उद्योगी बनाना चाहिये ।

: ७० :

नम. सखिभ्य· पूर्वसद्भ्यो नमः साकं निषेभ्यः ।
युञ्जे वाच॑ शतपदीम् ॥ उ० ६।२।७॥

शब्दार्थ—(पूर्व सद्भ्य) प्रथम से विराजमान हुए (सखिभ्य नम) मित्रो को नमस्कार करता हूँ (साक निषेभ्य नम) साथ-साथ आकर बैठे मित्रो को नमस्कार करता हूँ (शतपदीम् वाचम् युञ्जे) सैकडो पदो वाली वाणी का मैं प्रयोग करता हू ।

भावार्थ—सभा समाज वा यज्ञ आदि स्थलो मे जब पुरुष जावे, तब हाथ जोड कर सब को नमस्कार करे । यदि बोलने का अवसर मिले, तब भी हाथ जोड, सब मित्रो को नमस्कार करे, पीछे व्याख्यान आदि देवे । कभी भी विद्या वा धन वा जाति वा कुलीनता आदिको का अभिमान न करे । इस वेद के पवित्र, मधुर और सुखदायक उपदेश को मानने वाला निरभिमान उत्तम पुरुष ही सदा सुखी हो सकता है ।

: ७१ .

शिक्षेयमस्मै दित्सेय॑ शचीपते मनीषिणे ।
यदह गोपति. स्याम् ॥ उ० ६।२।६॥

शब्दार्थ—(शचीपते) हे बुद्धि के स्वामिन् परमात्मन् ! (यत्) यदि (अह गोपति स्याम्) मैं जितेन्द्रिय वाणी वा पृथिवी का स्वामी हो जाऊँ तो (अस्मै मनीषिणे) इस उपस्थित बुद्धिमान् जिज्ञासु को (शक्षेयम्) शिक्षा दूं और (दित्सेयम्) दान देने की इच्छा करूँ ।

भावार्थ—हे वेदविद्याऽधिपते अन्तर्यामिन् ! आप हम पर कृपा करे कि, हम जितेन्द्रिय होकर आपकी वेदरूपी वाणी के ज्ञाता होवें और वेदो का पाठ वा उनके अर्थ जानने की इच्छा वाले अधिकारियो को सिखलावें । आपकी कृपा से यदि हम

पृथ्वी वा धन के मालिक बन जाये तो अनाथो का रक्षण क और विद्वान् महात्मा पुरुष सुपात्रो को दान देवें।

· ७२ :

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्व पिप्युषी दुहे ॥ उ० ६।२।६॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर! (ते धेनु) आपकी वेद वाणी रूप गौ (सूनृता) सच्ची (पिप्युषी) वृद्धि करने वाली (सुन्वते) सोमयाजी (यजमानाय) यजमान के लिये (गाम् अश्वम् दुहे) गौ अश्वादि धन को भरपूर करती है।

भावार्थ—हे परमेश्वर! आपकी वेद रूपी वाणी को जो पुरुष श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से पढते-पढाते और वेदोक्त महा यज्ञादि उत्तम कर्मों को करते-कराते है। उनको ब्रह्मविद्या और गौ-घोडा आदि उपकारक पशु तथा धन प्राप्त होता है। वे धर्मात्मा पुरुष ही परमात्मा की उपासना मे सदा सुखी रहते है।

· ७३ ·

उत वात पितासि न उत भ्रातोत न: सखा।
स नो जीवातवे कृधि ॥ उ० ६।२।११॥

शब्दार्थ—(उत वात न पिता) और हे महाशक्ति वाले वायो! आप हमारे पालक (उत भ्राता) और सहायक (उत न सखा) और हमारे मित्र (असि) हैं (स) वह आप (न जीवातवे कृधि) हमको जीवन के लिये समर्थ करो।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आप महासमर्थ और हमारे पिता, भ्राता, सखा आदि रूप है। हम पर कृपा करो कि हम ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न होकर, पवित्र और बहुत काल तक जीवन वाले बनें, जिससे हम अपना कल्याण कर सकें। आप महापवित्र और पतित पावन है, हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार

कर, हमें पवित्र, दीर्घजीवी बनावें, जिससे आपकी भक्ति और पर उपकार आदि उत्तम काम करते हुए हम अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकें।

: ७४ :

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥
उ० ६।३।६॥

शब्दार्थ—(यजत्रा देवा) हे यजनीय पूजनीय देवेश्वर प्रभो वा विद्वानो! हम लोग (कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) कानों से सदा कल्याण को सुनें, (अक्षभिः भद्रं पश्येम) आंखों से कल्याण को देखें, (स्थिरैः अंगैः) दृढ हस्त, पाद, वाणी आदि अंगों से और (तनूभिः) देहों से (तुष्टुवांसः) आपकी स्तुति करते हुए (यत्) जितनी (आयुः व्यशेमहि) आयु को प्राप्त होवें वह सब (देवहितम्) आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों की हितकारक हो।

भावार्थ—हे पूजनीय परमात्मन्! वा विद्वानो! हम पर ऐसी कृपा करो कि, हम कानों से सदा कल्याण कारक वेद मन्त्र और उनके व्याख्यान रूप सदुपदेशों को सुनें, आंखों से कल्याण-कारक अच्छे दृश्य को ही हम देखें, हम अपनी वाणी से आपके ओंकारादि पवित्र नामों को और सबके उपकारक प्रिय व सत्य शब्दों को कहें, ऐसे ही हमारे हस्त-पाद आदि अङ्ग और शरीर, आपकी सेवा रूप संसार के उपकार में लगें, कभी अपने शरीर और अंगों से किसी की हानि न करें। हम सम्पूर्ण आयु को प्राप्त हों वह आयु, आपकी सेवा वा विद्वान् धर्मात्मा महात्मा सन्त जनों की सेवा के लिये हो।

: ७५ :

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभि ।
दिवेदिव इड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्नि ॥

पू० १।२।८।७॥

शब्दार्थ—(जातवेदा अग्नि) वेद के प्रकाशक, ज्ञानस्वरूप परमात्मा (अरण्यो) हृदय रूपी काष्ठो मे (निहित) अदृश्य रूप से वर्तमान है (गर्भ इव, इत्, सुभृतो, गर्भिणीभि) जैसे गर्भवती स्त्रियो से गर्भाशय मे अदृश्य भाव से गर्भ रहता है। वह जगदीश (जागृवद्भि) सावधान (हविष्मद्भि) भक्ति वाले प्रेमी (मनुष्येभि) मनुष्यो से (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्य) स्तुति के योग्य है।

भावार्थ—हम मुमुक्ष पुरुषो के कल्याण के लिये वेदो का प्रकट करने वाला परमात्मा हमारे हृदयो मे अन्तर्यामी रूप से सदा वर्तमान है। जैसे यज्ञ मे अरणी रूप काष्ठो मे अग्नि वर्तमान रहता है, ऐसे हम सबके हृदय मे वह अदृश्य रूप से सदा वर्तमान है ऐसा सर्वगत परमात्मा, जागरणशील, सावधान, प्रेम-भक्ति वाले मनुष्यो से प्रतिदिन स्तुति के योग्य है। जो पुरुष सावधान होकर उस परमात्मा की प्रेम से भक्ति करेगा उसी का जन्म सफल होगा।

: ७६ :

सोमꣳराजान वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्य विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माण च बृहस्पतिम् ॥

पू० १।२।१०।१॥

शब्दार्थ—हम (सोमम्) शात स्वरूप, शान्तिदायक, सारे जगत् के जनक (राजानम्) सबके प्रकाशक (वरुणम्) श्रेष्ठ (अग्निम्) सर्वत्र व्यापक, पूज्य, ज्ञानस्वरूप, सन्मार्ग-प्रदर्शक, परमात्मा को (अनु आरभामहे) प्रतिदिन स्मरण करते हैं (च)

और (आदित्यम्) अखण्ड (विष्णुम्) सर्वत्र व्यापक (सूर्यम्) सब चराचर के आत्मा (ब्रह्माणम्) सबसे बडे (बृहस्पतिम्) वेदवाणी के स्वामी को हम सदा स्मरण करते हैं।

भावार्थ—जिस परमेश्वर के यह नाम हैं, सोम, राजा, *वरुण, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा* और *बृहस्पति* ऐसे अनन्त नामो वाले परमात्मा को हम सदा स्मरण करते है। क्योकि वह जगत्पति, परमेश्वर ही इस लोक और परलोक मे हमे सुखी करने वाला है।

: ७७ :

राय समुद्राश्चतुरोऽस्मभ्यꣳ सोम विश्वत ।
आपवस्व सहस्रिण· ।। उ० २।२।१४।।

शब्दार्थ—(सोम) परमात्मन्! (सहस्रिण) बहुत सख्या वाले (राय) मणि, मुक्ता, हीरे, स्वर्ण, रजत आदि धन के भरे (चतुर) चारो दिशास्थ (समुद्रान्) समुद्रो को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वत) सब ओर से (आ पवस्व) प्राप्त कराइये!

भावार्थ—हे परमात्मन्! हीरे, मोती, मणि आदि से पूर्ण जो चार दिशाओ मे स्थित समुद्र हैं, हम उपासको के लिये वह प्राप्त कराइये। किसी वस्तु की अप्राप्ति से हम कभी दु खी न हो। आपकी कृपा से प्राप्त धन को, वेदविद्या की वृद्धि और आपकी भक्ति और धर्म प्रचार के लिये ही लगावें।

: ७८ :

यो अग्नि देव वीतये हविष्मा आविवासति ।
तस्मै पावकमृडय ।। उ० २।२।१५।।

शब्दार्थ—(य.) जो (हविष्मान्) प्रेम भक्ति रूपी हवि वाला उपासक पुरुष (देववीतये) अपनी दिव्य गति के लिये (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा का (आविवासति) उपासना रूपी पूजन

करता है (तस्मै) उसके लिये (पावक) हे अपवित्रों को भी पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (मृडय) आनन्द दीजिये ।

भावार्थ—हे पावक ! पवित्र स्वरूप, पवित्र करने वाले परमेश्वर ! जो उपासक पुरुष सत्कर्मों को करता हुआ आपका प्रेमपूर्वक उपासनारूप पूजन करता है ऐसे अपने प्यारे उपासक को आप, दिव्यगति मुक्ति देकर सदा आनन्द दीजिए ।

: ७६ :

त्वमित्सप्रथो अस्यग्ने त्रातर्ऋत. कवि. ।
त्वा विप्रास समिधान दीदिव आविवासन्ति वेधस ॥

ऋ० १।१।४।८।

शब्दार्थ—(समिधान) ध्यान किये हुए (दीदिव) तेजोमय (त्रात) रक्षक (अग्ने) परमात्मन् ! (त्व सप्रथ) आप सर्वता-व्याप्त (ऋत) सत्य और (कवि) ज्ञानी (असि) हैं । (त्वाम् इत्) आपको ही (वेधस) मेधावी (विप्रास) ज्ञानी लोग (आविवासन्ति) सब प्रकार से भजते है ।

भावार्थ—हे परम प्यारे परमात्मन ! आप सबके रक्षक, तेजोमय, सत्य, सर्वव्यापक और ज्ञानी है । आपको ही ज्ञानी महात्मा लोग, भजन करते हुए अपने जन्म को सफल करके, अपने सत्संगी पुरुषों को भी आपकी भक्ति और ज्ञान का उपदेश करते हुए उनका भी कल्याण करते हैं ।

: ८० :

त्वमिमा ओषधि सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वङ्गा ।
त्वमाततनोर्वाऽन्तरिक्ष त्व ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥

ऋ० ६।३।१२।३॥

शब्दार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वम्) आपने (इमा) इन (विश्वा) सब (ओषधि) ओषधियों को (अजनय) उत्पन्न

किया है (त्वम्) आपने ही (अप) जलो को (त्वम्) और आपने ही (गा) गौ आदि पशुओ को उत्पन्न किया है। (त्वम्) आपने ही (उरु) बडे (अतरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक और उसके पदार्थों को (आततो) फैलाया है (त्वम्) आपने ही (ज्योतिषा) ज्योति से (तम) अन्धकार को (विववर्थ) छिन्न-भिन्न किया है।

भावार्थ—हे परम दयालु परमात्मन्! आपन हमारे कल्याण के लिए गेहूँ, चना, चावल आदि ओषधियो को उत्पन्न किया और आपने ही जलो को, गौ आदि उपकारक पशुओ को, और बडे अन्तरिक्ष लोक और उसके पदार्थों को बनाया है। और सूर्य आदि ज्योतियो से अन्धाकार का भी नाश किया है। यह सब काम हम जो आपके प्यारे पुत्र है उनके लिए ही आपने किये है।

८१

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनव। ईशानमस्य जगत स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष ॥ पू० ३।१।५।१॥

शब्दार्थ— (शूर) विक्रमी (इन्द्र) परमेश्वर (अस्य) इस (जगत) जगम के (ईशानम्) प्रभु और (तस्थुष) स्थावर के भी (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सूर्य के भी प्रकाश करने वाले (त्वा) आपको (अदुग्धा इव धेनव) बिना दुही हुई गौओं के समान अर्थात् जैसे बिना दुही हुई गौएँ अपने बच्छे (सन्तान) के लिए भागी आती है, ऐसे ही भक्ति से नम्र हुए हम आपके प्यारे पुत्र (अभिनोनुम) चारो ओर से बारम्बार प्रणाम करते है।

भावार्थ—हे महाबली परमेश्वर! चराचर ससार के स्वामिन्, सूर्य आदि सब ज्योतियो के प्रकाशक! जैसे जगल मे अनेक प्रकार के घास आदि तृणो को खाकर गौए अपने बच्चो को दूध पिलाने के लिए भागी चली आती है, ऐसे ही प्रेम और भक्ति से नम्र हुए हम आपको बार-बार प्रणाम करते हुए आपकी शरण मे आते है।

८२

अच्छा समुद्रमिदवोऽस्तं गावो न धेवनः ।
अग्मन्नृतस्य योनिम् ।। उ० १।१।३।।

शब्दार्थ—(इन्दव) शान्त स्वभाव परमेश्वर के उपासक लोग (ऋतस्य योनिम्) सत्यवेद-वेद के कर्ता (समुद्रम्) समुद्र के सदृश परम गम्भीर परमात्मा को (अच्छा) भली प्रकार, सानन्द (आ अग्मन्) प्राप्त होते है, (न) जैसे (धेनव गाव) दूध देने वाली गौएँ (अस्तम्) घर को प्राप्त होती है ।

भावार्थ—शान्त स्वभाव परमेश्वर के प्यारे, भगवद्भक्त उपासक लोग, वेद को प्रकट करने वाले परमात्मा को भली प्रकार प्राप्त होकर आनन्द को पाते है । जैसे दूध देने वाली गौएँ वन मे घास आदि तृणो को खाकर अपने घरो मे आकर सुखी होती है, ऐसे ही भगवद्भक्त, परमात्मा की उपासना करते हुए, उसी भगवान् को प्राप्त होकर सदा आनन्द मे रहते हैं ।

८३

मा ते राधासि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदाचनादभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ।।
उ० ८।३।५।।

शब्दार्थ—(मानुष) हे मनुष्यो के हितकारक ! (वसो) सबको अपने मे बसाने वाले वा सबमे बसने वाले अन्तर्यामिन् प्रभो ! (ते) आपके (राधासि) उत्पन्न किये गेहूँ, चना, चावल आदि अन्न (अस्मान्) हमको (कदाचन) कभी (मा आदभन्) दु ख न दे, न मारे । (ते) आपकी की हुई (ऊतय) रक्षाये (मा) दु ख न देवे, (च) और (विश्व) सब (वसूनि) विद्या और सुवर्ण, रजतादि धन (न) हम (चर्षणिभ्य) मनुष्यो के लिए (आ उप मिमीहि) सर्वत दीजिये ।

भावार्थ—हे सबके हितकारक सबके स्वामी अन्तर्यामी प्रभो ! आपके दिये अनेक प्रकार के अन्न आदि उत्तम पदार्थ हमको कभी कष्टदायक न हो। आपकी की हुई रक्षाये हमे सदा सुखदायक हो। भगवन् ! अनेक प्रकार के पापो का फल जो निर्धनता, दरिद्रता है, वह हमे कभी प्राप्त न हो। किन्तु हमारे देशवासी भ्राताओ को अनेक प्रकार के धन-धान्य से पूर्ण कीजिये और सबको धर्मात्मा बनाकर सदा सुखी बनाइये।

: ८४ :

अर त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावत.।
अरं शक्र परेमणि ॥ **पू० ३।१।२।६॥**

शब्दार्थ—(शक्र) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (शूर) अनन्त सामर्थ्य युक्त (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावत) आपके ही तुल्य (ते श्रवसे) आपके यश के लिए (अरम गमेम) सदा सर्वथा प्राप्त होवे और (परेमणि) मोक्षदायक समाधि मे (अरम्) हम सर्वथा प्राप्त होवे।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिमान् और अनन्त सामर्थ्य युक्त है। आप ही अपने तुल्य है। कृपया हमक ऐसा सामर्थ्य दीजिये, जिससे आपके यश और ध्यान मे मग्न होकर हम मोक्ष को प्राप्त हो सके।

: ८५ .

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ **पू० २।२।१०।६॥**

शब्दार्थ—(विश्वा) सब (कृष्टय) मनुष्य रूप (विश) प्रजाये (अस्य) इस परमेश्वर के (मन्यवे) तेज के आगे (सम् नमन्त) इस तरह से झुकती है (समुद्राय इव सिन्धव) जैसे समुद्र के लिए नदियें।

भावार्थ—जैसे सब नदियें समुद्र के सामने जाकर नम्र हो जाती है, ऐसे ही सब मनुष्य उस महातेजस्वी परमात्मा के सन्मुख नम्र हो जाते है, उस परमात्मा का तेज सबको दबा देने वाला है।

८६

त्वावत पुरुवसो वयमिन्द्र प्रणेत ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ पू०२।२।१०।६॥

शब्दार्थ—(हरीणाम्) मनुष्य आदि सकल प्राणियो के (स्थात) अधिष्ठाता ! (पुरुवसो) पुष्कल वास देने वाले। (प्रणेत) उत्तम मार्ग दर्शक ! (इन्द्र) परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (त्वावत) आप सदृश ही के (स्मसि) हैं।

भावार्थ—दयामय परमात्मन् ! आप जैसा न कोई है, न हुआ, और न होगा इसलिए आपके सदृश आप ही है। भगवन् ! आप मनुष्य आदि सब प्राणियो के आश्रय देने वाले, सबके पथ प्रदर्शक है। सबको जानने वाले सबके अधिष्ठाता हैं। आपकी ही हम शरण मे आए हैं।

८७

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्त धीमहे वयम् ।
सुवीरमग्न आहुत ॥ पू० १।१।३।६॥

शब्दार्थ—(नक्ष्य) हे सेवनीय (विश्पते) प्रजापालक ! (आहुत) हे भक्तो से आह्वान किये हुए (अग्ने) परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (सुवीरम्) उत्तम भक्त पुरुषो वाले (द्युमन्तम्) प्रकाश स्वरूप (त्वा) आपका (नि धीमहे) निरन्तर ध्यान करते है।

भावार्थ—हे सेवनीय प्रजा पालक भक्तवत्सल परमात्मन् ! हम आपके सेवक, आप महात्मा सन्तजनो के सेवनीय प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर का, सदा अपने हृदय मे बडे प्रेम से ध्यान करते है। आप दया के भण्डार अपने भक्तो का सदा कल्याण करते हैं।

८८

वात आवातु भेषजꣳशम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ पू० २।१।६।१०॥

शब्दार्थ—हे इन्द्र परमात्मन् ! (न) हमारे (हृदे) हृदय के लिए (शम्भु) रोगनिवारक (मयोभु) सुखदायक (भेषजम्) औषध को (वात) वायु (आवातु) प्राप्त करावे और (न) हमारी (आयूंषि) आयु को (प्रतारिषत्) विशेषकर बढ़ावे ।

भावार्थ—हे दयामय जगदीश ! आपकी कृपा से ही वायु की शुद्धि द्वारा और औषध के सेवन से बल, नीरोगता प्राप्त होकर आयु की वृद्धि और सुख की प्राप्ती होती है ।

८६

इन्द्र वय महाधने इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजे वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ पू० २।१।४।६॥

शब्दार्थ—(वयम्) हम लोग (महाधन) बड़े युद्ध में (इन्द्रम्) परमात्मा को (हवामहे) पुकारें और (अर्भे) छोटे युद्ध में भी (वृत्रेषु वज्रिणम्) रोकने वाले शत्रुओं में दण्डधारी (युजम्) जो सावधान है उसी जगत्पति को पुकारें ।

भावार्थ--हम सबको योग्य है कि छोटे-बड़े बाह्य और आभ्यन्तर सब युद्धों में, उस परम पिता जगदीश की अपनी सहायता के लिए सदा प्रार्थना करें । वह पापियों के पाप कर्म का फल कष्ट देने के लिए सदा सावधान है । इसलिए हम उस प्रभु की शरण में आकर ही सब विघ्नों को दूर कर सुखी हो सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं ।

६०

आपवस्व महीमिष गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ पू० ३।१।३॥

शब्दार्थ—(इन्दो) करुणामृत सागर (सोम) परमात्मा ! आप अपनी कृपा से (गोमत्) गौओं से युक्त (अश्वत्) घोडो से युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्णादि धन से युक्त (वीरवत्) पुत्र आदि सन्तान सहित (महीम् इषम्) बहुत अन्न को (आपवस्व) प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हे कृपासिन्धो भगवन् ! आप अपनी अपार कृपा से गौ, घोडे सुवर्ण, रजत आदि धन और पुत्र, पौत्र आदि से युक्त अनेक प्रकार का बहुत अन्न हमे प्राप्त करावे। हमारे गृहो मे गौ, घोडे बकरी आदि उपकारक पशु हो, तथा अन्न, वस्त्र आदि उपयोग आने वाले अनेक पदार्थ हो, सुवर्ण चादी हीरे मोती आदि धन बहुत हो, उस धन को हम सदा धार्मिक कामो मे खर्च करते हुए लोक परलोक मे कल्याण के भागी बने।

: ६१ :

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
श यद्गवे न शाकिने॥ पू० २।१।३।१॥

शब्दार्थ—हे प्रभु के प्रेमी जन ! (यत्) जो (गवे) पृथिवी के (न) समान (व) तुम (सुते) स्तोता के लिए (शम्) सुखदायक हो (तत्) उसको (सत्वने) शत्रुओ के नाश करने वाले (शाकिने) शक्तिमान् (पुरुहूताय) वेदो मे बहुत स्तुति किये गए इन्द्र के लिए (सचा) मिलकर (गाय) गायन कर।

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिए कि बाह्य आभ्यन्तर सब शत्रु विनाशक परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए उसके गुणो का बखान मिल-जुलकर करें। जैसे पृथिवी सबका आधार होने से सबको सुख दे रही हैं। ऐसे ही परमात्म देव सबका आधार और सबके सुखदायक है, उनकी सदा प्रेम से भक्ति करनी चाहिए।

: ६२ :

शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।
शयोरभिस्रवन्तु न॥ पू० १।१।३।१३॥

शब्दार्थ—(देवी) परमेश्वर की दिव्य शक्तियें (न) हमारे (अभिष्टये) मनोवाञ्छित पदार्थ की प्राप्ति के लिये (शम्) सुख-दायक (भवन्तु) होवें (न) हमारी (पीतये) तृप्ति के लिये (शम्) सुखदायक होवे और (न) हमारे लिये (शयो) सब सुख की (अभिस्रवन्तु) सब ओर से वर्षा करे।

भावार्थ—सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की दिव्य शक्तिये, हमे मनोवाञ्छित सुख की दात्री होवे। वे ही प्रभु की अचिन्त्य दिव्य शक्तिये, हमे तृप्तिदायक होवें और हम पर सुख की वर्षा करे। इस ससार मे हमे सदा सुखी रख कर मुक्ति धाम मे सर्व दु ख निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति करावें। ऐसी दयामय जगत्पति परमात्मा से नम्रता पूर्वक हमारी प्रार्थना है कि परम पिता जी ऐसी प्रार्थना को स्वीकार कर हमे सदा सुखी बनावे।

९३

पावमानी· स्वस्तययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्याश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्व च गच्छति ।।

उ० ५।२।८।।

शब्दार्थ—(पावमानी) पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली वेद की ऋचाये (स्वस्त्ययनी) कल्याण करने हारी (ताभि) उन के अध्ययन और मनन करने से मनुष्य (नान्दनम्) आनन्द को (गच्छनि) प्राप्त होता है (च) और (पुण्यान्) पवित्र (भक्षान्) भोज्यो को (भक्षयति) भोजन करता है (च) तथा (अमृतत्व) अमर भाव को अर्थात् मुक्ति के आनन्द को (गच्छति) प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—वेद की पवित्र ऋचाये, स्वाध्यायशील धार्मिक पुरुष को पवित्र करती और शरीर को नीरोग रख कर अनेक सुन्दर भोज्य पदार्थों को प्राप्त करनी है और मुक्ति धाम तक पहुचाती

है । क्योंकि वेदवाणी परमात्मा की दिव्यवाणी है उसका श्रवण, मनन, और निदिध्यासन करने से परमात्मा का ज्ञान और सब दुःखों का भञ्जन करने वाली परमात्मा की परा-भक्ति प्राप्त होती है । इसी से अधिकारी मुमुक्षु मोक्ष धाम को प्राप्त होता है ।

९४

येन देवा पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानी पुनन्तु नः ॥ उ० ५।२।८॥

शब्दार्थ- (येन पवित्रेण) पवित्र करने वाले जिस कर्म से (देवा) विद्वान् (आत्मानम्) अपने आत्मा को (सदा पुनते) सदा पवित्र करते है (तेन सहस्रधारेण) उस अनन्त धाराओं वाले कर्म से (पावमानी) पवित्र करने वाली वेदों की ऋचायें (नः पुनन्तु) हमें पवित्र करें ।

भावार्थ– जिस प्रणव जप और वेदों के पवित्र मन्त्रों के स्वाध्याय रूप पवित्र कर्म से, ब्रह्म के उपासक, स्वाध्यायशील विद्वान् महात्मा लोग, अपने आत्मा को सदा पवित्र करते है उस अनन्त धारण शक्तियों से सम्पन्न, ईश्वर प्रणिधान और वेद स्वाध्याय रूप कर्म से, सारे संसार को पवित्र करने वाली वेदों की ऋचायें हमें भी पवित्र करें ।

९५

स त्वा तृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु ।
महो दिवं चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ ऋ० २।२।२॥

शब्दार्थ [illegible] (महो दिव) अनन्त आकाश के (सधस्थेषु) [illegible] उनसे भी बाहिर व्यापक (तृम्णानि) [illegible] हुए (चारुम्) आनन्द स्वरूप [illegible] सबका [illegible] हुए आप को (सुकृत्यया) सुकर्म से (ईमहे) हम पाते हैं ।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमात्मन्! इस बडे आकाश म और इससे बाहिर भी आप व्यापक होकर, सब धन और बल को धारण करने वाले आनन्द स्वरूप हो। ऐसे आप को उत्तम वैदिक कर्म करते हुए और वैदिक स्तोत्रो से ही आप की स्तुति करते हुए हम प्राप्त होते है।

· ९६ ·

पवस्व वाचो अग्रिय· सोम चित्राभिरूतिभि·।
अभि विश्वानि काव्या॥ उ० २।१।१॥

शब्दार्थ—(सोम) हे शान्त स्वरूप परमात्मन्! (अग्रिय) सबमे मुख्य आप (विश्वानि काव्या) सब स्तोत्रो और (वाच) प्रार्थनाओं को (चित्राभि) अनेक प्रकार की (ऊतिभि) रक्षाओ से (अभि) सब ओर मे (पवस्व) पवित्र कीजिए।

भावार्थ—हे शान्तिदायक शान्तस्वरूप परमात्मन्! आप अपनी कृपा से आप के प्यारे पुत्र जो हम हैं उनसे अनेक वेद के पवित्र मन्त्रो से की हुई प्रार्थना को सुन कर, हम पर प्रसन्न हुए हमे शान्त और पवित्र कीजिए और हमारी सदा रक्षा कीजिये।

९७ .

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उपब्रह्माणि न श्रृणु॥ उ० १।१।६॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) परमात्मन्! (केशिना) वृत्ति रूप केशो वाले (ब्रह्मयुजा) ब्रह्म मे योग करने वाले (हरी) आत्मा और मन दोनो (त्वा) आप को (आवहताम्) प्राप्त हो (न) हमारे (ब्रह्माणि) वेदोक्त स्तोत्रो को (उपश्रृणु) स्वीकार कीजिये।

भावार्थ—हे दयामय परमेश्वर! हम सब का जीव और मन जिनकी वृत्तिया ही केश के तुल्य है, ऐसे दोनो आप के ब्रह्मानन्द को प्राप्त होवे और हमारी यह भी प्रार्थना है कि, जब हम लोग

वेद के पवित्र मन्त्रो को प्रेम से पढ़ें, तब आप कृपा करके स्वीकार करें। जैसे दयालु पिता अपने पुत्र की तोतली वाणी से की हुई प्रार्थना को सुन कर बड़ा प्रसन्न होता है, ऐसे ही परम प्यारे पिताजी! आप हमारी प्रार्थना को सुन कर परम प्रसन्न होवें।

९८ :

त्व समुद्रिया अपोग्रियो वाच ईरयन।
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ उ० २।१।२॥

शब्दार्थ—(विश्वचर्षणे) हे सर्वसाक्षिन् (अग्रिय) मुख्य (त्वम्) आप (समुद्रिया) आकाशस्थ मेघ के (अप) जलो और (वाच) वेद वाणियो को (ईरयन्) प्रेरित करते है, वह आप (पवस्व) हमे पवित्र कीजिये।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमन्, जगदीश! आप सबके पूज्य और सबके अग्रणी हैं। आप आकाश मे स्थित बादलो के प्रेरक हैं। अपनी इच्छा से ही जहा-तहा वर्षा करते है। पवित्र वेदवाणी को आपने ही हमारे कल्याण के लिये प्रकट किया है। आप कृपा करें कि हम सब मनुष्यो के हृदय मे उस वेदवाणी का प्रकाश हो। उसी मे श्रद्धा हो, उसी से हमारा जीवन पवित्र हो।

९९ ·

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत।
सूर्यस्येव न रश्मय ॥ उ० ३।२।२॥

शब्दार्थ—(विश्ववित्) हे सर्वेश्वर! (पवमानस्य) पवित्र करते हुये (ते) आप की (सर्गा) वैदिक ऋचा रूपिणी धारायें (प्र असृक्षत) ऐसी छूटती है (न) जैसे (सूर्यस्य इव रश्मय) सूर्य से किरणे निकलती है।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमन् जगदीश्वर! पवित्र करते हुए आपसे वेद की पवित्र ऋचायें प्रकट होती हैं, जो ऋचायें

यथार्थ ज्ञान का उपदेश करती हुई मुक्ति धाम तक पहुँचाने वाली है। भगवन्! जैसे सूर्य से प्रकट हुई किरणे सारे ससार का अन्धकार दूर करती हुई सब का उपकार कर रही है, ऐसे ही महा तेजस्वी प्रकाशस्वरूप आप से वेद की ऋचारूपी किरणे प्रकट होकर, सब ससार का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करती हुई उपकार कर रही है। यह आपकी सर्व ससार पर बडी कृपा है।

१००

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति न पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

उ० ६।३।६॥

शब्दार्थ—(वृद्धश्रवा इन्द्र) सबसे बढ कर यश वाला वा सुनने वाला परमेश्वर (न स्वस्ति दधातु) हमारे लिए कल्याण को धारण करे। (विश्ववेदा पूषा) सबको जानने और पालन करने वाला प्रभु (न स्वस्ति) हमारे लिये सुख वा कल्याण को धारण करे। (अरिष्टनेमि) अरिष्ट जो दुःख उसको (नेमि) वज्र के तुल्य काटने वाला ईश्वर (ताक्ष्र्य) जानने व प्राप्त होने योग्य (न स्वस्ति) हमारे लिये कल्याण को धारण करे। (बृहस्पति) बडे २ सूर्य, चन्द्र, शुक्र, बुध, मगल आदि ग्रह, उपग्रह, लोक, लोकान्तरो का धारक, पालक, मालिक, पोषक, प्रभु वा वेद चतुष्टयरूपी बडी वाणी का उत्पादक, रक्षक वा स्वामी (न स्वस्ति) हम सब के लिये कल्याण को धारण करे।

भावार्थ—सबसे बढकर यशस्वी, सर्वज्ञ, सब का पालक इन्द्र, भक्तो के दुःखो को काटने वाला, जानने योग्य, सूर्यादि सब बडे २ पदार्थों का जनक और हम सब के कल्याण के लिये वेदो का उत्पादक परमात्मा हम सब का कल्याण करे।

●

अथर्ववेद शतक

अथर्ववेद के चुने हुए ईश्वर भक्ति के
१०० मंत्रो का संग्रह

—अर्थ और भावार्थ सहित—

—स्व० स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

"वेद की विशेषता यही है कि यह सत्य विद्या है। वेद मे कोई बात झूठ नही है वेद का एक एक वाक्य बुद्धि पूर्वक है और जो जो बात बुद्धि पूर्वक होती है, वह वह सत्य होती है।"

—आत्माराम अमृतसरी

: १ :

ये त्रिषप्ता. परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पति-र्बला तेषा तन्वो अद्य दधातु मे ॥का० १।सू० १।म० १॥

शब्दार्थ—(ये त्रिषप्ता) जो प्रसिद्ध इक्कीस देव (विश्वा रूपाणि) सब आकारो को (बिभ्रत) धारण-पोषण करने वाले (परियन्ति) प्रति शरीर मे यथायोग्य वर्तमान रहते हैं (तेषा बला) उन देवो के बलो को (वाचस्पति) वेद वाणी का रक्षक और स्वामी (मे तन्व) मेरे शरीर के लिए (अद्य दधातु) अब धारण करे।

भावार्थ—हे वेद वाणी के पालक और मालिक परमात्मन्! मेरे शरीर मे जो ५ महाभूत, ५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्त करण ये इक्कीस दिव्य शक्ति वाले देव वर्तमान हैं, जोकि सब शरीरो मे सब आकार और रूपो को धारण करने वाले हैं, आप कृपा करके इन सबके बल को मेरे लिए धारण करें, जिससे मैं आपका सेवक, आत्मिक शारीरिक आदि बलयुक्त होकर, आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करता हुआ, मोक्ष आदि उत्तम सुख का भागी बनू।

: २ :

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ १। १। २॥

शब्दार्थ—(वाचस्पते) हे वेदवाणी के स्वामिन् देव! (देवेन मनसा सह) प्रकाश-स्वरूप और अनुग्रह वाली बुद्धि से युक्त आप (पुन एहि) वाञ्छित फल देने के लिए बारम्बार हमारे समीप आवें (वसो पते) हे धनपते! हमे इष्ट फल देकर (नि रमय) सदा रमण कराओ आप जो फल देवें वह (मयि एव अस्तु) हमारे मे बना रहे (मयि श्रुतम्) जो हम वेद, सच्छास्त्र पढ़ें, सुनें वे हमारे मे बनें रहें।

भावार्थ—हे वाचस्पते ! धनपते ! आप हम सब पर कृपा करो, जो-जो हमे वांछित फल है उनका दान करो, हमारे हृदय मे सदा अभिव्यक्त होकर हमे आनन्द मे मग्न करो। जैसे कृपालु पिता अपने प्यारे बालक को वाछित फल-फूल देकर क्रीडा कराता हुआ प्रसन्न रखता है। ऐसे ही आप हमे अभिलषित फल देकर, हमारी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकार करे कि, जा वेद, शास्त्र और महात्माओ के सदुपदेशो को हम सुने वे कभी विस्मरण न हो।

: ३ :

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्। यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेता नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्र ॥ २०।३४।१॥

शब्दार्थ—(य) जो (जात एव) प्रकट होते ही (प्रथम) सबसे मुख्य होता है (मनस्वान्) विशाल मन वाला (देव) प्रकाशमान (क्रतुना) अपने स्वाभाविक ज्ञान बल से (देवान्) सूर्य चन्द्रादि दिव्य शक्ति वाले देवो को (परि अभूषत्) जिसने सब ओर से सजाया है (यस्य) और जिसके (शुष्मात्) बल से (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अभ्यसेताम्) कापने है (नृम्णस्य मह्ना) जा अपने बल के महत्त्व से युक्त है (जनास) हे मनुष्यो ! (स इन्द्र) वह बडे ऐश्वय और बल वाला इन्द्र है।

भावाथ—जिस अनादि सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने अपने अनन्त ज्ञान और बल से सूर्य चन्द्रादि दिव्य देवो को रचा, सजाया और उन सबको अपने-अपने नियम मे रक्खा है वह इन्द्र है।

: ४ :

य सोमकामो हर्यश्व सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा। यो जघान शम्बर यश्च शुष्ण य एकवीर· स जनास इन्द्र ॥ ३४।१७॥

शब्दार्थ—(य) जो परमेश्वर (सोमकाम) सोम-ब्रह्मानन्द रस की कामना करने वाले योगिजनो के प्रति प्रिय (हर्यश्व) मनुष्यो मे व्यापक (सूरि) प्रेरक विद्वान् है (यस्मात्) जिस परमात्मा से (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (रेजन्ते) कापते हैं (य) जो (शम्बरम्) बादल मे (च) और (य) जो (शुष्णम्) सूर्य मे (जघान) व्याप रहा है (य एकवीर) जो अकेला शूर वीर है (जनास) हे मनुष्यो ! (स इन्द्र) वह बडे ऐश्वर्य वाला परमेश्वर है ।

भावार्थ—जो परमेश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमैश्वर्यवान् सब ऐश्वर्य का उत्पादक, ऐश्वर्य का दाता है और जो प्रभु आप एकवीर होकर सारे ससार को अपने नियम मे चला रहा है, उस महासमर्थ जगत्पिता की कृपा से ही पुरुष ऐश्वर्य और सुख को प्राप्त हो सकता है ।

: ५ :

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभय पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभय नो अस्तु ॥
१३।१५।५॥

शब्दार्थ—(अन्तरिक्षम् न अभयम् करति) मध्य लोक हमारे लिए भय राहित्य करे (इमे उभे द्यावापृथिवी अभयम्) सब प्राणियों के निवास स्थान, यह दोनो द्युलोक पृथिवी लोक भय राहित्य को करें। (पश्चात् अभयम) पश्चिम दिशा में हमको अभय हो। (पुरस्तात् अभयम्) पूर्व दिशा मे अभय (उत्तरात्) उत्तर दिशा मे (अधरात्) उत्तर दिशा से उलटी दक्षिण दिशा मे (न अभयम अस्तु) हमें अभय हो ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! अन्तरिक्ष द्युलोक, पृथिवी, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा आदि यह सब आपकी कृपा से सदा

भय-राहित्य को करने वाले हो। हम सब निर्भय होकर आपकी प्रेम भक्ति मे लग जावें।

: ६ :

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ १९।१५।६॥

शब्दार्थ—(मित्रात् अभय) मित्र से अभय हो (अमित्रात् अभयम्) शत्रु से अभय (ज्ञातात् अभयम्) द्वेष्टा रूप में ज्ञात शत्रु से अभय (य पुर) ज्ञात से अन्य जो अज्ञात शत्रु उससे भी अभय हो (नक्तम्) रात्रि मे (अभयम्) अभय हो (दिवा न अभयम्) दिन मे हमको भय राहित्य हो (सर्वा आशा) सब दिशाये (मम मित्र भवन्तु) मेरी हितकारिणी होवें।

भावार्थ—हे सर्व भयहर्ता परमात्मन्। मित्र से हमे अभय, अर्थात् भय से अन्य हितफल, सर्वदा प्राप्त हो। शत्रु से अभय हो, जो ज्ञात शत्रु है उससे तथा अज्ञात शत्रु से भी भय-राहित्य हो, रात्रि मे तथा दिन मे अभय हो। पूर्व पश्चिम आदि सब दिशा, हमारे हित के करने वाली हो। यह सब फल आपकी कृपा से प्राप्त हो सकते है, आपकी कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नही हो सकता।

: ७ :

शान्ता द्यौ शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीराप शान्ता न सन्त्वोषधी॥ १९।९।१॥

शब्दार्थ—(शान्ता द्यौ) हमारे लिए द्युलोक सुखकारक हो, (शान्ता पृथिवी) भूमि सुखकारक हो, (शान्तम् इदम् उरु अन्तरिक्षम्) यह विस्तीर्ण मध्य लोक सुखकारक हो, (शान्ता उदन्वती आप) समुद्र और सब जल सुखकारक हों (शान्ता न सन्तु

ओषधी) हमारे लिए गेहूँ, चना, चावल आदि सब परिपक्व अन्न सुखकारक हो ।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन् ! आपकी कृपा से द्युलोक, भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र, जल और सब प्रकार के अन्न, हमे सुखकारक हो । सब स्थानो मे हम सुखी रहकर आपके अनन्त उपकारो को स्मरण करते हुए, आपके ध्यान मे मग्न रहे आपसे कभी विमुख न होवें ऐसी हम सब पर कृपा करो ।

: ८ :

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूत. सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ११।४।१॥

शब्दार्थ—(प्राणाय नम) चेतनस्वरूप प्राणतुल्य सर्वप्रिय और सबको प्राण देने वाले परमेश्वर को हमारा नमस्कार है, (यस्य सर्वमिद वशे) जिस प्रभु के वश मे यह सब जगत् वर्तमान है, (य भूत) जो सत्य एक रस परमार्थ स्वरूप और (सर्वस्य ईश्वर) सबका स्वामी है (यस्मिन्) जिस आधार स्वरूप प्रभु मे (सर्वं प्रतिष्ठितम्) यह सब चराचर जगत् स्थिर हो रहा है ।

भावार्थ—हे परम पूजनीय चैतन्यमय परमप्रिय परमात्मन् ! आपको हमारा नमस्कार है । अनेक ब्रह्माण्ड रूप जगत् के स्वामी आप ही है, आपके ही अधीन यह सब कुछ है और आप ही इसके अधिष्ठान् है, क्षण-भर भी आपके बिना यह जगत् नही ठहर सकता ।

: ६ :

या ते प्राण प्रिया तनूर्या ते प्राण प्रेयसी । अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ११।४।६॥

शब्दार्थ— (या ते प्राण प्रिया तनू) हे प्राणप्रिय परमात्मन् ! जो आपका स्वरूप प्यारा है (या उ ते प्राण प्रेयसी) और जो

आपका स्वरूप अति प्रिय है (अथो यद् भेषजम् तव) और आपका अमृतत्व प्रापक जो औषध है (तस्य नो धेहि जीवसे) वह हमे जीवन के लिए दो।

भावार्थ—हे परम प्यारे परमात्मन् ! ससार-भर मे आप जैसा कोई प्यारा नही है, प्यारे से भी प्यारे आप है। जो महा-पुरुष आपसे प्यार करते है, उनको अमृतत्व नाम मोक्ष का साधन अपनी अनन्य भक्ति और ज्ञान रूप औषध का दान आप करते हैं, जिसको प्राप्त होकर वे महात्मा सदा आनन्द मे मग्न रहते है।

: १० :

प्राण· प्रजाः अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥११।४।१०॥

शब्दार्थ—(पिता पुत्रम् इव प्रियम्) जैसे दयालु पिता अपने प्यारे पुत्र को वस्त्र से आच्छादन करता है, वैसे ही (प्राण·) चेतन स्वरूप प्राण देव प्रभु (प्रजा अनुवस्ते) मनुष्य पशु, पक्षी आदि प्रजाओ के शरीरो मे व्याप्त हो कर बस रहा है, (यत् च प्राणति) और जो जङ्गम वस्तु चलन आदि व्यापार कर रही है (यत् च न) और जो स्थावर वस्तु वह व्यापार नही करती, (प्राण ह सर्वस्य ईश्वर) उस चर-अचर स्वरूप सब जगत् का चेतन स्वरूप प्राण ही ईश्वर है, अर्थात् सब का प्रेरक स्वामी है।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप चराचर सब जगत् मे व्याप रहे है, ऐसी कोई वस्तु वा स्थान नही, जहा आप की व्याप्ति न हो, आप ही सारे ससार के कर्ता, हर्ता और स्वामी है, सब की क्षण २ चेष्टाओ को देख रहे है, आप से किसी की कोई बात भी छिपी नहीं, इसलिये हमे सदाचारी और अपना प्रेमी भक्त बनावे, जिन को देख कर आप प्रसन्न होवें।

: ११ :

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते । प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमा· प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ ११।४।१२॥

शब्दार्थ—(प्राण विराट्) प्राण ही सर्वत्र विशेष रूप से प्रकाशमान है। (प्राण देष्ट्री) प्राण सब प्राणियो को अपने २ व्यापार मे प्रेरणा कर रहा है, (प्राण सर्वे उपासते) ऐसे प्राण परमात्मा की सब लोग उपासना करते हैं, (प्राण ह सूर्य) प्राण ही सब जगत् का प्रकाशक और प्रेरक सूर्य है, (चन्द्रमा) सब को आनन्द देने वाला प्राण ही चन्द्रमा है (प्राणम् आहु प्रजापतिम्) वेद और वेदज्ञाता महापुरुष इस प्राण को ही सब प्रजाओ का जनक और स्वामी कहते है।

भावार्थ—हे चेतन देव जगत्पते प्रभो ! आप सब स्थानो मे प्रकाशमान हो रहे है, आप ही सब प्राणियो को अपने २ व्यापारो मे प्रेर रहे है, आप की ही सब विद्वान् पुरुष उपासना करते है, आप ही सब जगत् के प्रकाशक और प्रेरक होने से सूर्य, और आनन्द दायक होने से चन्द्रमा कहलाते है, सब महात्मा लोग, आप को ही सब प्रजाओ का कर्ता और स्वामी कहते है।

: १२ :

प्राणो मृत्यु प्राणस्तक्मा प्राण देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११।४।११

शब्दार्थ—(प्राणो मृत्यु) प्राण ही मृत्यु है। (प्राण तक्मा) प्राण ही आनन्द करने वाला है। (देवा प्राण उपासते) विद्वान् लोग सब के जीवन हेतु ईश्वर की उपासना करते हैं। (प्राण ह) प्राण ही निश्चय से (सत्यवादिनम्) सत्यवादी मनुष्य को (उत्तमे लोके) उत्तम शरीर मे अथवा श्रेष्ठ स्थान मे (आ दधत्) धारण कराता है।

भावार्थ—वेदान्त शास्त्र निर्माता व्यास जी महाराज लिखते है, 'अत एव प्राण,' जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि कर्ता होने से प्राण शब्द का अर्थ परमात्मा जानना चाहिये न कि प्राण वायु। इसलिये सब चेष्टाओ का कारण होने से परमात्मा का नाम प्राण है। ऐसा परमेश्वर ही हमारे जन्म मृत्यु का कर्ता और अनेकविध सुख का दाता है। प्राणरूप परमेश्वर ही सत्यवादी, सत्यकर्ता, सत्यमानी, और सच्चाई के ही प्रचार करने वाले पुरुष को उत्तम लोक प्राप्त कराता है। लोक शब्द का अर्थ उत्तम शरीर, उत्तम ज्ञान, और उत्तम स्थान है। यह बात निश्चित है कि ऐसे पुरुष को परमात्मा उत्तम लोक आदि प्राप्त कराता है।

१३

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इद विदुः ॥ ४।१६।१॥

शब्दार्थ—(बृहन्) महान् वरुण श्रेष्ठ (एषाम् अधिष्ठाता) इन सब प्राणियो का नियन्ता प्रभु सब प्राणियो के कर्मों को (अन्तिकादिव पश्यति) समीपता से ही जानता है (य तायन् मन्यते) जो वरुण स्थिर वस्तु को जानता है वही (चरन्) चरण-शील को भी जानता है (सर्वं देवा इद विदु) चर-अचर, स्थूल-सूक्ष्म सब वस्तु मात्र को वरुण देव प्रभु जानते है।

भावार्थ—हे सर्वत्र व्यापक वरुण श्रेष्ठ प्रभो! आप प्राणि-मात्र के नियन्ता और उन सब के कर्मों को सब प्रकार से जानने वाले जिन से किसी का कोई काम भी छिपा नही है, दूरस्थ समीपस्थ चर-अचर स्थूल-सूक्ष्म इन सब ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ मात्र को जानने वाले सर्वत्र व्यापक महान् सब से श्रेष्ठ सब के उपा-सनीय भी आप ही है।

: १४ :

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति य प्रतङ्कम् । द्वौ सनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीय ॥ ४।१६।२॥

शब्दार्थ—(य तिष्ठति) जो खडा है (चरति) जो चलता है (य वञ्चति) और जो ठगता है (यो निलाय चरति) जो निलीन अर्थात् अदृश्य हो कर चलता है (य प्रतङ्कम्) जो कष्ट से वर्त्तता है इन सब को वरुण प्रभु जानते है (द्वौ सनिषद्य) दो पुरुष बैठ कर (यत् मन्त्रयेते) जो अच्छा वा बुरा गुप्त मन्त्रण करते है (तृतीय वरुण राजा) उन मे तीसरे वरुण श्रेष्ठ राजा प्रभु (तद् वेद) अपनी सर्वज्ञता से उस सब को जानते है ।

भावार्थ—हे वरुण राजन् ! जो खडा वा चलता वा ठगता वा छिप कर चलता वा दु ख से जीता है, इन सब को आप जानते है, जो दो पुरुष मिलकर, अच्छी वा बुरी गुप्त सलाह करते है, उन दोनो मे तीसरे हो कर आप वरुण राजा उस सब को जानते है ।

: १५ :

उतेय भूमिर्वरुणास्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता । उतो समुद्रौ वरुणास्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीन. ॥ ४।१६।३॥

शब्दार्थ—(उत् इय भूमि) और यह सम्पूर्ण पृथिवी (वरुणस्य राज्ञ) वरुण राजा के वश मे वर्त्तमान है (दूरे अन्ता) जिस के किनारे बहुत दूर है (उत असौ बृहती द्यौ) ऐसा यह बडा द्युलोक भी उस वरुण राजा के वश मे है (उतो समुद्रौ) पूर्व और पश्चिम दिशाओ के दोनो समुद्र (वरुणस्य कुक्षी) वरुण राजा का उदर

रूप हैं (उत अस्मिन् अल्पे उदके) इस थोडे से जल मे भी (निलीन) वह वरुण राजा अन्तर स्थित हो कर वर्तमान है।

भावार्थ—हे अनन्त वरुण राजन्! यह सम्पूर्ण पृथिवी और जिस का अन्त नही ऐसा बडा यह द्युलोक तथा पूर्व पश्चिम के दोनो समुद्र, आप वरुण राजा के वश मे वर्त्तमान है। हे प्रभो! आप ही वापी, कूपादि थोडे जलो मे भी वर्त्तमान है, ऐसे सर्वव्यापक आप को जान कर ही हम सुखी हो सकते है।

: १६ :

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञ.। दिव स्पश प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४।१६।४॥

शब्दार्थ—(उत यो द्याम् अतिसर्पात् परस्तात्) जो पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाए (न स मुच्यातै वरुणस्य राज) वह भी वरुण राजा से छूट नही सकता। (दिव स्पश प्रचरन्ति इदम् अस्य) इस वरुण के गुप्तचर दूत द्युलोक से निकल, इस पार्थिव स्थान को प्राप्त होकर (सहस्राक्षा) हजारो आँखो वाले (भूमिम् अति पश्यन्ति) पृथिवी को अत्यन्त देखते है अर्थात् पृथिवी के सब वृत्तान्त को जानते है।

भावार्थ—हे वरुण श्रेष्ठ प्रभो! यदि कोई पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाए, तो भी आपसे कभी छूट नही सकता, आपके गुप्तचर दूत अर्थात् आपकी दिव्य शक्तिये, द्युलोक और पृथ्वीलोक मे सर्वत्र व्यापक हो रही है, उन शक्तियो द्वारा आप सबको जानते है, आपसे अज्ञात कुछ भी नही है।

१७

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात्। संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोति तानि ॥ ४।१६।५॥

शब्दार्थ—(रोदसी अन्तरा यत्) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य मे जो प्राणिमात्र वर्तमान है (यत् परस्तात्) और जो हमारे सम्मुख वा हमसे परे वर्तमान है (सर्वं तद्) उन सबको (विचष्टे) वरुण राजा भली प्रकार देखते है, (जनानाम् निमिष) प्राणियो के नेत्रस्पन्दादि सर्व व्यवहार (अस्य सख्याता.) इस वरुण के गिने हुए है (श्वघ्नी अक्षान् इव तानि निमिनोति) जैसे जुआरी अपनी जय के लिए जुए के पासो को फैकता है, ऐसे ही सब प्राणियो के पुण्य पाप कर्मों के फलो को वरुण राजा देते है।

भावार्थ—हे श्रेष्ठ प्रभो ! ऊपर का द्युलोक, नीचे का पृथिवी लोक और इन दोनो मे जो प्राणिमात्र वर्तमान है और जो हमारे सम्मुख वा हमसे परे वर्तमान है इन सबको आप अपनी सर्वज्ञता से देख रहे ह। जैसे कोई जुआरी पासो को जानकर फैकता है तैसे आप ही प्राणियो के शुभ-अशुभ कर्मों के फल-प्रदाता है।

: १८ .

न त्वदन्य कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्। त्व ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ५।११।४॥

शब्दार्थ—(स्वधावन् वरुण) हे प्रकृति के स्वामिन् वरुण ! (न त्वन् अन्य कवितर) आपसे बढकर कोई सर्वज्ञ नही है (न मेधया धीरतर) न बुद्धि मे आपसे बढकर कोई बुद्धिमान् है (त्व ता विश्वा भुवनानि वेत्थ) आप उन सब ब्रह्माण्डो को भली प्रकार जानते है (स चित् नु त्वत् जन मायी बिभाय) वह जो अनेक प्रकार की प्रज्ञा वाला है वह भी आपसे डरता है।

भावार्थ—हे स्वामिन् वरुण ! आपसे बढकर कोई बुद्धिमान् नही है, आप उन सब ब्रह्माण्डो और उनमे रहने वाले सब प्राणियो को ठीक-ठीक जानने वाले हैं। कोई पुरुष कैसा ही बुद्धिमान् चालाक वा छली, कपटी क्यो न हो, वह भी आपसे डरता है।

: १६ :

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्च नोन. । तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मान धीरमजर युवानम् ॥ १०।८।४४॥

शब्दार्थ—(अकाम) प्रभु सब कामनाओ से रहित है, (धीर) धीर, बुद्धि के प्रेरक हैं (अमृत) अमर है, ('स्वय भवतीति' स्वयभू) आप ही होते है किसी से उत्पन्न होकर सत्ता को नही प्राप्त होते अर्थात् अजन्मा है (रसेन तृप्त) आनन्द से तृप्त है (न कुत च न ऊन) किसी से भी न्यून नही है । (तम् धीरम् अजरम् युवानम् आत्मानम्) उस धीर जरा रहित युवा आत्मा आप प्रभु को (विद्वान् एव) जानने वाला ही (मृत्यो न बिभाय) मृत्यु से नही डरता ।

भावार्थ—हे भयहारिन् परमात्मन् ! आप अकाम, धीर, अमर और अजन्मा हैं सदा आनन्द से तृप्त है, आप मे कोई न्यूनता नही है । आप जो कि धीर, अजर, युवा अर्थात् सदा एक रस आत्मा को जानने वाला महात्मा हो, मृत्यु से कभी नही डरता । आप निर्भय है, आपको जानने वा मानने वाला महापुरुष भी निर्भय हो जाता है ।

२० :

भद्राह नो मध्यन्दिने भद्राह सायमस्तु न. । भद्राह नो अह्ना प्राता रात्री भद्राहमस्तु न ॥ ६।१२८।२॥

शब्दार्थ—(न) हमारे लिए (मध्य दिन) मध्याह्न काल मे (भद्राहम्) शोभन दिन अर्थात् सुखद दिन हो तथा (न) हमारे लिए (सायम्) सूर्य के अस्तकाल मे भी (भद्राहम अस्तु) पवित्र दिन हो तथा (अह्नाम् प्रात) दिनो के प्रातःकाल मे भी (न) हमारे लिए (भद्राहम्) पवित्र दिन हो तथा (रात्री) सब रात्रि (न)

हमारे लिए (अद्राहम्) शुभ समय वाली हो।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! आपकी कृपा से हमारे लिए प्रात काल, मध्याह्नकाल, सायकाल और रात्रिकाल शुभ हो, अर्थात् सब काल मे हम सुखी हो और आपको सदा स्मरण करते तथा [illegible] वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए पवित्रात्मा बने, कभी [illegible] प्रकार आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलने वाले न बने और अपने [illegible] को व्यर्थ न खोवें। ऐसी हमारी प्रार्थना को आप कृपा [illegible] स्वीकार करे।

: २१

[illegible] दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः।
स न पूर्णेन यच्छतु ॥ ७।१७।१॥

शब्दार्थ—(धाता) सारे ससार का धारण करने वाला परमात्मा (न) हमारे लिए (रयिम्) विद्या, सुवर्णादि धन को (दधातु) धारण करे [illegible] देवे, वही प्रभु (ईशान) सबके मनोरथो को पूर्ण करने मे समर्थ और (जगतस्पति) जगत् का पालक है (स) वह (न) हमे (पूर्णेन) वृद्धि को प्राप्त हुए धन से (यच्छतु) जोड देवे अर्थात् हमको पूर्ण धनी बनावे।

भावार्थ—हे सर्वजगत् धारक परमात्मन्! हम आप [illegible] जो आपकी सदा से कृपा के पात्र रहे है जिन पर आपका सदा कृपा बनी रही है ऐसे आपके प्यारे पुत्रो को विद्या, स्वर्ण, रजत, हीरे, मोती आदि धन प्रदान करे, क्योकि आप महा समर्थ [illegible] शरणागतो के सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले है हम भी आप [illegible] शरण मे आये है इसलिए आप सबके स्वामी हमको पूर्ण [illegible] बनाओ, जिससे हम किसी पदार्थ की न्यूनता [illegible] पराधीन न होवे, किन्तु सदा सुखी हुए आपके [illegible] मे तत्पर र[illegible]

: २२ :

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । इ इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ ७।८७।१॥

शब्दार्थ—(य रुद्र अग्नौ) जो दुष्टो को रुदन कराने वाला रुद्र भगवान्, अग्नि मे (य अप्सु अन्त) जो जलो के मध्य मे (य वीरुध ओषधी) जो अनेक प्रकार से उत्पन्न होने वाली ओषधियो मे (आविवेश) प्रविष्ट हो रहा है, (य इमा विश्वा भुनानि) जो रुद्र इन दृश्यमान सर्व भूतो के उत्पन्न करने मे (चाक्लृपे) समर्थ है (तस्मै रुद्राय नमो अस्तु अग्नये) उस सर्व जगत् मे प्रविष्ट ज्ञान स्वरूप रुद्र के प्रति हमारा बारम्बार नमस्कार हो ।

भावार्थ—हे दुष्टो को रुलाने वाले रुद्र प्रभो ! आप अग्नि जल और अनेक प्रकार की ओषधियो मे प्रविष्ट हो रहे है और आप चराचर सब भूनो के उत्पन्न करने मे महा समर्थ हैं, इसलिए सर्वजगत् के स्रष्टा और सब मे प्रविष्ट ज्ञान स्वरूप ज्ञान प्रद आप रुद्र भगवान् को हम बारम्बार सविनय प्रणाम करते हैं, कृपा करके इस प्रणाम को स्वीकार करें ।

: २३ :

पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने । सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं न· ॥ ८।३।२०॥

शब्दार्थ—हे अग्ने ! (पश्चात्) पश्चिम (पुरस्तात्) पूर्व (अधरात्) नीचे वा दक्षिण (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (कवि) सर्वज्ञ आप (काव्येन) अपनी सर्वज्ञता और रक्षण व्यापार करके (परिपाहि) सर्वथा रक्षा करें (सखा) हमारे सखा रूप आप (सखायम्) और आपके सखा रूप जो हम उनकी रक्षा कीजिये (अजर)

जरा वृद्धावस्था से रहित आप (जरिम्णे) अत्यन्त जीर्ण जो हम उनकी रक्षा कीजिये (अमर्त्य त्वम्) अमर आप (मर्तान् न) मरण-धर्मा जो हम उनकी रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे ज्ञानमय ज्ञानप्रद परमात्मन्! आप अपनी सर्वज्ञता और रक्षा से पूर्व आदि सब दिशाओ मे हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे सच्चे मित्र है, आप जरा-मरण से रहित अजर-अमर है, हम तो जरा-मरण युक्त हैं आप के बिना हमारा कोई रक्षक नही, हम आप की शरण मे आये है आप ही रक्षा करे।

: २४ :

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृनुता सविदाने। यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापा-नाभ्या गुपितः शत हिमा॥ २।२८।४॥

शब्दार्थ—हे मनुष्य! (त्वा) तुमको (द्यौ पिता) द्युलोकपिता (पृथिवी माता) माता रूप पृथिवी (सविदाने) आपस मे एकता को प्राप्त हुए (जरा मृत्यु कृणुनाम्) वृद्धावस्था पूर्वक मृत्यु को करे अर्थात् दीर्घ आयु वाला करे (अदिते) अखण्डनीय पृथिवी की (उपस्थे) गोद मे (प्राणापानाभ्या गुपित) प्राण-अपान से रक्षित हुआ (शत हिमा) सौ वर्ष पर्यन्त (यथा जीवा) जिस प्रकार से तू जीवन धारण करे वैसे तुझे द्युलोक और पृथिवी दीर्घ आयु वाला करे।

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्य को आशीर्वाद देते हैं कि, हे मनुष्य! जैसे पुरुष अपनी माता से उत्पन्न हो कर उस माता की गोद मे स्थित रहता है और अपने पिता से पालन पोषण को प्राप्त होता है, ऐसे ही पृथिवी रूपी माता से उत्पन्न हो कर, उस पृथिवी की गोद मे रहता हुआ तू मनुष्य, द्युलोक रूप पिता से पालन पोषण को प्राप्त हो रहा है। द्युलोक और पृथिवी तेरे अनुकूल हुए, सौ वर्ष पर्यन्त जीने मे सहायता करे। तू सारी आयु मे अच्छे २

कर्म करता हुआ, ब्रह्मज्ञान और प्रभु-भक्ति द्वारा मोक्ष-सुख को प्राप्त हो।

: २५ :

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।
शुचिः पावक ईड्य ॥ ८।३।२६॥

शब्दार्थ—(अग्नि) वह ज्ञान स्वरूप परमात्मा (रक्षांसि) नाना प्रकार से दुःखदायक जो दुष्ट पापी राक्षस उन को (सेधति) विनाश करता है। कैसा है वह प्रभु जो (शुक्रशोचि) प्रज्वलित प्रकाश स्वरूप और (अमर्त्य) मरण से रहित (शुचि) शुद्ध (पावक) शुद्ध करने वाला (ईड्य) स्तुति करने योग्य है।

भावार्थ—हे दुष्ट विनाशक पतित पावन ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! दुष्ट राक्षसो के नाश करने वाले, अमर, शुद्ध स्वरूप, शरणागत पतितो के भी पावन करने वाले, ससार मे आप ही स्तुति करने योग्य है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पुरुषार्थ आप की स्तुति प्रार्थना उपासना से ही प्राप्त होते है अन्य की स्तुति से नही, इसलिये हम लोग आपको ही मोक्ष आदि सब सुख दाता जानकर, आपकी ही शरणागत हुए, आप की स्तुति प्रार्थना उपासना करते है।

: २६ :

सहृदय सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि व.। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ ३।३०।१॥

शब्दार्थ—हे मनुष्यो! (व) तुम्हारा (सहृदम्) जैसे अपने लिये सुख चाहते हो ऐसे दूसरो के लिये भी समान हृदय रहो (सांमनस्यम्) मन से सम्यक् प्रसन्नता और (अविद्वेषम्) वैर-विरोध आदि रहित व्यवहार को आप लोगो के लिये (कृणोमि) स्थिर करता हूँ तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय (वत्स

जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर प्रेम से जैसे वर्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे से (अभिहर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से वर्ता करो।

भावार्थ—परमकृपालु परमात्मा हमे उपदेश देते हैं, कि हे मेरे प्यारे पुत्रो! तुम लोग आपस मे एक दूसरे के सहायक और आपस मे प्रेम करने वाले बनो, आपस मे वैर विरोध आदि कभी मत करो, जैसे गौ अपने नवीन उत्पन्न हुए बछड़े से अत्यन्त प्रेम करती और उसकी सर्वथा रक्षा करती है, ऐसे आप लोग आपस मे परम प्रेम करते हुए एक दूसरे की रक्षा करो, कभी आपस मे वैर-विरोध आदि न किया करो, तभी आप लोगो का कल्याण होगा अन्यथा कभी नही। यह उपदेश आप का कल्याण करने वाला है इसको हमे कभी नही भूलना चाहिये।

: २७ :

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तराहिता। ब्रह्मेद-मूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥ १०।२।२५॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणा) परमात्मा ने (भूमि) पृथिवी (विहिता) बनाई (ब्रह्म) परमेश्वर ने (द्यौ) द्युलोक को (उत्तरा) ऊपर (हिता) स्थापित किया (ब्रह्म) परमात्मा ने ही (इदम्) यह (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (ऊर्ध्वम्) ऊपर (तिर्यक्) तिरछा और नीचे (व्यचोहितम्) व्यापा हुआ रक्खा है।

भावार्थ—एशिया, यूरुप, अमरीका और अफ्रीका आदि खण्डो से युक्त सारी पृथिवी और पृथिवी मे रहने वाले सारे प्राणी परमात्मा ने रचे है। उस परमात्मा ने ही सूर्य से ऊपर का हिस्सा जिसको द्युलोक कहते है वह भी ऊपर स्थापित किया और मध्य-का यह अन्तरिक्ष लोक जो ऊपर और नीचे तिरछा सर्वत्र फैला हुआ है उस परमात्मा ने बनाया।

: २८ :

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ १०।८।२९॥

शब्दार्थ—(पूर्णात) सर्वत्र व्यापक परमात्मा से (पूर्णम्) सम्पूर्ण यह जगत् (उदचति) उदय होता है (पूर्णम्) यह पूर्ण जगत् (पूर्णेन) पूर्ण परमात्मा से (सिच्यते) सीचा जाता है । (उतो तदद्य विद्याम) नियम से आज हम जानेगे (यत्) जिस परमात्मा से (तत्) वह जगत् (परिषिच्यते) सीचा जाता है ।

भावार्थ—सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा से यह ससार सर्वत्र पूर्णतया उत्पन्न हुआ । उस पूर्ण परमात्मा ने ही इस जगत् रूपी वृक्ष का सिचन किया है, उस परमात्मा के जानने मे हमे विलम्ब नही करना चाहिये क्योकि हमारे सब के शरीर क्षणभगुर है । ऐसा न हो कि हमारी मन-की-मन मे रह जाय और हमारा शरीर नष्ट हो जाय । इसलिये वेद ने कहा 'तदद्य विद्याम्', उस परमात्मा को हम आज ही जान लेवे ।

• २९

यत सूर्य उदेत्यस्त यत्र च गच्छति । तदेव मन्येह ज्येष्ठ तदु नात्येति किं चन ॥ १०।८।१६॥

शब्दार्थ—(यत) जिस परमात्मा की प्रेरणा से (सूर्य) सूर्य (उदेति) उदय होता है (अस्तम्) अस्त को (यत्र) जिस मे (गच्छति) प्राप्त होता है । (तत् एव्) उसको ही (ज्येष्ठम्) सब से बडा (अहम् मन्ये) मै मानता हू (तत् उ) उस को (किंचन) कोई भी (नात्येति), उल्लघन नही कर सकता

भावार्थ—जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने यह तेज पुज सूर्य उत्पन्न किया, जिस जगदीश्वर की प्रेरणा से यही सूर्य अस्त होता है, उस परमात्मा को ही मैं सब से श्रेष्ठ और सब से बडा मानता

हूं। ऐसे समर्थ प्रभु को कोई उल्लंघन नही कर सकता। उसकी आज्ञा मे ही सारे सूर्य चन्द्र आदि सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं। उस परमात्मा को उल्लघन करने की किसी की भी शक्ति नही है।

: ३० :

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्त न पश्यति। देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ १०।८।३२॥

शब्दार्थ—ईश्वर (अन्ति सन्तम्) पास रहने वाले उपासक को (न जहाति) छोडता नही (अन्ति सन्तम्) पास रहने वाले भगवान् को जीव (न पश्यति) देखता नही। (देवस्य) परमात्मा के (काव्यम्) वेदरूप काव्य को (पश्य) देख (न ममार) मरता नही और (न जीर्यति) न ही बूढा होता है।

भावार्थ—जो ईश्वर का भक्त ईश्वर की भक्ति करता है वह परमेश्वर के समीप है। उस पर परमात्मा सदा कृपादृष्टि रखते है यही उनका न छोडना है। अज्ञानी नास्तिक लोग जो ईश्वर की भक्ति से हीन है वे, परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सदा समीप वर्तमान को भी नही जान सकते। यह परमात्मा अजर-अमर है उसका काव्य वेद भी सदा अजर-अमर है। मुमुक्षु जनो को चाहिये कि उस अजर-अमर परमात्मा के अजर-अमर काव्य को सदा विचारा करे जिससे लोक-परलोक सुधर सके।

: ३१ :

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्। वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मण महत्॥ १०।८।३३॥

शब्दार्थ—(अपूर्वेण) जिससे पूर्व कोई नही है सब का मूल कारण जो परमात्मा उसमे (इषिता) प्रेरित (वाच) वेदवाणी है (यथायथम्) यथायोग्य अर्थात् यथार्थ बात को (ता) वे (वदन्ति) कहती है। (वदन्ती) निरूपण करने वाली वेदवाणिया

(यत्र गच्छन्ति) जो २ निरूपण करती हैं (तत् महत्) उस बडे (ब्राह्म-णम्) ब्रह्म को (आहु) निरूपण करती हैं।

भावार्थ—परमात्मा सब का कारण और अनादि है। उस पहले कोई भी न था। उस दयामय परमात्मा ने हम पर कृपा करके यथार्थ अर्थ के निरूपण करने वाले वेद प्रकट किये। वह वैदिक ज्ञान जहा २ प्रचार को प्राप्त हुआ उस २ देश के पुरुषो को आस्तिक धार्मिक और ज्ञानी बना दिया। उन ज्ञानी पुरुषो ने ही यथाशक्ति वैदिक सभ्यता फैलाई। जिस सभ्यता का कुछ २ प्रति-भास योरुप, अमरीका, भारत आदि देशो मे दिखाई देता है। यदि उन देशो मे वैदिक ज्ञान पूरा २ फैल जावे तो वे सब मनुष्य पूरे धार्मिक, आस्तिक और ज्ञानी बन कर अपने देशो का उद्धार कर सकें।

: ३२ :

देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः। ११।१।२७॥

शब्दार्थ—(देवा) विद्वान् लोग (पितर) ज्ञानी लोग (मनुष्या) साधारण मनुष्य (च) और (गन्धर्व) गाने वाले (अप्सरस) आकाश मे चलने वाले पुरुष हैं, ये सब (दिवि) आकाश मे वर्तमान (दिवि-श्रित) सूर्य के आकर्षण मे ठहरे हुए (सर्वे देवा) सब गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) परमात्मा से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं।

भावार्थ—बडे-बडे भारी विद्वान् और पृथिवी आदि लोक ज्ञानी और मननशील मनुष्य, गाने बजाने वाले और आकाश मे विचरने वाले पुरुष जो हैं ये सब, उस जगदीश्वर से उत्पन्न होकर सूर्य के आकर्षण मे ठहरे हुए उस परमात्मा के आश्रय मे वर्तमान हैं।

: ३३ :

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा । उच्छिष्टा-ज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित. । ११।७।२३॥

शब्दार्थ—(यत् च) जो प्राणी (प्राणेन) प्राणवायु से (प्राणति) श्वासो का ऊपर नीचे आना जाना रूप व्यापार को करता है अथवा घ्राण इन्द्रिय से गन्ध को सूघता है (यत् च पश्यति चक्षुषा) और जो प्राणी नेत्र से नील पीत आदि रूप को देखता है (सर्वे) वे सब प्राणी (उत शिष्टात्) प्रलय काल मे जगत् के नाश हो जाने पर भी शेष रहा जो ब्रह्म उसी से सृष्टिकाल मे (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए तथा (दिवि देवा दिवि श्रिम) द्युलोक मे स्थित द्युलोक मे रहने वाले सब देव उसी से उत्पन्न हुए है।

भावार्थ—हे सर्वदा अचल जगदीश्वर ! जो प्राणी, प्राणो से श्वास-निश्वास लेते और जो घ्राण से गन्ध को सूघते तथा नेत्र से नील पीत आदि रूप को देखते हैं और जो द्युलोकादि मे स्थिर हो कर वर्तमान देव हैं, वे सब आप से ही उत्पन्न हुए हैं, प्रलयकाल मे सब कार्य जगत् के नाश हो जाने पर भी आप वर्तमान रहते और उत्पत्तिकाल मे आप ही सारे ससार को उत्पन्न करते हैं।

: ३४ :

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः । उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् । ११।७।१॥

शब्दार्थ—(उच्छिष्टे) बाकी रहे परमात्मा मे (नाम) पदार्थों का नाम (रूपम्) और आकार (आहित) स्थित है। (च) और (उच्छिष्टे लोक आहित) उसी मे पृथिवी आदि लोक स्थित हैं। (उच्छिष्टे) उसी ईश्वर मे ही (इन्द्र च अग्नि) बिजली और अग्नि भी और (विश्वमन्त समाहितम्) सारा ससार स्थित है।

भावार्थ—प्रभु का नाम उच्छिष्ट इसलिये है कि प्रलयकाल मे

सब प्राणी और लोक-लोकान्तर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, परन्तु परमात्मा एक रस वर्तमान रहते हैं। ऐसे सर्वाधार परमात्मा मे सब ससार के शब्द रूप नाम, आकार और लोकान्तर भी स्थित हैं। उस भगवान् के आश्रय ही इन्द्र अर्थात् बिजली, वायु जीव, और भौतिक अग्नि स्थित है। इस सर्वाधार परमात्मा के आश्रय ही सारा ससार स्थित है।

३५

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्व भूत समाहितम् । आप· समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः । ११।७।२॥

शब्दार्थ—(उच्छिष्टे) उस परमात्मा मे (द्यावापृथिवी) द्युलोक, पृथिवी (विश्वम् भूतम) सब वस्तुमात्र (समाहितम्) स्थित हैं। (आप) जल (समुद्र) समुद्र (चन्द्रमा) चन्द्रमा (वात) वायु (उच्छिष्टे) उस परमात्मा मे (आहिता) स्थित है।

भावार्थ—उस परमेश्वर के आश्रय ही सब वस्तुमात्र ठहरी हुई है। उस परमात्मा के आश्रय जल, समुद्र, चन्द्र और वायु ठहरा हुआ है, अर्थात् भूत भौतिक सारा ससार उस परमात्मा के आश्रय ही ठहरा हुआ है।

: ३६ ·

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेम परमेष्ठिनम् । ब्रह्मेममग्नि पुरुषो ब्रह्म सवत्सर ममे ॥ १०।२।२१॥

शब्दार्थ—(पुरुष) मनुष्य (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा (श्रोत्रियम्) वेद ज्ञानी आचार्य को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (ब्रह्म) उस ज्ञान से ही (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊपर ठहरने वाले परमात्मा को प्राप्त होता है। (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा (इमम् अग्निम्) इस भौतिक अग्नि को और (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा ही (सवत्सरम्) वर्ष को (ममे) गिनता है।

भावार्थ—इस ससार मे चतुर जिज्ञासु पुरुष वेदवेत्ता आचार्य को प्राप्त करता है। उस आचार्य के उपदेश से परम ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। उस वेद द्वारा ही पुरुष भौतिक अग्नि, सूर्य, बिजली आदि दिव्य ज्योतियो को और उनके कार्यों को जानकर महाविद्वान् हो जाता है।

: ३७ :

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १०।८।१॥

शब्दार्थ—(य) जो परमेश्वर (भूतम् च भव्यम् च) अतीत-काल, भविष्य काल और वर्तमान काल इन तीनो कालो और इनमे होने होने वाले सब पदार्थों को यथावत् जानता है (सर्व य च अधितिष्ठति) सब जगत् का जो अपने विज्ञान से उत्पन्न पालन और प्रलय कर्ता, सबका अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है (स्व यस्य च केवलम्) जिसका सुख ही स्वरूप है। (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सबसे उत्कृष्ट, सबसे बडे (ब्रह्मणे नम) परमात्मा को हमारा नमस्कार हो।

भावार्थ—हे विज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मन्! आप तीनो कालो और इनमे होने वाले सब पदार्थों के ज्ञाता, अधिष्ठाता, उत्पादक, पालक, प्रलयकर्ता, सुखस्वरूप और सुखदायक हो, ऐसे जगद्वन्द्य जगत् पिता आप परमेश्वर को प्रेम से हमारा बारम्बार प्रणाम हो।

: ३८ :

यस्य भूमि प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्। दिव यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम॰॥ १०।७।३२॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिस परमेश्वर के (भूमि) पृथिवी आदि पदार्थ (प्रमा) यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने मे साधन हैं तथा जिसके

भूमि पाद के समान है। (उत) और (अन्तरिक्षम्) जो सूर्य और पृथिवी के बीच का मध्य आकाश है (उदरम्) उदर स्थानीय है। (दिवम्) द्युलोक को (य चक्रे मूर्धानम्) जिस परमात्मा ने मस्तक स्थानीय बनाया है। (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) बड़े (ब्रह्मणे नम) परमात्मा को हमारा नमस्कार हो।

भावार्थ—हमारे पूज्य गौतमादिक ऋषियों ने अनुमान लिखा है 'क्षित्यङ्कुरादिक कर्तृजन्य, कार्यत्वात्, घटवत्।' पृथिवी और पृथिवी के बीच वृक्षादिक जितने उत्पत्तिमान् पदार्थ हैं, ये सब किसी कर्ता से उत्पन्न हुए हैं, कार्य होने से, घट की तरह। जैसे घट को कुम्हार बनाता है वैसे सारे ससार का निमित्त कारण परमात्मा है। उसी भगवान् का बनाया हुआ अन्तरिक्ष लोक उदर स्थानीय है। उसी परमात्मा ने मस्तक रूप द्युलोक को बनाया है। ऐसे महान् ईश्वर को हमारा नमस्कार है।

: ३९ :

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णव.। अग्नि यश्चक्र आस्य तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम॰। १०।७।३३।

शब्दार्थ—(पुनर्णव) सृष्टि के आदि मे बारम्बार नवीन होने वाला सूर्य और चन्द्रमा (यस्य) जिस परमात्मा के (चक्षु) नेत्र समान [illegible] (य) जिस भगवान [illegible] (अग्निम्) अग्नि को (आस्यम्) मुख समान (चक्रे) रचा है। [illegible] ज्येष्ठाय) उस सबसे बड़े वा सबसे श्रेष्ठ (ब्रह्मणे नम) [illegible] का हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—[illegible] सूर्य [illegible] को जो वेद भगवान् ने परमात्मा के [illegible] बताया [illegible] यह अर्थ कभी नहीं कि [illegible] [illegible] के [illegible] आँखें [illegible], किन्तु जीव की आँखें जैसे जीव के आधीन है [illegible] परमात्मा के सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, दिशा उपदिशा आदि अधीन हैं इस कहने से यह तात्पर्य है।

यदि कोई आग्रह से परमेश्वर को साकार मानता हुआ सूर्य चाद उसकी आँखें बनावे तो अमावस की रात्री मे न सूर्य है न चाद है, इसलिए उपर्युक्त कथन ही सच्चा है।

: ४० :

यस्य वात प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोभवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १०।७।३४॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिस भगवान् ने (वात) ब्रह्माण्ड की वायु को (प्राणापानौ) प्राणापान के तुल्य बनाया। (अङ्गिरस) प्रकाश करने वाली जो किरणें है वह (चक्षु अभवन्) आँख की न्याईं बनाईं। (य) जो परमेश्वर (दिश) दिशाओ को (प्रज्ञानी) व्यवहार के साधन सिद्ध करने वाली बसाता है, (तस्मै ज्येष्ठाय) ऐसे बडे अनन्त (ब्रह्मणे) परमात्मा को (नम) हमारा बारम्बार नमस्कार है।

भावार्थ—जिस जगदीश्वर प्रभु ने समष्टि वायु को प्राणापान के समान बनाया, प्रकाश करने वाली किरणे जिसकी चक्षु की न्याईं है अर्थात् उनसे ही रूप का ग्रहण होता है। उस परमात्मा ने ही सब व्यवहार को सिद्ध करने वाली दश दिशाओ को बनाया है। ऐसे अनन्त परमात्मा को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

: ४१ :

यः श्रमात् तपसो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे। सोम यश्चक्रे केवल तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १०।७।३६॥

शब्दार्थ—(य) जो परमेश्वर (श्रमात्) अपने श्रम अर्थात् प्रयत्न से और (तपस) अपने ज्ञान वा सामर्थ्य से (जात) प्रसिद्ध होकर (सर्वान् लोकान्) सब लोकों में (समानशे) सम्यक् व्याप रहा है। (य.) जिसने (सोमम्) ऐश्वर्य को (केवलम्) अपना ही (चक्रे) बनाया (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सबसे श्रेष्ठ वा बडे (ब्रह्मणे

नम) परमात्मा को हमारा नमस्कार है ।

भावार्थ—परमात्मा परम पुरुषार्थी, पराक्रमी और परमैश्वर्य-वान् हुआ सब जगत् का अधिष्ठाता है । कई लोग जो परमात्मा को निष्क्रिय अर्थात् कुछ कर्ताधर्ता नही है, ऐसा मानते हैं । उनको इन मन्त्रो की तरफ ध्यान देना चाहिए, जो स्पष्ट कह रहे है कि परमात्मा बडा पुरुषार्थी, पराक्रमी, बडा बलवान् और परमैश्वर्य-वान् होकर सब जगत् को बनाता है । परमात्मा अपने बल से ही अनन्त ब्रह्माण्डो को बनाते, पालते, पोषते और प्रलय काल मे प्रलय भी कर देते है, ऐसे समर्थ प्रभु को बारबार हमारा प्रणाम है ।

: ४२ :

महद् यक्ष भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्ध परित इव शाखा ॥ १०।७।३८॥

शब्दार्थ—(महत्) बडा (यक्षम्) पूजनीय ब्रह्म (भुवनस्य मध्ये) जगत् के बीच (तपसि) अपने सामर्थ्य मे (क्रान्तम्) पराक्रमयुक्त हो कर (सलिलस्य) अन्तरिक्ष की (पृष्ठे) पीठ पर वर्तमान है । (तस्मिन्) उस ब्रह्म मे (य उ के च देवा) जो कोई भी दिव्य लोक हैं वे (श्रयन्ते) ठहरते हैं । (इव) जैसे (वृक्षस्य शाखा) वृक्ष की शाखाएँ (स्कन्ध परित) धड और पीठ के चारो ओर होती हैं ।

भावार्थ—अनन्त आकाश के बीच परमेश्वर की महिमा मे पृथिवी आदि अनन्त लोक ठहरे हुए है । जैसे वृक्ष की शाखाएँ वृक्ष के धड मे लगी होती हैं ऐसे ही उस परमेश्वर के आश्रय सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं ।

: ४३ :

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु । यो देवमुत्तरावन्त-
मुपासातै सनातनम् ॥ १०।८।२२॥

शब्दार्थ—(य) जो ज्ञानी पुरुष (उत्तरावन्तम्) अत्युत्तम गुण वाले (सनातनम्) सदा एक रस (देवम्) स्तुति के योग्य परमेश्वर को (उपासाते) उपासना करता है वह (भोग्य) भाग्यशील (भवत्) है (अथ) और (अन्नम्) जीवन के साधन अन्नादि पदार्थों को (अदत्) उपयोग मे (बहु) बहुत प्राप्त करता है ।

भावार्थ—जो महानुभाव, उस परम प्यारे सर्वगुणालकृत सनातन परमात्मा की प्रेम से भक्ति करता है वही भाग्यवान् है, उसी को परमात्मा, अन्नादि भोग्य पदार्थ प्राप्त कराता है, वह महापुरुष अन्नादि पदार्थों को अतिथि आदि के सत्कार रूप परोपकार मे लगाता हुआ और आप भी उन पदार्थों को भोगता हुआ सुखी होता है ।

: ४४ :

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयो ॥ १०।८।२३॥

शब्दार्थ—(एनम्) इस परमात्मा को (सनातनम्) विद्वान् पुरुष सनातन (आहु) कहते है । (उत्) और (अद्य) आज (पुनर्णव) नित्य नया (स्यात्) होता जाता है । (अहोरात्रे) दिन और रात्रि दोनो (अन्यो अन्यस्य) एक दूसरे के (रूपयो) दो रूपो मे से (प्रजायेते) उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ—उस परमप्यारे प्रभु के उपासक महानुभावो को नित्य नये-से-नये प्रभु के अनन्त गुण प्रतीत होते है, जैसे दिन से रात और रात से दिन, नये-से-नये प्रतीत होते हैं ।

: ४५ :

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदाप सिष्यदुः यावदग्निः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै काम नम इत् कृणोमि ॥ ९।२।२०॥

शब्दार्थ—(यावती) जितने कुछ (द्यावापृथिवी) सूर्य और भू-लोक (वरिम्णा) अपने फैलाव से फैले हुए हैं, (यावत) जहा तक (आप) जल धाराए (सिष्यदु) बहती है और (यावत्) जितना कुछ (अग्नि) अग्नि वा बिजली है (तत्) उस से (त्वम्) आप (ज्यायान्) अधिक बडे (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) बड़े पूज-नीय (असि) हैं, (तस्मै ते) उस आप को (इत्) ही (काम) हे कामना करने योग्य परमेश्वर! (नम कृणोमि) नमस्कार करता हू।

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य, पृथिवी आदि पदार्थों का उत्पन्न करने वाला और जानने वाला है। आकाशादि सबसे बडा है। उसी को हम प्रणाम करें और उसी की उपासना करें।

: ४६ :

ज्यायन् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रावसि काम मन्यो। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ ९।२।२३॥

शब्दार्थ—(काम) हे कामनायोग्य (मन्यो) पूजनीय प्रभो! (निमिषत) पलकें मारने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि से और (तिष्ठत) स्थावर वृक्ष पर्वतादि से (ज्यायन्) आप अधिक बडे (असि) है और (समुद्रात्) आकाश व जलनिधि से (ज्यायान्) अधिक बडे (असि) हैं। (शेष ४५वें मन्त्र की नाईं।)

भावार्थ—परमेश्वर! आप चर-अचर ससार से और आकाश

और जलनिधि से बहुत बडे हैं। ऐसे आपको ही मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

: ४७ :

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥ ६।२।२४॥

शब्दार्थ—(न वै चन) न तो कोई (वात) वायु (कामम्) कामनायोग्य परमेश्वर को (आप्नोति) प्राप्त होता है (न अग्नि) न ही अग्नि (सूर्य) और सूर्य (उत) और (न चन्द्रमा) न ही चन्द्रमा प्राप्त हो सकता है। (तत) उन सब से आप बडे और पूजनीय हो। उस आपको ही मैं बार २ प्रणाम करता हू।

भावार्थ—उस महान् सर्वव्यापक परमात्मा को वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि नही पहुच सकते। इन सब को अपने शासन मे चलाने वाला वह प्रभु ही बडा है। उस आपको ही हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

: ४८ :

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥ ६।१०।२०॥

शब्दार्थ—(सूयवसात्) सुन्दर अन्न भोगने वाली प्रजा (भगवती) बहुत ऐश्वर्य वाली (हि) ही (भूया) होवो। (अधा) फिर (वयम्) हम लोग (भगवन्त स्याम) ऐश्वर्य वाले होवें (अघ्न्ये) हे हिंसा न करने वाली प्रजा! (विश्वदानी) समस्त दानो की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू हिंसा न करने वाली गौ के समान (तृणम्) घास व अल्प मूल्य वाले पदार्थों को (अद्धि) खाओ (शुद्धम् उदक पिब) शुद्ध जल पान करो।

भावार्थ—परमात्मा वेद द्वारा हमे उपदेश देते हैं—हे मेरी प्रजाओ ! जैसे गौ साधारण घास खाकर और शुद्ध जल पी कर दुग्ध घृतादिको को देकर उपकार करती है । ऐसे तुम भी थोडे खर्च से आहार-व्यवहार करते हुए ससार का उपकार करो । आपका सादा जीवन हो ।

: ४९ :

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् । पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ।   ११।४।५॥

शब्दार्थ—(यदा) जब (प्राण) जीवन दाता परमेश्वर ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) बडी (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्ययर्षीत्) सीच दिया (तत्) तब (पशव) 'पश्यन्तीति पशव' आखो से देखने वाले जीवमात्र (प्र मोदन्ते) बडा हर्ष मनाते है । (न) हमारी (मह) बढती (वै) अवश्य (भविष्यति) होगी ।

भावार्थ—प्राणिमात्र का जीवनदाता परमेश्वर जब वर्षा द्वारा पृथिवी को पानी से तर कर देते है, तो मनुष्यादि प्राणी बडे हर्ष को प्राप्त होते हैं कि इस वर्षा से अनेक प्रकार के सुन्दर अन्न, फल व फूल उत्पन्न होकर हमे लाभदायक होगे ।

: ५० :

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥   ११।४।७॥

शब्दार्थ—हे (प्राण) जीवनदाता परमेश्वर (आयते) आते हुए पुरुष के हित के लिऐ (ते नम) आपको नमस्कार (अस्तु) हो । (परायते) बाहिर जाते हुए पुरुष के लिये (ते नम) आपको नमस्कार हो । (तिष्ठते) खडे हुए पुरुष के हित के लिये (नम) आपको नमस्कार हो । (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए पुरुष के हित के लिये (ते नम) आपको नमस्कार हो ।

भावार्थ—मनुष्यमात्र को चाहिये कि अपने किसी बन्धुवर्ग व मित्र के आने-जाने मे परमात्मा से प्रार्थना करे और अपने लिये भी उस परमात्मा से हर एक चेष्टा मे प्रार्थना करे, जिससे अपने मित्रो के और अपने काम निर्विघ्नता से सम्पूर्ण हो ।

: ५१ :

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टत· ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो माऽनुतिष्ठतु ।। ११।४।२४।।

शब्दार्थ—(य) जो परमेश्वर (अस्य) इस (सर्वजन्मन) अनेक जन्म और (सर्वस्य चेष्टता) सब चेष्टा करने वाले कार्य जगत् का (ईशे) ईश्वर है, वह परमेश्वर (अतन्द्र) आलस्य रहित (धीर) बुद्धिमान (प्राण) जीवनदाता (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान द्वारा (मा अनु) मेरे साथ २ (तिष्ठतु) ठहरा रहे ।

भावार्थ—परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ, जीवन-दाता, जगदीश से हमारी प्रार्थना है कि हे भगवन्, हमे वैदिक ज्ञान मे प्रवीण करते हुए सदा सुखी करे और सदा शुभ कामो मे प्रेरणा करते रहे ।

: ५२ ·

उर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते ।
न सुप्त-मस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ।। ११।४।२५।।

शब्दार्थ—(सुप्तेषु) सोते हुए प्राणियो पर वह प्राण नामक परमात्मा (ऊर्ध्वं) ऊपर रह कर (जागार) जागता है । (न नु) कभी नही (तिर्यक्) तिरछा (निपद्यते) गिरता । (सुप्तेषु) सोते हुओ मे (अस्य सुप्तम्) इस परमात्मा का सोना (कश्चन) किसी ने भी (न अनु शुश्राव) परम्परा से नही सुना ।

भावार्थ—सब प्राणी निद्रा आने पर सो जाते हैं परन्तु जीवनदाता परमेश्वर कभी सोते नही । कभी टेढे गिरते भी नही ।

कभी किसी मनुष्य ने इस परमात्मा को सोते हुए सुना भी नहीं।

: ५३ :

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्। सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्र स महादेव। सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः॥ १३ ४।३,४,५॥

शब्दार्थ— (स) वह परमेश्वर (धाता) पोषण करने वाला और (स विधर्ता) वही परमेश्वर विविध प्रकार से धारण करने वाला है। (स वायु) वह परमात्मा महाबली है। (उच्छ्रितम्) और ऊंचा वर्तमान (नभ) प्रबन्ध कर्ता व नायक है (स) वह परमेश्वर (अर्यमा) सब से श्रेष्ठ और श्रेष्ठो का मान करता है। (स वरुण) वह श्रेष्ठ (स रुद्र) वह भगवान् ज्ञानवान् है। (स महादेव) वह महादानी है। (स) वह परमात्मा (अग्नि) व्यापक (स उ सूर्य) वही प्रेरक है। (स उ) वही (एव) निश्चय करके (महायम) बडा न्यायकारी है।

भावार्थ—इस परमेश्वर के अनन्त नाम जैसे ऋग्वेदादि मे कहे है, वैसे इस अथर्व मे भी अनेक नाम कहे हैं। जैसे कि धाता, विधर्ता, नभ, अर्यमा, वरुण, महादेव, अग्नि, सूर्य, महायम इत्यादि।

: ५४ :

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥ नाऽष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते॥ १३।४।१६,१७,१८॥

शब्दार्थ—(न द्वितीय) न दूसरा (न तृतीय) न तीसरा (न चतुर्थ) न चौथा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है। (न पञ्चम) न पाँचवां (न षष्ठ) न छटा (न सप्तम) न सातवा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है। (न अष्टम) न आठवा

(न नवमः) न नवा (न दशम) न दसवा (अपि उच्यते) ही कहा जाता है।

भावार्थ—परमात्मा एक है। उस मे भिन्न कोई भी दूसरा तीसरा चौथा आदि नही है। उस एक की ही उपासना करनी चाहिए। वही परमात्मा सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, एक रस है। उसकी उपासना करने से ही मुक्ति धाम को पुरुष प्राप्त हो सकता है।

: ५५ :

स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणति यच्च न। तमिदं निगतं सह स एष एक एकवृदेक एव। सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति। १३।४।१९, २०, २१॥

शब्दार्थ—(स) वह परमेश्वर (सर्वस्मै) सब ससार को (विपश्यति) विविध प्रकार से देखता है। (यत् प्राणति) जो श्वास लेता है (यत् च न) और जो सास नही लेता (तम् इदम्) उस परमात्मा को यह सब (सह) सामर्थ्य (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है। (स एष) वह आप (एक) एक (एकवृत्) अकेला वर्तमान (एक। एव) एक ही है। (अस्मिन्) इस परमेश्वर मे (सर्वे देवा) पृथिवी आदि सब लोक (एकवृत भवन्ति) एक परमात्मा मे वर्तमान रहते हैं।

भावार्थ—परमात्मा प्राणी-अप्राणी सबको देख रहे हैं। वह परमेश्वर अपनी सामर्थ्य से सब लोको का आधार हो कर सदा एक रस, एक रूप वर्तमान हैं। वेद ने कैसे सुन्दर स्पष्ट शब्दो मे बार-बार परमेश्वर की एकता का निरूपण किया है।

: ५६ :

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्॥ ७।५०।८॥

शब्दार्थ—(मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ मे (कृतम्) कर्म है। (मे सव्ये) मेरे बाएँ हाथ मे (जय) जीत (आहित) स्थित है। मै (गोजिद्) भूमि को जीतने वाला (अश्वजित्) घोडे जीतने वाला (धन जय) धन को जीतने वाला और (हिरण्यजित्) सुवर्ण जीतने वाला (भूयासम्) होऊँ।

भावार्थ—हे परमेश्वर! मेरे दाहिने हाथ मे कर्म या उद्यम दे। बाएं हाथ मे विजय दे। आप की कृपा से मैं भूमि को जीतने वाला और घोडे, धन तथा सुवर्ण जीतने वाला होऊँ। परमात्मन्! अगर मैं आप की कृपा से उद्यमी बन जाऊँ, तब पृथिवी, अश्व गौ आदि पशु, सुवर्ण, धन आदि की प्राप्ति कोई कठिन नही। इसलिये आप मुझे उद्यमी बनाएँ। धनी हो कर आप सुखी और ससार को भी लाभ पहुँचाऊँ।

: ५७ :

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवी सूर्य आपोऽति पश्यति।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम्॥ १३।१।४५॥

शब्दार्थ—(सूर्य) सबका चलाने वाला परमात्मा (द्याम्) प्रकाशमान इस सूर्य को (सूर्य) वह सर्वप्रेरक (पृथिवीम्) पृथिवी को (सूर्य) वह सर्वनियामक (आप) प्रत्येक काम को (अतिपश्यति) देख रहा है। (सूर्य) वह सर्वनियता (भूतस्य) ससार का (एकम्) एक (चक्षु) नेत्ररूप जगदीश्वर (दिवम्) आकाश पर और (महीम्) पृथिवी पर (आरुरोह) ऊँचा स्थित है।

भावार्थ—वह समदर्शी परमेश्वर सूर्य, पृथिवी, जल और प्राणिमात्र ससार को देखता हुआ सबको अपने नियम मे चला रहा है। ऊँचा होने का अभिप्राय उच्च और उदार भावो मे अधिक होने से है।

: ५८ :

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ २०।५८।३॥

शब्दार्थ—(सूर्य) हे चराचर के प्रेरक परमात्मन् आप (बण्) निश्चय करके (महान्) महान् है (आदित्य) हे अविनाशी परमात्मन् ! आप (बट्) ठीक-ठीक (महान्) पूजनीय (असि) है (ते सत) सत्यस्वरूप आप का (महिमा) प्रभाव (मह) बडा (पनस्यत) बखाण किया जाता है (देव) हे दिव्य गुण युक्त प्रभो ! (अद्धा) निश्चय कर के (महान् असि) आप बडो से भी बडे है ।

भावार्थ—परमेश्वर को बडे-से-बडा सब महानुभाव ऋषियो ने और सब बडे-बडे राजा-महाराजाओ ने माना है । उस महाप्रभु की उपासना करके हम सब को अपने उद्यम से बढना चाहिए ।

: ५९ :

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नम. ॥ १४।२।४६॥

शब्दार्थ—(सूर्यायै) सूरि अर्थात् विद्वानो के सदा हित करने वाली ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये (देवेभ्य) उत्तम गुणो की प्राप्ति के लिये (च) और (वरुणाय मित्राय) श्रेष्ठ मित्र की प्राप्ति के लिये (ये) जो पुरुष (भूतस्य) उचित कर्म के (प्रचेतस) जानने वाले है (तेभ्य) उनके लिये (इद नम अकरम्) यह मैं नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष सब का हित करने वाली विद्या को प्राप्त करते है वे ससार में प्रशसनीय और सुखी होते है ।

: ६० :

यो अस्य विश्व जन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टत । अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ ११।४।२३॥

शब्दार्थ—(य) जो परमेश्वर (अस्य) इस (विश्वजन्मन) विविध जन्म वाले और (विस्वस्य चेष्टत.)सब चेष्टा करने वाले जगत् का (ईशे) ईश्वर है। इन से (अन्येषु) भिन्न कारणरूप परमाणुओ पर (क्षिप्रधन्वने) व्यापक होने वाले (तस्मै) उस (ते) आप को (प्राण) जीवनदाता परमेश्वर (नमो अस्तु) नमस्कार हो।

भावार्थ—जो परमात्मा सब कार्य रूप जगत् और कारण रूप जगत् का स्वामी है उस परमेश्वर को हमारा नमस्कार है।

६१ :

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रिय राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। १६।६२।१॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन्! (मा) मुझे (देवेषु) ब्रह्मज्ञानी विद्वानो मे (प्रियम्) प्रिय (कणु) कर, (मा) मुझे (राजसु) राजाओ मे (प्रियम्) प्यारा (कृणु) कर (उत) और (अर्ये) वैश्य मे (उत) और (शूद्रे) शूद्र मैं और (सर्वस्य पश्यत) सब देखने वाले जीव का (प्रयम्) प्यारा बना।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मणादिको मे निष्पक्ष होकर प्रीति करते हैं और उन्होने ही वेदवाणी मनुष्यमात्र के लिए रची है। ऐसे ही सब विद्वानोको चाहिये कि, आप वेदवाणी का अभ्यास करके निष्पक्ष होकर मनुष्यमात्र को वेदवाणी का अभ्यास करावें और सब से प्रेम करते हुए सबको धार्मिक पवित्रात्मा बना कर सबका कल्याण करें।

: ६२ :

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनू बलम्।
तत् सर्वमनु मन्यन्ता देवा ऋषभदायिने॥ ६।५।२०॥

शब्दार्थ—(ऋषभदायिने) सर्वदर्शक परमात्मा के ज्ञान के देने वाले के लिये (गाव सन्तु) विद्याएं होवें (प्रजा. सन्तु) पुत्र, पौत्रादि

प्रजाएँ होवें। (अथो) और भी (तनू बलम्) शरीर बल (अस्तु) होवे (देवा) विद्वान् लोग (तत्सर्वम्) वह सब वस्तुए (अनुमन्यन्ताम्) स्वीकार करे।

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी महात्मा लोग परमात्मा का वेद द्वारा उपदेश करते हैं उनके स्थानो मे वेद विद्याओ का प्रचार और पुत्र-पौत्र तथा शिष्यादि वर्ग और उन उपदेशक महानुभावो का शारीरिक बल भी अवश्य होना चाहिये। ससार के बुद्धिमान् विद्वानो का कर्तव्य है कि ऐसे वेद द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाले महानुभावो के लिये सब उत्तम पदार्थ प्राप्त करावें। जिससे किसी बात की न्यूनता न होकर वेदो का तथा ईश्वर-भक्ति का प्रचार सदा होता रहे।

: ६३ :

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥ १०।१।२४॥

शब्दार्थ—(यत्र) जहाँ पर (ब्रह्मविद देवा) ब्रह्मज्ञानी देव (ज्येष्ठम् ब्रह्म) सबसे बडे और श्रेष्ठ ब्रह्म को (उपासते) भजते हैं वहा (यो वै) जो ही (तान् प्रत्यक्षम्) उन ब्रह्मज्ञानियो को प्रत्यक्ष करके (विद्यान्) जान लेवे (स) वह (ब्रह्मा) महापण्डित (वेदिता) ज्ञाता (स्यात्) होवे।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष ब्रह्मज्ञानियो से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं वे ही ससार मे तत्वदर्शी महापण्डित विद्वान् होते है। बिना गुरु परम्परा के कोई भी वेद व परमात्मा के जानने वाला नही हो सकता।

· ६४ :

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येम मे अगद कृधि॥ ६।९५।३॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! आप (ओषधीनाम्) ताप रखने वाले सूर्यादि लोकों का (गर्भ) स्तुति योग्य आश्रय (उत्) और (हिमवताम्) शीत स्पर्श वाले जल मेघादि का (गर्भ) ग्रहण करने वाले (विश्वस्य भूतस्य) सब प्राणी समूह का (गर्भ) आधार (असि) हैं (मे) मेरे लिये (इमम्) इस ससार को (अगदम्) नीरोग (कृधि) कर दो।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर से उत्पन्न हुए पदार्थों का गुण जान कर प्रयोग करते है वे ससार मे सुख भोगते है। इसलिये हम सबको चाहिये कि सूर्यादि उष्ण और जल, मेघ आदि शीत पदार्थों के आश्रय परमात्मा की भक्ति करते और ईश्वर रचित पदार्थों से अपना काम लेते हुए सुख को भोगे।

: ६५ :

शास इत्था महा अस्यमित्रसाहो अस्तृत॰। न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥ १।२०।४॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन् ! आप (इत्था) सत्य-सत्य (महान्) बडे (शास) शासक (अमित्रसाह) शत्रुओं को दबा देने वाले (अस्तृत) कभी न हारने वाले (असि) है। (यस्य सखा) जिस आपका सखा (कदाचन) कभी भी (न हन्यते) नही मारा जाता और (न जीयते) हारता भी नही।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप ही सच्चे शासक, शत्रुओं को हराने वाले, कभी नही हारने वाले हो। आपके साथ सच्चा प्रेम करने से जो आपका मित्र बन गया है वह न कभी किसी से मारा जाता है और न किसी से दबाया जा सकता है।

: ६६ :

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ २०।६३।४।

शब्दार्थ—(य एक इत्) जो अकेला ही परमेश्वर (दाशुषे) दाता (मर्ताय) मनुष्य के लिए (वसु) धन (विदयते) बहुत प्रकार से देता है। (अङ्ग) हे मित्र! वह (ईशान) समर्थ (अप्रतिष्कुत) बे रोक गति वाला (इन्द्र) सबसे बढ कर ऐश्वर्य वाला है।

भावार्थ—सारी विभूति के स्वामी इन्द्र परमेश्वर दानशील धर्मात्मा पुरुष को बहुत प्रकार का धन देते है। वह अन्तर्यामी प्रभु उस दाता पुरुष को जानते हैं कि यह पुरुष दान द्वारा अनेको लाभ पहुँचायेगा, इसलिये इसको बहुत ही धन देना ठीक है। प्यारे मित्रो! ऐसे समर्थ प्रभु की उपासना करने से हमारा दारिद्र दूर होकर इस लोक मे तथा परलोक मे हम सुखी हो सकते है।

: ६७ .

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति। दिव-मन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥ ४।२०।१॥

शब्दार्थ—(देवि) हे दिव्यशक्ति वाले परमेश्वर! आप (तत्) विस्तार करने वाले वा सब जगत् मे पूर्ण हो। (आपश्यति) सबके सम्मुख देख रहे हो। (प्रतिपश्यति) पीछे से देखते हो। (पराप-श्यति) दूर से देख लेते हो (पश्यति) समान से देखते हो। (दिवम्) सूर्यलोक (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (आत्) और भी (भूमिम्) भूमि और (सर्वम् पश्यति) सबको देखते हो।

भावार्थ—दिव्यशक्ति वाले, सर्वत्र व्यापक सर्वज्ञ सर्वान्तिर्यामी, परमात्मा अपने सम्मुख, पीछे से, दूर से और समान से देख रहे है। सूर्यलोक, अन्तरिक्षलोक और भूमि तथा सब पदार्थमात्र को प्रत्यक्ष देख रहे है। ऐसे दिव्यशक्ति वाले, सर्वज्ञ सर्वव्यापक, अन्त-र्यामी परमात्मा को सदा समीप द्रष्टा जानते हुए सब पापो से बच कर सदा उसकी उपासना करनी चाहिये।

: ६८ :

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥ ७।५५।१॥

शब्दार्थ—(वसो) हे श्रेष्ठ परमेश्वर ! (ये) जो (ते) आपके (दिव पन्थान) प्रकाश के मार्ग (अव) निश्चय करके हैं (येभि) जिनके द्वारा (विश्वम्) ससार को (ऐरय) आप ने चलाया है। (तेभि) उन से ही (सुम्नया) सुख के साथ (न) हमे (आधेहि) सब ओर से पुष्ट करो ।

भावार्थ—जिज्ञासु पुरुषो को चाहिये कि परमात्मा के बताये वेदमार्ग पर चल कर अपनी और अपने देशवासियो की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति करे ।

: ६९ :

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥
७।९।२॥

शब्दार्थ—(पूषा) पोषण कर्ता परमेश्वर (इमा सर्वा आशा) इन सब दिशाओं को (अनुवेद) निरन्तर जानता है । (स) वह (अस्मान्) हमें (अभयतमेन) अत्यन्त निर्भय मार्ग से (नेषत्) ले चलें । (स्वस्तिदा) मगलदाता (आघृणि) बडा प्रकाशमान (सर्ववीर) सब मे वीर (प्रजानन्) अति विद्वान् (अप्रयुच्छन्) बिना चूक किए हुए (पुर एतु) हमारे आगे २ चले ।

भावार्थ—सर्वव्यापक, मगलप्रद, सर्ववीर, बडे विद्वान्, परमेश्वर को सदा सहायक जान कर मनुष्य उत्तम कर्मों मे आगे बढ़े । उस प्रभु को सहायक जानता हुआ उसकी भक्ति मे सदा लगा रहे ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः । इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्योः वरीयः कृणोतु । ७।५१।१॥

शब्दार्थ—(बृहस्पति) सब का बडा स्वामी परमेश्वर (न) हमे (पश्चात्) पीछे (उत्तरस्मात्) ऊपर (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायो) पापेच्छु दुराचारी शत्रु से (परिपातु) सब प्रकार बचावे। (इन्द्र) परमेश्वर (पुरस्तात्) आगे से (उत मध्यत) और मध्य से (न) हमारे लिये (वरीय) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे (सखा सखिभ्य) जैसे मित्र मित्र के लिये करता है।

भावार्थ—परमात्मा आगे, पीछे, ऊपर नीचे से सब शत्रुओ से हमारी रक्षा करे। वह परमेश्वर हमारे लिये आगे से और मध्य से विस्तीर्ण स्थान, निर्माण करे, जैसे एक मित्र अपने मित्रो के लिये स्थान बनाता है।

: ७१ :

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः । विश्वं सुभूतं सुविदत्र नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् । १।३१।४॥

शब्दार्थ—(न) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत पित्रे) और पिता के लिये (स्वस्ति अस्तु) कल्याण होवे। (गोभ्य) गौओ के लिये (पूरुषेभ्य) पुरुषो के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) कल्याण होवे। (विश्वम्) सम्पूर्ण (सुभूतत्) उत्तमैश्वर्य और (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान और कुल (न अस्तु) हमारे लिये हो। (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम् एव दृशेम) हम सूर्य को देखते रहे।

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष अपनी माता-पिता आदि कटुम्बियो और अन्य माननीय पुरुषो का सत्कार करते और गौ अश्व आदि पशुओ से लेकर सब जीवो तथा ससार के साथ उपकार करते है वे पुरुषार्थी उत्तम धन उत्तम ज्ञान और उत्तम कुल पाते और सूर्य के समान होकर बडी आयु को प्राप्त होते है ।

: ७२ :

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति । न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १।३२।१॥

शब्दार्थ—(जनास) हे मनुष्या ! (इदम् विदथ) इस बात को तुम जानते हो कि ब्रह्मवेत्ता पुरुष (महद् ब्रह्म वदिष्यनि) पूजनीय परब्रह्म का उपदेश करेगा (तत्) वह ब्रह्म (न पृथिव्याम्) न तो पृथिवी मे है और (न दिवि) न सूर्यलोक मे है । (येन) जिसके सहारे से (वीरुध) यह जडी-बूटिया सृष्टि के पदार्थ (प्राणन्ति) श्वास लेते हैं ।

भावार्थ—सर्वव्यापक ब्रह्म भूमि और सूर्यादि किसी विशेष स्थान मे वर्तमान नही है तो भी वह अपनी सत्ता मात्र से ओषधि, अन्नादि सब सृष्टि का नियम पूर्वक प्राणदाता है । ब्रह्मज्ञानी लोग ऐसे ब्रह्म का उपदेश करते है ।

· ७३

अनड्वान दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् । अनड्वान् दाधार प्रदिश· षडुर्वीरनड्वान् विश्व भुवनमाविवेश । ४।११।१॥

शब्दार्थ—(अनड्वान्) प्राण, जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (पृथिवीम् उत् द्याम्) पृथिवी और सूर्य को (दाधार) धारण किया है । (अनड्वान्) उसी परमात्मा ने (उरु अन्तरिक्षम्)

विस्तृत मध्य लोक को (दाधार) धारण किया है (अनड्वान्) उसी परमेश्वर ने (षट्) पूर्वादि नीचे ऊपर की छ दिशायें (उर्वी) बडी चौडी (प्रदिश) महा दिशाओ को (दाधार) धारण किया है (अनड्वान् विश्वम् भुवनम्) परमात्मा सब जगत् मे (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है ।

भावार्थ—परमात्मा सब प्राणिमात्र को जीवन के साधन देकर और पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक को रचकर पूर्वादि सब दिशाओ मे और सारे जगत् मे प्रवेश कर रहा है ।

: ७४ :

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः । अह मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥

४।३०।१॥

शब्दार्थ—(अहम्) मैं परमेश्वर (रुद्रेभिः) ज्ञानदाता व दुःख-नाशको (वसुभि) निवास कराने वाले पुरुषो के साथ (उत)और (अहम्) मैं ही (विश्वदेवै) सब दिव्यगुण वाले (आदित्यै) सूर्यादि लोको के साथ (चरामि) चलता हूँ । अर्थात् वर्तमान (अहम्) मैं (उभौ) दोनो (मित्रावरुणौ) दिन रात को (अहम्) मैं (इन्द्र अग्नि) पवन और अग्नि को (अहम्) मैं ही (उभौ अश्विनौ) दोनो सूर्य, पृथिवी को (बिभर्मि)धारण करता हूँ ।

भावार्थ—परमात्मा कृपासिन्धु हम पर कृपा करते हुए उपदेश करते हैं कि मैं दुःख दूर करने वालो और दूसरो को ज्ञान देकर लाभ पहुचाने वालो के साथ रहता हूँ और मैं ही दिव्यगुण-युक्त सूर्यादि लोकलोकान्तरो के साथ और दिन, रात्रि मे पवन और अग्नि, सूर्य, और पृथिवी को धारण कर रहा हू । ऐसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ।

: ७५ :

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् । अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ।। ४।३० ४।।

शब्दार्थ—(मया) मेरे द्वारा ही (स अन्नम् अत्ति) वह अन्न को खाता है (यः विपश्यति) जो कोई विशेष कर देखता है (य· प्राणति) जो सास लेता है और (य) जो (ईम्) यह (उक्तम्) वचन को सुनता है । (माम्) मुझे (अमन्तव) न मानने वाले, न जानने वाले (ते) वे पुरुष (उपक्षियन्ति) हीन होकर नष्ट हो जाते हैं (श्रुत) हे सुनने मे समर्थ जीव तू (श्रुधि) सुन (ते) तुझसे (श्रद्धेयम्) आदर के योग्य वचन को (वदामि) कहता हूँ ।

भावार्थ—कृपालु भगवान् हमे उपदेश देते हैं कि ससार के सब प्राणी मेरी कृपा से ही देखते, प्राण लेते और सुनते हैं, अन्नादि खाते हैं । जो नास्तिक सब के पोषक मुझ को नही मानते वे सब सुख साधनो से हीन हो कर नष्ट हो जाते है । मैं यह सत्य वचन आपको कहता हूँ ।

: ७६ :

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।।

४।३०।५।।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं (रुद्राय) ज्ञान दाता व दुख के नाशक पुरुष के हित के लिये और (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मज्ञानी, वेदपाठी, विद्वानो के द्वेषी (शरवे) हिंसक के (हन्तवे) मारने को (उ) ही (धनु) धनुष (आतनोमि) तानता हूँ (अहम्) मैं (जनाय) भक्त जन के लिये (समदम् कृणोमि) आनन्द सहित इस जगत् को करता हू ।

(अहम् द्यावा पृथिवी) मैंने सूर्य और पृथिवी लोक में (आविवेश) सब ओर से प्रवेश किया है।

भावार्थ—परमेश्वर, उत्तमज्ञानी पुरुषो की रक्षा के लिए, श्रेष्ठो के दुःखदायक पुरुषो के नाश के लिए, सदा उद्यत रहता है और अपने भक्तो को सदा सब स्थानो मे आनन्द देता है।

: ७७ :

नमः सायं नम. प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥ ११।२।१६॥

शब्दार्थ—(सायम् नम) सायकाल मे उस प्रभु को नमस्कार हैं (प्रात नम) प्रात काल मे नमस्कार है (रात्र्या नम दिवा नम) दिन और रात्रि मे बार-बार नमस्कार है (भवाय) सुख करने वाले (च) और (शर्वाय) दुःख के नाश करने वाले को (उभाभ्याम्) दोनो हाथ जोड कर (नम अकरम्) नमस्कार करता हू।

भावार्थ—पुरुष सब कामो के आरम्भ और अन्त मे उस परमात्मा जगत्पति का ध्यान धरते हुए दोनो हाथ जोड कर और शिर को झुका कर सदा प्रणाम करे। जिससे अपना जन्म सफल हो। क्योकि प्रभु की भक्ति से विमुख होकर विषयो मे सदा फसे रहने से अपना जन्म निष्फल ही है।

· ७८ :

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम्।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीत॥ ११।२।२७॥

शब्दार्थ—(भव) सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (दिव) सूर्य का (भव) वही परमेश्वर (पृथिव्या) पृथिवी का (ईशे) राजा है। (भव) उसी परमेश्वर ने (उरु अन्तरिक्षम्) विस्तृत प्रकाश को (आ पप्रे) सब ओर से पूर्ण कर रक्खा है। (इत) यहाँ

स (यतमस्या दिश) चाहे जौन-सी दिशा हो उसमे व्याप्त है (तस्मै नम) उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—जो परमेश्वर सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्षादि लोको का स्वामी होकर उन पर शासन कर रहा है उस सर्व दिशाओ मे परिपूर्ण सुखप्रद परमेश्वर को हमारा बार-बार प्रणाम हो।

: ७९ :

यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास । य सूर्यं य उषस जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्र ॥ २०।३४।७॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) आज्ञा वा कृपा मे (अश्वास) घोडे (यस्य) जिसकी आज्ञा व कृपा मे (गाव) गाय, बैल आदि पशु (यस्य ग्रामा) जिसकी आज्ञा मे ग्राम और (यस्य विश्वे रथास) जिसकी आज्ञा मे सब विहार कराने हारे पदार्थ हैं (य सूयम्) जो भगवान् सूर्य को (य उषसम्) और प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न करता है (य अपाम् नेता) जो प्रभु जलो का सर्वत्र पहुचाने वाला है (जनास) हे मनुष्यो ! (स इन्द्र) वह बडे ऐश्वर्य वाला इन्द्र है।

भावार्थ—जिस परमात्मा ने घोडे, गौए, रथ, ग्राम उत्पन्न किये और अपने प्रेमी पुत्रो को ये सब चीजें प्रदान की और जो प्रभु सूर्य और प्रभात वेला को बनाने वाला और जलो को जहा कही भी पहुचाने वाला है हे मनुष्यो ! वह परमात्मा इन्द्र है।

: ८० :

शक्र वाचाभिष्टुहि धामन्धामन् विराजति । विमदन् बर्हिरासदन् ॥ २०।४९।३॥

शब्दार्थ—(शक्रम्) शक्तिमान् परमेश्वर की (वाचा अभिष्टुहि) वाणी से सब ओर स्तुति कर, (धामन् धामन्) सब स्थानो मे

(विराजति) विराजमान है (विमदन्) विशेष रीति से आनन्द करता हुआ (बर्हि आसदन्) पवित्र हृदय रूपी आसन पर ही विराजमान है।

भावार्थ—विवेकी पुरुष को चाहिये कि परमात्मा को घट-घट व्यापक जानकर वेद के पवित्र मन्त्रो से सदा स्तुति किया करे। वह परमात्मा ही इस लोक और परलोक मे सुख देने वाला है।

: ८१ :

तम्वभि प्रगायत पुरुहूत पुरुष्टुतम्।
इन्द्र गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ २०।६१।४॥

शब्दार्थ—(तम् उ) उस ही (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुए (पुरुष्टुतम्) बहुत बडाई किये हुए (तविषम्) महान् (इन्द्रम्) परमात्मा को (अभि) सब ओर से (प्रगायत) भली प्रकार गाओ और (गीर्भि) वाणियो से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो।

भावार्थ—हे मनुष्यो! वह परमात्मा सबसे बडा है। उसको जान कर उसी की प्रार्थना, उपासना करो, और अपनी वाणियो से भी ईश्वर की महिमा को निरूपण करने वाले वेद मन्त्रो से प्रभु का सत्कार करो।

: ८२ :

त त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयाम शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये॥ २०।६८।६॥

शब्दार्थ—हे (शतक्रतो) असख्य पदार्थों मे बुद्धि वाले और जगत् निर्माण आदि अनन्त कर्मों के करने वाले (इन्द्र) बडे ऐश्वर्य के स्वामी (वाजेषु) सग्रामो के बीच (वाजिनम्) महाबलवान् (तम् त्वा) उस आप को (धनानाम्) धनो के (सातये) लाभ के लिये (वाजयाम) हम प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—परमात्मा महाज्ञानी और महा-उद्योगी हैं। अनेक प्रकार के सग्रामो मे विजयशाली हैं। ऐसे परमात्मा की भक्ति करने वाले पुरुष को चाहिए कि बाह्याभ्यन्तर सग्राम को जीत कर अनेक प्रकार के धन को प्राप्त हो कर सुखी हो। स्मरण रहे कि प्रभु की भक्ति के बिना कोई ज्ञान व कर्म हमारा सफल नहीं हो सकता है। इस लिए उस प्रभु की शरण मे आ कर उद्योगी बनते हुए धन प्राप्त करें।

: ८३ :

यो रायो वनिर्महान्त्सुपार· सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २०।६८।१०॥

शब्दार्थ—(य) जो परमेश्वर (राय) धन का (अवनि) रक्षक व स्वामी (महान्) अपने गुणो व बलो से बडा है। (सुपार) भली प्रकार पार लगाने वाला (सुन्वत) तत्व रस को निकालने वाले पुरुष का (सखा) प्यारा मित्र है (तस्मै) ऐसे (इन्द्राय) बडे ऐश्वर्य वाले प्रभु के लिये आप लोग (गायत) गान किया करो।

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि उस धन और सुख के रक्षक महाबली, ससार समुद्र से पार लगाने वाले, ज्ञानी पुरुष के परम सहायक, परमेश्वर की ही सदा प्रार्थना, उपासना से तत्व का ग्रहण करके पुरुषार्थ से धर्म का सेवन किया करें।

: ८४ :

इय कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥ १०।८।२६॥

शब्दार्थ—(इय कल्याणी) यह कल्याण करने वाली देवता परमात्मा (अजरा) जरा रहित (अमृता) अमर है। (मर्त्यस्य गृहे) मर्त्य के हृदय रूपी घर मे निवास करता हे। (यस्मै) जिसके लिये (कृता) कार्य करता है (स चकार) वह कार्य करने मे समर्थ होता

है और (य शये) जो सोता है (स जजार) वह जीर्ण हो जाता है।

भावार्थ—परमात्मदेव सदा अजर-अमर हैं सब का कल्याण करने वाले हैं वे मरणधर्मा मनुष्य के हृदय रूपी घर मे निवास करते हैं जिसके ऊपर इस प्रभु की कृपा होती है वह कृतकार्य और यशस्वी होता है, परन्तु जो सोता है अर्थात् परमात्मा के ध्यान और भक्ति आदि साधनो से विमुख होता है वह शीघ्र जीर्ण हो कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है ।

: ८५ :

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः । प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ।। ११।५।१६।।

शब्दार्थ—(आचार्य) वेदशास्त्रज्ञाता आचार्य (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी होवे (प्रजापति) प्रजापालक मनुष्य राजा आदि (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी होवे। (प्रजापति) प्रजापालक हो कर (विराजति) विविध प्रकार राज्य करता है। (विराट्) बडा राजा (वशी) वश मे करने वाला (इन्द्र) बडे ऐश्वर्य वाला (अभवत्) हो जाता है।

भावार्थ—परम दयालु परमेश्वर हम को उपदेश करते हैं कि, पाठशालाओ के अध्यापक ब्रह्मचारी होने चाहियें और प्रजाशासक राजा और राजपुरुष भी ब्रह्मचारी होने चाहियें। यदि यह दोनो व्यभिचारी होवें तो न ही सुचारुतया विद्या का अध्ययन करा सकते हैं और न ही राज्य-व्यवस्था ठीक-ठीक चला सकते हैं। प्रजापालक राजा अपनी प्रजा पर शासन करता हुआ बडा राजा और इन्द्र हो जाता है।

: ८६ :

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।। ११।५।१७।।

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेद विचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा राष्ट्र विरक्षति) राजा अपने राज्य की रक्षा करता है। (आचार्यो) वेद और उपनिषद् के रहस्य के जानने वाला अध्यापक आचार्य (ब्रह्मचर्येण) वेदविद्या और इन्द्रिय दमन से (ब्रह्मचारिणम्) वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को (इच्छते) चाहता है।

भावार्थ—जो राजा इन्द्रियदमन और वेदविचार रूपी ब्रह्मचर्य वाला है, वह प्रजा पालन मे बडा निपुण होता है, और ब्रह्मचर्य के कारण आचार्य विद्या वृद्धि के लिये ब्रह्मचारी से प्रेम करता है।

· ८७ ·

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घास जिगीर्षति ॥ ११।५।१८॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन से (कन्या) योग्य पुत्री (युवानम् पतिम्) ब्रह्मचर्य से बलवान्, पालन पोषण करने वाले, ऐश्वर्यवान् भर्ता को (विन्दते) प्राप्त होती है। (अनड्वान्) रथ मे चलने वाला बैल और (अश्व) घोडा (ब्रह्मचर्येण) नियम से ऊर्ध्वरेता हो कर (घासम्) तृणादिक को (जिगीर्षति) जीतना चाहता है।

भावार्थ—कन्या ब्रह्मचर्य से पूर्ण विदुषी और युवती हो कर पूर्ण विद्वान् युवा पुरुष से विवाह करे और जैसे बैल, घोडे आदि बलवान् और शीघ्रगामी पशु घास, तृण खाकर ब्रह्मचर्य नियम से बलवान् सन्तान उत्पन्न करते हैं, वैसे ही मनुष्य पूर्ण युवा हो कर अपने सदृश कन्या से विवाह करके नियमपूर्वक बलवान् सुशील सन्तान उत्पन्न करे।

: ८८ :

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ ११।५।१९॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेदाध्ययन और इन्द्रिय दमन रूपी (तपसा) तप से (देवा) विद्वान् पुरुष (मृत्युम्, मत्यु को अर्थात् मृत्यु के कारण निरुत्साह दरिद्रता, आदि मृत्यु को (अप) हटाकर, दूर कर (अघ्नत) नष्ट करते हैं। (इन्द्र) मनुष्य जो इन्द्रियो को वश मे करता है (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के नियम पालन से (ह) ही (देवेभ्य) दिव्य शक्ति वाली इन्द्रियो के लिये (स्व आभरत) तेज व सुख धारण करता है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्यरूपी तप से विद्वान् पुरुष मृत्यु को दूर भगा देते हैं और इस ब्रह्मचर्य रूपी तप से ही अपने नेत्र श्रोत्रादि इन्द्रियो मे तेज और बल भर देते हैं।

· ८९ ·

पार्थिवा दिव्या· पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये । अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ ११।५।२१॥

शब्दार्थ—(पार्थिवा) पृथिवी मे होने वाले (दिव्या) आकाश मे विचरने वाले पक्षी (पशव आरण्या) वन मे रहने वाले पशु (च) और (ग्राम्या) ग्राम मे रहने वाले पशु (अपक्षा) बिना पक्ष के (पक्षिण) (च) और पखो वाले (ये ते) जो ये सब (जाता) उत्पन्न हुए (ब्रह्मचारिण) ब्रह्मचारी ही हैं।

भावार्थ—प्रभु के सृष्टि क्रम मे देख रहे हैं कि ईश्वर रचित पशु, पक्षी ईश्वर के नियम के अनुसार चलते हुए ब्रह्मचारी ही हैं। ब्रह्मचारी होने के कारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक उद्यगी और रोग रहित है। इसलिए सब मनुष्यो को चाहिये कि इस वेद वाणी को पढ़ कर बाल-विवाहादि दोषो से बच कर गृहस्थी होते हुए भी

अधिक विषयासक्त न होवें जिससे आयु, ज्ञान, तेज, उद्यम, धर्म और आरोग्यता आदि बढ जावें ।

. ६०

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥
१८।४।४५॥

शब्दार्थ—(सरस्वतीम्) वेद विद्या को (देवयन्त) दिव्य गुणो को चाहने वाले विद्वान् पुरुष (तायमाने) बिस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिसा रहित यज्ञादि कर्मों मे (हवन्ते) बुलाते हैं । (सरस्वतीम) सरस्वती को (सुकृत) सुकृती अर्थात् पुण्यात्मा धार्मिक लोग (हवन्ते) बुलाते हैं । (सरस्वती) विद्या (दाशुषे) विद्यादान करने वाले को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थों को (दात्) देती है ।

भावार्थ—विद्या महारानी उस मे भी विशेष करके ब्रह्मविद्या को बडे-बडे विद्वान् पुरुष चाहते है और यज्ञादिक उत्तम व्यवहारो मे भी उसी वेद विद्या महारानी की आवश्यकता है । ससार के सब धर्मात्मा पुरुष इस वेदविद्या रूपी सरस्वती की इच्छा करते हैं । और सरस्वती महारानी भी मोक्ष पर्यन्त सब सुखो को देती है ।

: ६१ :

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय । आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमान च वर्धय ॥ १९।६३।१॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेद रक्षक विद्वान् ! (उत्तिष्ठ) उठो । और (देवान्) विद्वानो को (यज्ञेन) श्रेष्ठ कर्म से (बोधय) जगा । (यजमानम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले के (आयु) जीवन (प्राणम्) आत्मबल (प्रजाम्) सन्तान (पशून्) गौ, घोडे आदि पशु (कीर्तिम्) यश को (वर्धय) बढा ।

भावार्थ—विद्वा पुरुषो का कर्तव्य है कि दूसरे विद्वानों से मिल कर वेदो का और यज्ञादिक उत्तम-कर्मों का प्रचार करें जिस-से यज्ञादिक कर्म करने वाले यजमान चिरजीवी बन कर आत्मिक बल, पुत्रादि सतान और गौ-घोडे आदि सुख-दायक पशु और यश को प्राप्त हो कर अपनी और अपने देश की उन्नति करें।

: ९२ :

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ ३।३०।२॥

शब्दार्थ— (पुत्रः) पुत्र (पितु) पिता का (अनुव्रत) अनुकूल-व्रती हो कर (मात्रा) माता के साथ (समना) एक मन वाला (भवतु) होवे। (जाया) स्त्री (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) मीठी (शन्तिवाम्) शान्ति देने वाली (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

भावार्थ—परमात्मा का जीवो को उपदेश है कि पुत्र माता पिता के अनुकुल हो। स्त्री अपने पति को मधु जैसे मीठे और शान्तिदायक वचन बोला करे। घर मे पिता पुत्र का और पुत्र माता का आपस मे झगडा न हो और भार्या पति के लिये मीठे और शान्तिदायक वचन बोले, कभी कठोर शब्द का प्रयोग न करे। ऐसे बर्ताव करने से गृहस्थाश्रम स्वर्गाश्रम बन जाता है। इस गृह-स्थाश्रम को स्वर्गाश्रम बनाना चाहिये।

: ९३ :

मा भ्राता भ्रातर द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३।३०।३॥

शब्दार्थ—(मा भ्राता भ्रातर द्विक्षत्) भाई-भाई के साथ द्वेष न करे (मा स्वसारमुत स्वसा) बहिन-बहिन के साथ द्वेष न करे। (सम्यञ्च) एक मत वाले और (सव्रता) एकव्रत (भूत्वा) हो कर (भद्रया) कल्याणी रीति से (वाच) वाणी को (वदत) बोलें।

भावार्थ—भाई-भाई और बहिन-बहिन आपस मे कभी द्वेष न करें। यह आपस मे मिल कर एक मन वाले, एक व्रत वाले हो कर एक दूसरे को शुभवाणी से बोलते हुए सुख के भागी बनें।

: ६४ ·

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः। तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्य ॥ ३।३०।४॥

शब्दार्थ—(येन) जिस वैदिक मार्ग से (देवा) विद्वान् पुरुष (न वियन्ति) विरुद्ध नही चलते (च) और (नो) न कभी (मिथ) आपस मे (विद्विषते) द्वेष करते हैं। (तत्) उस (ब्रह्म) वेदमार्ग को (व) तुम्हारे (गृहे) घर मे (पुरुषेभ्य) सब पुरुषो के लिये (सज्ञा-नम्) ठीक-ठीक ज्ञान का कारण (कृण्म) हम करते हैं।

भावार्थ—परमदयालु परमात्मा हमे सुखी बनाने के लिये वेदमन्त्रो द्वारा अति उत्तम उपदेश कर रहे हैं। सब विद्वानो को चाहिये कि वैदिक धर्म से विरुद्ध कभी न चलें, न आपस मे कभी विद्वेष करें। इस वेद पथ का ही हमारे कल्याण के लिये यथार्थ रूप से उपदेश किया है।

६५ :

समानी प्रपा सह वोऽन्नभाग· समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभित. ॥ ३।३०।६॥

शब्दार्थ— (व) तुम्हारी (प्रपा) जलशाला (समानी) एक हो और (अन्नभाग) अन्न का भाग (सह) साथ-साथ हो। (समाने) एक ही (योक्त्रे) जोते मे (व) तुमको (सह) साथ-साथ (युनिज्मि) मैं जोडता हूँ। (सम्यञ्च) मिल कर गति वाले तुम (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को (सपर्यत) पूजो (इव) जैसे (आरा) पहिये के दण्डे (नाभिम्) नाभि मे (अभित) चारो ओर से सटे होते हैं।

भावार्थ—सबकी पानी पीने की और भोजन करने की जगह एक हो। जब हमारा सब का एकत्र भोजन होगा तब आपस मे झगडा नही होगा। जैसे कि जोते मे अर्थात् एक उद्देश्य के लिये परमात्मा ने हमे मनुष्य देह दिया हे तो हम को चाहिये कि परस्पर मिल कर व्यवहार, परमार्थ को सिद्ध करें। जैसे आरा रूप काष्ठो का नाभि आधार है, ऐसे ही सब जगत् का आधार परमात्मा है उसकी पूजा करें और भौतिक अग्नि मे हवन करें और शिल्प विद्या से काम लें।

: ६६ :

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्। इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम्॥
१६।६६।४॥ १६।७०।१॥

शब्दार्थ—हे विद्वानो! तुम (जीवला स्थ) जीवनदाता हो। (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ (सर्वमायुर्जीव्यासम्) मैं सम्पूर्ण आयु जीता रहूँ।

(इन्द्र जीव) हे परमैश्वर्य वाले मनुष्य! तू जीता रह। (सूर्य जीव) हे सूर्य समान तेजस्वी! तू जीता रहे।

(देवा जीवा) हे विद्वान् लोगो! आप जीते रहो (जीव्यासमहम्) मैं जीता रहूँ। (सर्वम् आयु जीव्यासम्) सम्पूर्ण आयु जीता रहूँ।

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि जीवन विद्या का उपदेश देने वाले विद्वानो के सत्सग से और परस्पर उपकार करते हुए अपना जीवन बढ़ावें और परमैश्वर्यवान् तेजस्वी हो कर विद्वानो के साथ पूर्णायु को प्राप्त करें।

९७ :

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १९।११।१॥

शब्दार्थ—(वरदा) इष्ट फल देने वाली (वेदमाता) ज्ञान की माता वेदवाणी (मया) मेरे द्वारा (स्तुता) स्तुति की गई है । आप विद्वान् लोग (पावमानी) पवित्र करने वाले परमात्मा के बताने वाली वेद वाणी को (द्विजानाम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो मे (प्रचोदयन्ताम्) आगे बढावें । (आयु) जीवन (प्राणम्) आत्मिक बल (प्रजाम्) सन्तानादि (पशुम्) गो, घोडा आदि पशु (कीर्त्तिम्) यश (द्रविणम्) धन (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्य दत्वा) मुझे दे कर, हे विद्वान् लोगो ! (ब्रह्मलोकम्) वेदज्ञानियो की समाज मे (व्रजत) प्राप्त कराओ ।

भावार्थ—इस मन्त्र मे सारे सुखो की प्राप्ति का उपदेश है । वेदमाता जो ज्ञान के देने वाली परमात्मा की पवित्र वाणी वेदवाणी सारे इष्ट फलो के देने वाली है—इसकी जितनी प्रशसा की जाय थोडी है । सब विद्वानो को योग्य है कि इस ईश्वरीय पवित्र वेदवाणी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि मनुष्य मात्र मे प्रचार करते हुए सारे ससार मे फैला देवें । उस वाणी की कृपा से पुरुष को दीर्घ जीवन, आत्मबल, पुत्रादि सन्तान, गौ, घोडे आदि पशु, यश और धन प्राप्त होते हैं । यही वेदवाणी पुरुष को ब्रह्मवर्चस दे कर वेदज्ञानियो के मध्य मे सत्कार और प्रतिष्ठा प्राप्त कराती हुई ब्रह्मलोक को अर्थात् 'ब्रह्म लोक ब्रह्मलोक', सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जो परमात्मा उसका ज्ञान देकर मोक्षधाम को प्राप्त कराती है ।

: ९८ :

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः । प्रणीतीरभ्या-वर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥ ७।१०५।१॥

शब्दार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (पौरुषेयात्) पुरुष वध से (अप-क्रामन्) हटता हुआ (दैव्यम् वच) परमेश्वर के वचन को (वृणान) मानता हुआ तू (विश्वेभि सखिभि सह) सब साथी मित्रो के सहित (प्रणीती) उत्तम नीतियो का (अभ्यावर्तस्व) सब ओर से बर्ताव कर।

भावार्थ—मोक्षार्थी पुरुष को चाहिये कि ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, सत्सङ्ग, ईश्वरभक्ति पूर्वक प्रणवादिको का जप करता हुआ और अपने सब इष्ट मित्रो को इस मार्ग मे चलाता हुआ आनन्द का भागी बने। कभी किसी पुरुष के मारने का सकल्प ही न करे, प्रत्युत उनको प्रभु का भक्त और वेदानुयायी बना कर उन से प्यार करने वाला हो।

: ९९ :

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् । भद्रं गृहं कृणुथ भद्र वाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥ ४।२१।६॥

शब्दार्थ—(गाव) हे गौओ या विद्याओ ! (यूयम्) तुम (कृशम्) दुर्बल से (चित्) भी (अश्रीरम् चित्) धन रहित से (मेद-यथा) स्नेह करती और पुष्ट करती हो। (सुप्रतीकम् कृणुथ) बडी प्रतीति वाला वा बडे रूप वाला बना देती हो। (भद्र वाच) शुभ बोलने वाली गौओ ! और कल्याण करने वाली विद्याओ ! (गृहम्) घर को और हृदय को (भद्रम् कृणुथ) सुखी और मगलमय कर

देती हो (सभासु) सभाओ मे (व) तुम्हारा ही (वय) बल (बृहद्) बडा (उच्यने) बखाना जाता है ।

भावार्थ—गौ का दूध घृतादि सेवन कर के पुरुष सबल और विद्या से भी दुर्बल पुरुष सबल हो जाता है और निर्धन पुरुष भी गौ, विद्या की कृपा से धनवान् और रूपवान् हो जाता है । विद्वानो के घर मे सदा आनन्द रहता है और गौ वालो के घर मे भी सदा आनन्द रहता है । विद्वानो की और गौ वालो की सभा-समाजो मे बडाई होती है ।

: १०० :

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा । यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्ष स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ११।८।३॥

शब्दार्थ—(दश देवा) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ यह दस दिव्य पदार्थ (पुरा) पूर्वकाल मे (देवेभ्य) कर्म फलो से (साकम्) परस्पर मिले हुए (अजायन्त) पैदा हुए (यो वै) जो पुरुष निश्चय करके (तान् प्रत्यक्षम् विद्यात्) उनको निस्सन्देह जान लेवे (स वै) वही (अद्य) आज (महद्) बडे परमात्मा का (वदेत्) उपदेश करे ।

भावार्थ—प्राणियो के पूर्व सञ्चित कर्मों से परमेश्वर उनको पाच ज्ञानेन्द्रिया, पाच कर्मेन्द्रिया प्रदान करता है । इनमे श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा, नासिका, और त्वचा ये ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय कहलाते है । और वाक्, हाथ, पाव, पायु, उपस्थ ये पाच कर्मो के साधन होने से कर्मेन्द्रिय कहलाते हैं । ये दस इन्द्रिय और इनके कर्मों से परे परमात्मा देव हैं । उनको जान कर विद्वान् पुरुष ही उस परमात्मा का उपदेश कर सकता है । अज्ञानी मूर्ख नही ।

●